हनुमतचरित

सतीश चन्द्र उपाध्याय

प्रकाशक
गीता आश्रम
इलाहाबाद

* प्रकाशक

सतीश चन्द्र उपाध्याय

* विशेष सहयोगी

विश्वरूप विनोद, राजकुमार पाण्डेय

* संस्करण

1997

* सहयोग राशि

इक्यावन रुपये मात्र

* मुद्रक

ए०एस० लेजर प्वाइण्ट

24 ए०डी०ए० व्यवसायिक केन्द्र

कटरा, इलाहाबाद फोन : 605765

प्रात:स्मरणीय श्री १०८ स्वामी हरिहर महाराज का आशीर्वचन्

महावीर श्रीहनुमान जी भक्ति, सेवा और ब्रह्मचर्य के साकार रूप हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त ओजस्वी एवं तेजस्वी है। शक्ति और पराक्रम के तो वह मूर्तिमन्त रूप ही हैं। गोस्वामी तुलसादास के अनुसार – "श्रीहनुमान बुद्धिमानों में श्रेष्ठ तथा ज्ञानियों में अग्रगण्य हैं। अपने निष्काम कर्म के अनुरुप ही उनका निःस्वार्थ सेवा का व्रत है। वह श्रीराम के अनन्य भक्त और निःस्वार्थ सेवक हैं।"

आधुनिक युग में मनुष्य भौतिकवाद के तीव्र ज्वर से ग्रस्त है। लोग स्वार्थ और अहंकार के चलते मानवीय और आध्यत्मिक मूल्यों को भुला बैठे हैं। अतः आवश्यक है कि श्रीहनुमान के दिव्य व्यक्तित्व और कृतित्व का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाय तथा उनके चरित्र और आख्यानों की सही व्याख्या की जाय साथ ही श्रीहनुमान के सेवा ब्रह्मचर्य तथा साहस जैसे गुणों का अनुसरण करके राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में नवयुग को बल प्रदान किया जाय।

श्री सतीश चन्द्र उपाध्याय 'गीता आश्रम' के अनन्य सेवक हैं। 'गीता आश्रम' एक समाज सेवी, आध्यात्मिक सेवा जो सत् साहित्य के प्रभाव द्वारा समाज में आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि का प्रयत्न करती है। श्री उपाध्याय द्वारा लिखित हनुमत्चरित् समाज के चरित्र-निर्माण की दिशा में एक अच्छा प्रयास है। मैं भी श्री उपाध्याय की 'हनुमत्चरित्' के पाठकों को आशीर्वाद देता हूँ कि वे निःस्वार्थ भाव से समाज सेवा और मानव सेवा की दिशा मे अग्रसर हों।

स्वामी हरिहर

प्राक्कथन

मानव जीवन का उद्देश्य आत्म साक्षात्कार है । सृष्टि के विकास क्रम मे चरम बिन्दु के सदृश प्रतिष्ठित मानव सृजन की मात्र भौतिक प्रक्रिया का संवाहक नहीं है, बल्कि अस्तित्व के आध्यात्मिक रहस्य का अवगाहन करना भी उसका परम लक्ष्य है। जब महाभारत में ''न हि मानुषात् श्रेष्ठतरो हि कश्चित्'' कह कर मानव की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई उसका कारण और निहितार्थ यही था कि मनुष्य में ही अपनी आत्मिक शक्तियों को पहचान कर परमात्म स्वरुप हो जाने की क्षमता है। गीता मे श्री कृष्ण ने उद्घोष किया है कि मानव जीवन का चरम लक्ष्य आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना है:-

''यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः

आत्मन्येव त संतुष्टस्वतस्च कार्य न विद्यते।''

अर्थात् जो आत्मा से ही प्रेम करता है, आत्मा में ही तृप्त है तथा आत्मा मे ही संतुष्ट है,उसका कोई कार्य या लक्ष्य नहीं रह जाता।''

धरातल पर ऐसे अनेक आत्माराम अवतरित हुये जिन्होंने मानवता को कल्याण का मार्ग दिखाया। अनेक ऋषि और महर्षि, श्री कृष्ण, श्री हनुमान, ईसामसीह, गौतम बुद्ध, जगद्गुरू मुहम्मद साहब, श्री रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महात्मागांधी और मदर टेरेसा जैसे अवतारों महात्माओं और देवदूतों ने मानव जीवन को आध्यात्मिक उत्कर्ष तक पहुँचने के उपाय बताये।

परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक युग में भौतिकवाद की होड़ के कारण चिन्ता, कुंठा, कठोर प्रतिस्पर्धा, अवसाद, आवेग, उद्वेग, तनाव, भय और हताशा व्यापत हो गये हैं। भौतिकवाद की अंधी दौड़ में एक दूसरे को पीछे छोड़ देने की उत्कंठा ने मनुष्य को आवेश एवं आकुलता से भर दिया है। विज्ञान के माध्यम से भौतिक एवं बौद्धिक प्रगति की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ मानव चन्द्रमा पर स्वयं पहुँचकर तथा मंगल जैसे ग्रहों पर यंत्र मानव (रोबोट) को भेज कर अन्तर्ग्रहीय सभ्यता की स्थापना के लिये कटिबद्ध है। भूलोक की दूरियाँ इतनी सिमट गयी है कि सम्पूर्ण जगत् एक सा हो गया है। परन्तु भावात्मक एवं आत्मिक स्तर पर हम प्रगति की ओर अग्रसर नहीं दिखायी देते। हमारा विश्व दृष्टिकोण संकुचित हुआ है। हमारा चित्त अशान्त है। हृदय पीडा से परिपूर्ण है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर्य, ईर्ष्या और द्वेष में हम ग्रस्त हैं। सामाजिक जीवन जातीयता, क्षेत्रीयता और साम्प्रदायिकता के विष मे रूग्ण सा हो गया है। ऐसी परिस्थिति में हमें दिव्य विभूतियों का स्मरण करके उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रेरणा लेनी होगी ऐसी गुणों से सम्पन्न सात्विक

महात्माओं की शिक्षाओं का अनुशीलन एवं तद्नुसार आचरण करके हम आध्यात्मिक प्रगति कर सकते हैं।

श्री हनुमान का व्यक्तित्व ऐसी ही महिमा और गरिमा से मंडित है। वह अनन्य भक्त निःस्वार्थ सेवक, निष्काम कर्मयोगी, महान बलशाली, अप्रतिम योद्धा, निर्भय मन वाले, ज्ञानी, बुद्धिमान, धीमान विद्वान, धैर्यवान, महामना महात्मा और दिव्य शक्तियों से युक्त हैं। कामना, लालता, लोभ और आसक्ति से वह सर्वथा परे हैं। अहंकार उन्हें छू भी नहीं सका है। सृष्टि में ऐसा कोई नही है जो कभी अंहकार ग्रस्त न हुआ हो। श्री हनुमान ऐसे देवता हैं जिन्हे कभी अंहकार नहीं हुआ। समुद्रलंघन, सीता की खोज, लंकादहन, जड़ी बूटी के लिये द्रोणांचल पर्वत को उखाड़कर लाना जैसे अद्भुत, आश्चर्यजनक और दिव्य कार्यों का सम्पादन करके भी श्री हनुमान विनम्र और विनीत बने रहे।

"गीता में श्री कृष्ण ने "अभय सत्व संशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितः " अर्थात् अभय, अन्तः करण की शुद्धता, ज्ञान तथा योग में निरन्तर स्थिति" को दैवी गुणो के रूप में निरूपित किया है।

सद्गुणों में प्रथम और प्रमुख अभय है। अभय समस्त गुणों का आधार है। वस्तुतः दैवी मार्ग का आश्रय लेने के लिये भय का परित्याग कर देना चाहिये। पूर्णतः भयमुक्त पुरूष तो ब्रम्ह ही हो जाता है। शास्त्र कहते हैं - "अभय निर्भय व्यक्ति ब्रम्ह हो जाता है। एतमृतमभयमेतद् ब्रह्मः - यह अमृत, यह अभय, यह ब्रम्ह है। वास्तव में भगवान से सम्बन्ध स्थापित करके अथवा आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करके तथा अध्यात्म में प्रतिष्ठित होकर ही मनुष्य पूर्णतः भय रहित हो सकता है। सर्वशक्तिमान् सर्वत्र विद्यमान भगवान की शरण में जाकर मनुष्य अभय हो जाता है। वाल्मीकि रामायण के युद्ध काल में श्री राम कहते हैं.-

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति याचते
अभयं सर्वभूतोभ्यो ददाम्येतद व्रतं मम।"

अर्थात् जो एक बार भी शरणागत होकर "मैं आपका ही हूँ' ऐसा निवेदन करते हैं। मैं उसे सब प्राणियों से अभय दे देता हूँ, यह मेरा प्रण है।

श्री हनुमान भगवान राम के अनन्य भक्त होने के कारण सर्वथा निर्भय और निरापद थे। वह बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी साहस और धैर्य नहीं खोते थे। मेघनाथ और उसकी सेना से लेशमात्र भी डरे नहीं। वह रावण की सभा में उसी प्रकार प्रविष्ट हुये, जिस प्रकार सर्पों के मध्य गरूण निर्भय होकर जाते

"जिमि अहिगन महुँ, गरुड़ असंका।"

सत्व संशुद्धि (अन्त करण की पवित्रता दूसरी और दैवी सम्पदा है। मनुष्य के अन्त करण मन बुद्धि चित्त को आसक्ति, कामना प्रलोभन शोषण घृणा

कपट, कटुता, क्रोध, प्रतिशोध, इत्यादि विकार दूषित और दुर्बल कर देते है। चित्त के शुद्ध और प्रबुद्ध होने पर ही मनुष्य को अभय, शान्ति और स्थिरता का अनुभव हो सकता है। सत्व संशुद्धि होने पर ही मनुष्य आत्मसाक्षात्कार और जनसेवा का अधिकारी होता है। श्री हनुमान का अन्तःकरण भगवान की अनन्य भक्ति के कारण सर्वथा शुद्ध और निर्मल हो चुका था। वह निष्काम कर्मयोगी और निष्कपट सेवक थे।

ज्ञान योग व्यवस्थिति दैवी मार्ग का तृतीय प्रकाश स्तम्भ हैं। आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना तथा भक्ति, ध्यान तथा कीर्तन आदि उपाय करना ज्ञान तथा योग में अवस्थित है। भगवान करूणा निधान हैं तथा शरणागत को सन्मार्ग पर आरूढ़ करके उसकी रक्षा करते हैं, ऐसी दृढ़ निष्ठा होना व्यवस्थिति है। व्यवस्थिति का अर्थ है, निराश न होकर दृढ़ रहना।

श्री हनुमान ज्ञानियों में अग्रगण्य हैं। वह असार संसार की भौतिक वस्तुओं मे आसक्ति न रखकर महाप्रभु को ही सर्वस्व समझते हैं। श्री राम के परम्ब्रम्हत्व मे उनकी दृढ़ निष्ठा है। वह निष्काम कर्मयोगी, ज्ञानयोगी तथा भक्तियोगी तीनों ही हैं। उनका अन्तःकरण ज्ञान योग में पूर्णतः प्रतिष्ठित और व्यवस्थिति है।

दैवीगुणों से सम्पन्न श्री हनुमान की अराधना करने से मनुष्य में सद्गुणो का उदय होता है। आधुनिक मनोविज्ञान के जनक विलियम जेम्स ने लिखा है कि मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है। अतः यदि श्री हनुमान का स्मरण, चिन्तन, दर्शन और पूजन किया जाय तो निश्चय ही उनके अधिदैविक और आध्यात्मिक गुणों का प्रभाव पड़ेगा।

आधुनिक युग में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा, आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रचार तथा चारित्रिक उत्कर्ष की महती आवश्यकता है। डॉ. राधाकृष्णन ने आधुनिक विश्व को चरित्र की विपत्ति (Crisis of character) से ग्रस्त बताया था। आवश्यक है कि हम इस स्थिति से मुक्त हों। परन्तु ऐसा मात्र सिद्धान्त कथन और नैतिकता पर बार-बार प्रवचन करने से ही सम्भव नहीं है। इसके लिये हमें ऐसे उदात्त और जीवन्त चरित्रों और उनकी गाथाओं का प्रचार करना होगा जिन्होंने अपने व्यक्तित्व में नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों को साकार किया हो। हमें ऐसी विभूतियों की शरण लेनी होगी जो हमारा आध्यात्मिक उद्बोधन करे सके। श्री हनुमान ऐसे ही अनूठे और आध्यात्मिक व्यक्तित्व के देवता हैं। श्री हनुमान का चिन्तन, मनन और स्मरण करने से हमे ब्रम्हचर्य पालन, चरित्र-नैतिकता, निःस्वार्थ सेवा, निष्काम-कर्म, अथक परिश्रम, अहंकार से मुक्ति, आध्यात्मिक अनुभूति तथा महाप्रभु के प्रति सर्वात्म भाव मे समर्पण करने की प्रेरणा मिलेगी। निःस्वार्थ सेवा और निष्काम कर्म का अभ्यास हो जाने पर हम क्षुद्र और संकीर्ण भावों से ऊपर उठ जायेंगे तथा टकराव और संघर्ष के दृष्टिकोण का परित्याग करके शान्ति, सद्भाव, प्रेम, मैत्री और भाईचारे से जीना प्रारम्भ करेंगे। श्री हनुमान शान्ति, सद्भाव भाई चारे और

मैत्री के अग्रदूत थे। उन्होंने सुग्रीव और श्री राम में मैत्री करायी। विभीषण को श्री राम से मिलाया, रावण को राम से मैत्री की शिक्षा दी जिसे न मानने उसका सर्वनाश हो गया मूर्छित लक्ष्मण के लिये संजीवनी बूटी लाकर उन्हे स्वस्थ कराया। राम रावण युद्ध में वीरता और साहस से युद्ध कर अन्याय और अत्याचार का दमन करने में सहायता की।

युवकों में चरित्र, नैतिकता, उत्साह, साहस कर्त्तव्यपालन और निष्ठा की बहुत आवश्यकता है। युवक देश के भावी कर्णधार होते हैं। उनका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास होना अत्यावश्यक है। श्री हनुमान की अराधना और उपासना करने से उनको, उनके गुणों व चरित्र का अनुकरण करने की प्रेरणा मिलेगी। वे निर्भय और निडर होंगे। उनके अंदर देश के प्रति वफादारी और प्रेम का उदय होगा तथा वे अन्याय, अत्याचार और अनाचार का उन्मूलन करने के लिये कटिबद्ध होंगे।

यह बड़े हर्ष का विषय है कि श्री हनुमान की अराधना का प्रचार अत्यधिक से अधिक हो रहा है। "अजर अमर गुननिधि सुत होऊ, करेहु बहुत रघुनायक छोहू" का सीता माता का आशीर्वाद अक्षरतः सत्य हो रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि आबालवृद्ध-वनिता सभी श्री हनुमान के गुणों और आदर्शों को अपने आचरण में उतार कर देश को प्रगति काफी पराकाष्ठा पर ले जायं तथा जाति, सम्प्रदाय और क्षेत्र की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर उदारवादी और मानवतावादी विश्व दृष्टिकोण का अवलम्बन करते हुये, विश्व बंधुत्व की भावना का प्रचार और प्रसार करें।

अन्ततः मंगलमय महाप्रभु की इस सृष्टि में सब कुछ मंगलमय है। यदि सृष्टि की इस मंगलमयी व्यवस्था में कोई व्यवधान उत्पन्न करता है तो उसको रोकने के लिये प्रकृति की मंगलमयी शक्तियां अवतरित होती हैं। श्री हनुमान ऐसे ही कल्याणकारी देवता हैं गोस्वामी तुलसीदास ने उनके सम्बन्ध में "विनय पत्रिका" में कहा है :-

"मंगलमूरति मारूतनंदन। सकल अमंगल मूल निकंदन।
पवन तनय संतन हितकारी। हृदय विराजित अवध बिहारी।"

वस्तुतः श्री हनुमान मंगलमूर्ति तथा कल्याण के साकार रूप हैं। वह हमे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर्य से दूर करके महाप्रभु की शरण मे ले जाते हैं। हमें हमारे आत्मस्वरूप से परिचय कराकर ईश्वर के भजन में लगाते है जिससे हमें भगव प्राप्ति हो सकती है। [illegible]लमूर्ति मारूतिनंदन हम सबको मगल भवन अमंगलहारी महाप्रभु की ओर उन्मुख कर दें और हम सब मे आध्यात्मिक चेतना जाग्रत हो, इसी प्रार्थना के साथ यह पुस्तक प्रभु भक्तों को समर्पित है।

सतीश चन्द्र उपाध्याय

ॐ

हनुमतचरित्

श्री हनुमान भक्ति, शक्ति, शौर्य, धैर्य, सेवा, साधना से आमूलचूल परिपूर्ण व्यक्तित्व से युक्त हैं। सेवा और निष्ठा तो उनमें पराकाष्ठा को प्राप्त हो चुकी है। वह अत्यन्त बुद्धिमान एवं धीमान् हैं। वह निरन्तर ब्रह्मचर्य की साधना करते हुये ब्रह्म चिन्तन में लीन रहते है। ब्रह्मचर्य तो उनमें साकार हो उठा है। भगवान की भक्ति एवं आराधना में सर्वथा शान्त, सौम्य, सात्विक श्री हनुमान सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों के संहार हेतु रौद्र रूप धारण करते हैं।

सृष्टि का संचालन दैवी सिद्धान्तों से उत्प्रेरित है। प्रकृति की नियामक व्यवस्था के पीछे दिव्य शक्ति की प्रेरणा है। सृष्टि की व्यवस्था चराचर जीव व जगत् के कल्याण हेतु संचालित होती है। प्रकृति की इस मंगलमयी व्यवस्था में अवरोध और बाधा उत्पन्न करने वाली शक्तियों पर अंकुश लगाने के लिये प्रकृति की दैवी शक्तियाँ अवतरित होती हैं। असत् का विनाश और सत् की स्थापना ही सृष्टि के अस्तित्व का आध्यात्मिक लक्ष्य है। श्री कृष्ण ने गीता में कहा है:-

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥"

अर्थात् जब-जब धर्म की ग्लानि होती है तथा अधर्म सर उठाता है तब तब मैं अपने आपको प्रकट करता हूँ।

परब्रह्म परमात्मा अधर्म के नाश तथा धर्म की स्थापना के लिये जगत् में अवतार लेते हैं। दयालु परमात्मा सृष्टि के मंगलमय विकास एवं आध्यात्मिक कल्याण के लिये प्रकट होते हैं:-

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥" (अध्याय ४-६)

अर्थात् "मैं अजन्मा और अविनाशी रूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुये भी अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ।"

त्रेता युग में आसुरी शक्तियों ने साधु पुरुषों और सज्जनों को तो त्रस्त कर ही दिया, देवताओं को भी नाना प्रकार के क्लेश देना प्रारम्भ कर दिया। ऋषि मुनियों की तपश्चर्या में विघ्न उपस्थित करने लगे। धर्म का आचरण करना दूभर हो गया अधर्म के अत्यधिक बढ़ जाने से सामाजिक व्यवस्था भी चरमराने

लगी। परिणामस्वरूप परमात्मा ने श्री राम के रूप में अवतार लिया। श्री राम ने आसुरी शक्तियों का विनाश करके राम राज्य की स्थापना की। श्री राम की सहायता के लिये रुद्र, हनुमान के रूप में अवतरित हुये तथा पवन के माध्यम से अंजना देवी के गर्भ से श्री हनुमान प्रकट हुये। आसुरी शक्तियाँ इतनी बलवती थीं कि श्री राम की सहायता के लिये प्रकृति की अनेक शक्तियों को प्रकट होना पड़ा। वायु देवता ने वानर जाति की देवी अंजना से श्री हनुमान को प्रकट किया जो वायु के समान ही बली थे.-

"पवन तनय बल पवन समाना"

श्री हनुमान ने संसार में सेवा, कर्त्तव्य परायणता, अनन्य भक्ति, ब्रह्मचर्य शौर्य, वीरता, धैर्य, विनम्रता का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किया तथा इन उदात्त सिद्धान्तों एवं गुणों की प्रतिष्ठा की। श्री हनुमान अनन्त बल और शक्ति से युक्त होते हुए भी विनय, शालीनता, विनम्रता जैसे सात्विक गुणों से अलंकृत हैं। उनका अनन्त बल परमात्मा के कार्यों के सम्पादन में प्रयुक्त होता था। इसीलिये उनमें दैवी उदात्तता का उन्मेष हो गया था। यदि कोई अपनी शक्ति का उपयोग लोक हित एवं दैवी कार्यों के लिये करे तो स्वयं परमात्मा उसको अपनी दैवी एवं आत्मिक शक्तियों से युक्त कर देते हैं। "गीता" में श्री कृष्ण ने लिखा है:-

"बलं बलवतां चाहं काम राम विवर्जितम्।"

'यदि बल का प्रयोग कामना एवं राग से अलग होकर किया जाता है तो वह दैवी गुण से संयुक्त हो जाता है।' श्री हनुमान ने क्षुद्र कामनाओं की पूर्ति के लिये अथवा रागद्वेष के वशीभूत होकर कभी बल का प्रयोग नहीं किया। श्री हनुमान को कभी अहंकार भी नहीं हुआ। चराचर जगत में श्री हनुमान ही ऐसे देवता हैं जो कभी अहंकार ग्रस्त नहीं हुये। उन्होंने तो सदैव श्री राम का स्मरण करते हुये अनन्य सेवा भाव से, निः स्वार्थ रूप से अपने कर्त्तव्य का पालन किया। गीता में भगवान ने कहा है:-

"मत्कर्मकृत् मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।"

अर्थात् 'जो ईश्वर के लिये कर्म करे, ईश्वर को ही सर्वश्रेष्ठ माने, ईश्वर से प्रेम करें, आसक्ति से विहीन हो, किसी भी प्राणी से शत्रुता का भाव न रखें, वह ईश्वर का अपना हो जाता है।' श्री हनुमान ने आजीवन जो भी किया भगवान के लिये किया, उन्हीं को सर्वश्रेष्ठ और अपना परमप्रिय माना, उन्हीं से अनन्य प्रेम किया तथा कभी कामना, आसक्ति, स्वार्थभाव नहीं रखा। महाबली होते हुए भी किसी से कभी शत्रुता नहीं की। हाँ' जिसने दैवी कार्यों

मे बाधा पहुँचायी, उसे अवश्य दण्डित किया।

श्री हनुमान के इन्हीं गुणों को देखकर महाशक्ति, महादेवी सीता जी ने उन्हें वरदान दिया:-

"अजर अमर गुन निधि सुत होहू।,
करेहु बहुत रघुनायक छोहू।।"

सीता देवी ने श्री हनुमान को अजर, अमर, गुणों की खान होने तथा राम से अत्यधिक प्रेम करने का वरदान दिया। सीता जी का यह वरदान अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। श्री हनुमान ही ऐसे देवता हैं जिनका त्रेता युग में प्रकट होने के उपरान्त कभी विसर्जन नहीं हुआ। वह हनुमत् स्वरूप में आज भी भगवद्भजन में तल्लीन हैं। श्री हनुमान कलियुग में एक मात्र प्रकट देवता हैं। वह सुमति से युक्त व्यक्तियों के सदा साथ रहते हैं तथा नाम लेने पर भूत-प्रेतादि को भगा देते हैं। श्री राम की अनन्य भक्ति तथा माता सीता के आशीर्वाद से श्री हनुमान में ऐसा गुण आ गया है कि उनका जप करने से रोग और पीडा का नाश हो जाता है तथा व्यक्ति परम शान्ति को प्राप्त होता है। श्री हनुमान ब्रह्मचर्य के साकार स्वरूप हैं। भक्ति की अगाध साधना से श्री राम की अहैतुकी कृपा के फलस्वरूप हनुमान जी ने काम पर सहज ही विजय प्राप्त कर ली। काम भाव ही नहीं, श्री हनुमान ने समस्त कामनाओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। उनका कोई भी कार्य स्वार्थ पूर्ण इच्छाओं की पूर्ति के लिये नहीं था। बल्कि, उनकी अपनी इच्छा या कामना ही नहीं थी। वह तो सदैव दैवी कार्य की पूर्ति में तत्पर रहते थे। धर्म की स्थापना के लिये सदैव तत्पर थे। धर्म के प्रतिकूल आचरण करने वालों को दण्डित करने में कभी संकोच या आलस्य नहीं किया। धर्म का अर्थ क्या है? 'धर्म' शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से निकला है जिसका अर्थ है - 'धारण करना'। इस प्रकार धर्म समाज को धारण करता है, उसे बांधकर रखता है तथा बिखरने से बचाता है। धर्म समाज को विघटन से बचाकर उसे ऐक्य के सूत्र में आबद्ध करता है तथा सामाजिक व्यवस्था के विकास को सुनिश्चित करता है। अतः धर्म के प्रतिकूल जो भी इच्छा या कामना हो उसका परित्याग करना चाहिए तथा धर्म के अनुकूल जो इच्छा हो उसकी पूर्ति की जानी चाहिए। "गीता" में भगवान ने कहा है:-

"धर्मानुकूले कामोऽस्मि भूतेषु भरतर्षभ"

अर्थात्-

"हे अर्जुन! मैं प्राणियों में धर्म के अनुकूल काम हूँ।"

धर्म के अनुकूल काम में दैवी स्वीकृति अनुस्यूत होती है। श्री हनुमान तो इससे भी ऊपर उठकर दैवी इच्छा तथा ईश्वरीय प्रेरणा से भगवदर्थ कर्म

करते हैं। अतः उनके अंदर ब्रह्मचर्य मे रहने की अद्भुत क्षमता है। संयम, आत्मनियंत्रण, इंद्रिय निग्रह, मनोनिग्रह, तपस्या, ध्यान, एकाग्रता, ईश्वर चिन्तन, ब्रह्मज्ञान आदि सात्विक और आध्यात्मिक गुणों से युक्त श्री हनुमान आधुनिक युग में अत्यधिक पूजनीय हैं। आज इंद्रिय लोलुपता, स्वार्थपूर्ति, कामुकता तथा उच्छृंखलता का युग है स्वार्थ, अंहकार एवं क्षुद्र कामनाओं की पूर्ति की लालसा के कारण समाज में टकराव एवं संघर्ष व्याप्त है। विश्वजनीन स्तर पर अशान्ति छा गई है। विज्ञान के द्वारा आणविक, शक्ति का संधान करके ऐसे प्रलयकर आयुधो का निर्माण कर लिया गया है कि मानवता के द्वारा उठाया गया एक भी गलत कदम समूची मानवीय सभ्यता के विनाश का कारण बन जायेगा। अन्तर्राष्ट्रीय टकराव तथा संघर्ष के चलते दो विश्व युद्ध हो चुके हैं, परन्तु यदि तीसरा विश्व युद्ध हुआ तो मानवता की कथा कहने वाला कोई बचा न रहेगा। ऐसे भयंकर वातावरण में हमें हनुमत् चरित् के अनुशीलन की महती आवश्यकता है। वीरता और पराक्रम में बेजोड़ होते हुए भी श्री हनुमान वास्तव में शान्ति के संदेश वाहक हैं। हमें श्री हनुमान से प्रेरणा लेनी चाहिए कि जिस प्रकार वह अत्यन्त बलशाली होते हुए भी अपनी शक्ति का उपयोग सृजन के हेतु करते थे, संहार के लिए नहीं, उसी प्रकार हम भी आणविक शक्ति का संधान सृजन के लिये करें विनाश और प्रलयकारी युद्ध के लिये नहीं।

समय की मांग है कि श्री हनुमान के चरित्र का अनुशीलन किया जाय। यही कारण है कि श्री हनुमान के मंदिर देश विदेश में बहुतायत में पाये जाते है तथा असंख्य लोग उनका दर्शन पूजन कर विश्वास और शक्ति के साथ अपने कर्त्तव्य पालन के लिये कटिबद्ध होते हैं।

श्री हनुमान का महत्व अप्रतिम और अनिर्वचनीय है। वाल्मीकि रामायण मे श्री जाम्बवान कहते हैं :-

"हनुमान जी! तुम वानरराज सुग्रीव के तुल्य हो। यही नहीं, तेज तथा बल में तुम श्री रामचन्द्र जी तथा श्री लक्ष्मण जी के समान हो। गरुड़ जी के दोनों पंखों में जितना बल हैं, तुम्हारी दोनों भुजाओं में भी उतना ही बल है। अतः तुम्हारा विक्रम एवं वेग भी उनसे किसी प्रकार कम नहीं है। वानर श्रेष्ठ ! तुम्हारा बल बुद्धि तेज तथा सत्व (उत्साह) समस्त प्राणियों से विशिष्ट अर्थात् अधिक है। फिर तुम अपना स्वरूप क्यों नहीं पहचानते?"

वाल्मीकि रामायण में ही श्री राम ने हनुमान के सम्बन्ध में कहा है -

"शौर्य दाक्ष्यं बलं धैर्य प्राज्ञता नयसाधनं।'
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः।।"

अर्थात् :- शौर्य, दक्षता, बल, धैर्य, प्राज्ञता, नीति पूर्वक कार्य करने की

क्षमता, पराक्रम तथा प्रभाव इन सभी सद्गुणो ने हनुमान जी के भीतर घर कर रखा है।

श्री हनुमान शारीरिक बल के साथ बुद्धिबल और आत्मबल से भी युक्त है युद्ध में शत्रुओं के लिये प्रलय के समान भयंकर हनुमान श्री राम के समक्ष भक्ति भाव से नतमस्तक रहे हैं। अनन्य भक्ति के द्वारा श्री हनुमान ने आत्मा का साक्षात्कार किया। वह राममय हो गये। भगवान राम की कृपा भी उन पर वर्षा हुई। रुद्रावतार शंकरसुवन हनुमान राम के साथ एकाकार हो गये। यही कारण है कि श्री हनुमान की उपासना करने से बुद्धि बल, कीर्ति, धीरता, निर्भीकता, आरोग्य सुदृढ़ता और वाक्पटुता आदि फल प्राप्त होते हैं :-

> ''बुद्धिबलं यशो धैर्य निर्भयत्वमरोगता।
> सुदार्ढ्य वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाद्भवेत्।।''

श्री हनुमान भगवान राम के अनन्य भक्त एवं सेवक हैं। यही कारण है कि रामभक्तों का संरक्षण श्री हनुमान स्वयं करते हैं। असम्भव को भी सम्भव कर देने वाले हनुमान का व्यक्तित्व सहज, सरल और निरभिमान था। हनुमन्नाष्टक में श्री हनुमान कहते हैं :-

> ''शाखामृगस्य शाखायाः शाखा गन्तुं पराक्रमः।
> यत्पुर्लघितोऽम्बोधिः प्रभावो या प्रभोतव।।''

हे राम! बन्दर का पराक्रम तो एक डाल से दूसरे डाल तक जाने मे ही है। मैंने तो सिन्धु को पार कर लिया तो यह आपका ही प्रभाव है।

कितने अंहकार शून्य शब्द हैं। हनुमान जी में तो असम्भव को सम्भव कर दिखाने की क्षमता है। जाम्बवंत् कहते हैं :-

> ''कवन सो काज कठिन जग माहीं।
> जो नहि होई तात तुम्ह पाहीं।।'

श्री हनुमान का अवतरण महाप्रभु के कार्य के सम्पादन तथा धर्म और समाज की रक्षा के लिये हुआ है। भलिस्योत्तर पुराण में कथा आती है कि केशरी की पत्नी अंजना मतंग ऋषि के पास गई। वह बिलख कर कहने लगीं:- हे ऋषिवर। मैं निःसन्तान हूँ। कृपया पुत्र प्राप्ति का कोई उपाय बतायें। मतंग मुनि ने अंजना देवी को आकाश गंगा तीर्थ में जाकर बारह वर्ष तपस्या करने की आज्ञा दी। अंजना देवी सभी भोगों का त्याग कर तपस्या करने लगीं। बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर वायु देवता ने उन्हें पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया। परिणामस्वरूप अंजना देवी ने एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया जिसका मुनियो ने हनुमान नाम रखा।

ब्रह्माण्ड पुराण की कथा के अनुसार केसरी नामक असुर की एक दिव्य कन्या अंजना थी। जब अंजना बडी हुई तो वानर जाति के केसरी नामक युवक से उसका विवाह हुआ। अंजना देवी के बहुत दिनों तक कोई संतान नहीं हुई। तब अंजना देवी ने धर्म देवता जो एक वन्य स्त्री के रूप में अंजना देवी के पास आये थे, के कहने पर सात हजार वर्षों तक घोर तपस्या की। तदुपरान्त अंजना देवी ने गर्भ धारण किया और दस माह पूर्ण होने पर श्रावण मास की एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में कमल नयनी अजना ने सूर्योदय के समय कानों मे कुण्डल और यज्ञोपवीत धारण किये हुए कौपीन पहने जिसका रूप, मुख, पूंछ और अधोभाग वानर के समान लाल था, ऐसे सुवर्ण के समान रंग वाले सुन्दर पुत्र को जन्म दया।

श्री हनुमान के अवतरण के सम्बन्ध में दूसरी कथा यह है कि समुद्रमंथन के उपरान्त देवताओं और दैत्यों में अमृत वितरण के विवाद के समय भगवान विष्णु ने मोहिनीरूप धारण किया था। भगवान शंकर महाप्रभु के उस अद्भुत नारी रूप का दर्शन करना चाहते थे। अतः वह क्षीर सागर के तट पर पहुँचे तथा भगवान विष्णु से अपना मोहिनीरूप दिखाने का अनुरोध किया। परमप्रभु भी महादेव के इस अनुरोध को नहीं टाल सके तथा अपना अतिशय सुन्दर मोहिनीरूप प्रकट किया। भगवान विष्णु के उस सुन्दर नारी रूप को देखकर महादेव का रेतस् स्खलित हो गया। शंकर जी के इस वीर्य का जगत् के कल्याण के लिये उपयोग करने की दृष्टि से देवताओं ने उसे सुरक्षित रखा। सप्तर्षियो ने उस वीर्य को पत्ते पर संचित कर लिया तथा यथोचित समय पर उसे केसरी-पत्नी अंजना में कर्ण मार्ग से प्रवेश करा दिया। फलस्वरूप श्री हनुमान जी प्रकट हुये।

श्री हनुमान के अवतरण के सम्बन्ध में एक अन्य दिव्य कथा यह है कि अपने पति केसरी के साथ दीर्घकाल तक जीवन व्यतीत करने के उपरान्त भी अंजना देवी के कोई सन्तान नहीं हुई। अतः अंजना देवी ने वृषभाचल पर्वत पर श्रद्धा और विश्वास के साथ कठोर तपस्या की। अंजना के कठोर तप से प्रसन्न होकर वायु देवता प्रकट हुये तथा उनसे वर मांगने के लिये कहा। अंजना देवी ने वायु देवता से पुत्र का वरदान मांगा और वायु देवता तथास्तु कह कर अर्न्तध्यान हो गये।

श्री हनुमान जी के दिव्य जन्म के सम्बन्ध में एक कथा यह भी आती है कि अधिक आयु व्यतीत हो जाने पर भी दशरथ जी को किसी सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई, अतः उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। यज्ञ का समापन होने पर अग्नि देव प्रकट हुये और उन्होंने खीर दिया। महाराज दशरथ ने यह खीर तीनों रानियो को खाने के लिये दे दिया। कैकेयी अपना पायस लेकर खड़ी

ही थी कि एक गृधी ने झपट कर चरु को अपने चोंच में पकड़ लिया और उड़ गई।

इधर पुत्र प्राप्ति के लिये अंजना देवी ने सात हजार वर्षों तक भगवान शंकर की उपासना की। प्रसन्न आशुतोष प्रकट हुये तथा वर मांगने के लिये कहा। अंजना देवी ने उनसे पुत्र की याचना की। भोलेनाथ ने उनसे कहा - "एकादश रुद्रों में मेरा 11 वाँ रुद्र रूप तुम्हारे पुत्र के रूप में प्रकट होगा। तुम मन्त्र ग्रहण करो। पवन देवता तुम्हें प्रसाद देंगे। पवन के उस प्रसाद से तुम्हें योग्य और महान पुत्र की प्राप्ति होगी।" महेश्वर ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये। अंजना देवी मंत्र का जप करने लगी। उसी समय वह गृधी कैकेयी का पायस लिये हुये उड़ रही थी। आंधी का ऐसा झोंका आया कि पायस उसके चोंच से गिर गया। पवन देवता ने उस पायस को पकड़ लिया तथा उसे अंजना की अंजलि में डाल दिया। उन्होंने उसे ग्रहण किया तथा गर्भवती हो गई। चैत्र शुक्ल 15 मंगलवार के दिन पवित्र काल में भगवान शिव अपने अंश 11 वे रुद्र से अंजना देवी के गर्भ से पवन पुत्र हनुमान के रूप में अवतरित हुये। श्री हनुमान का स्वरूप और सौन्दर्य अनुपम एवं अनिर्वचनीय था। शरीर पर कान्ति एवं छटा विराजमान थी। वह सुवर्ण के मनोहर कुंडल धारण किये हुये थे। मस्तक पर मणि की टोपी सुशोभित थी। वे कौपीन और कछनी काछे हुये थे। वक्ष स्थल पर यज्ञोपवीत शोभायमान था। हाथ में वज्र और कटिप्रेरणा मे मूँज की मेखला सुशोभित थी। हनुमान जी का जन्म होते ही देवता, ऋषि मुनि, पर्वत, सरिता, समुद्र, पशु पक्षी, जड़ चेतन और स्वयं माता वसुन्धरा पुलकित और धन्य हो गई।

श्री हनुमान के अनेक नाम हैं। वह शंकर सुवन कहे जाते हैं क्योंकि शिवपुराण के अनुसार विष्णु के मोहिनी रूप को देखकर शंकर के संकलित वीर्य के अंजना देवी के कान के रास्ते सप्तर्षियों द्वारा स्थापित किये जाने के कारण अजना देवी के गर्भ से श्री हनुमान अवतरित हुये।

इनका दूसरा नाम पवन सुत है। प्राचीन आख्यान के अनुसार वानर श्रेष्ठ केसरी अपनी पत्नी अंजना के साथ भ्रमण कर रहे थे। अंजना का लावण्य देखकर पवन देव मोहित हो गये और उन्होंने उनका आलिंगन किया। इस पर कुपित अजना देवी ने पूछा- कौन मेरे पतिव्रत धर्म को नष्ट करने का दु:साहस कर रहा है? अभी उसे शाप देकर नष्ट कर दूँगी। इस पर पवन देव प्रकट हुये और कहा - हे सती अंजना तुम्हारा एक पुत्र होगा जो अद्भुत क्षमता वाला महान् वीर एवं पराक्रमी, विलक्षण प्रतिभा से युक्त एवं अत्यन्त बुद्धिमान होगा।

इस प्रकार भगवान शंकर ने अंश रूप से वायु का माध्यम लेकर अंजना के गर्भ से पुत्र उत्पन्न किया जो शंकर सुवन, पवनसुत, केशरीनन्दन आंजनेय

आर्ि कहलाये

पवनसुत क सभी नामो मे हनुमान नाम उनके व्यक्तित्व का मुख्य निदेशक नाम है। वाल्मीकि रामायण मे केशरीनन्दन ने श्री राम का अपना परिचय हनुमान के ही रूप में दिया:-

"अहं सुग्रीव सचिवो हनुमान् नाम वानरः"

अर्थात् - "सुग्रीव का सचिव मैं हनुमान नाम का वानर हूँ।"

संस्कृत में 'हनु' शब्द का अर्थ होता है दोनों कपोलांग। अर्थात् 'हनु' का अर्थ है ठुड्डी। इन्द्र के बज्र प्रहार से बायीं ओर की ठुड्डी टूट गई, अतः उन्हे हनुमान कहा जाता है। इस सम्बन्ध में कथा यह है कि एक दिन माता अंजना अपने पुत्र को गुफा में अकेले छोड़कर वन में गई। शिशु को बड़े जोर की भूख लगी और वह जोर-जोर से रोने लगा। तभी उन्हें पूर्व दिशा में लाल लाल सूर्य उदित होता दिखाई दिया। उसे फल समझ कर पवनसुत आकाश मे सूर्य की ओर लपके। वह कई हजार योजन लांघकर सूर्य के समीप पहुँच गये। जिस समय हनुमान सूर्य को निगलने के लिये पकड़ना चाहते थे। उसी समय राहु भी सूर्य के रथ के ऊपरी भाग पर बैठकर उन्हें ग्रसना चाहता था। परन्तु हनुमान ने राहु को स्पर्श किया तो वह डर कर इन्द्र के पास भागा और उनसे शिकायत की कि अमावस्या के उसके ग्रास को किसी और को क्यो दिया गया। इन्द्र वज्र लेकर राहु की सहायतार्थ पहुँचे। इधर राहु इन्द्र को छोड़कर सूर्य की ओर उछले। हनुमान भी राहु की ओर वायु के वेग से दौड़े। राहु भयाकुल होकर इन्द्र की शरण में गया। इन्द्र उसे सांत्वना दे ही रहे थे कि हनुमान इन्द्र के हाथी ऐरावत की ओर झपटे। तब इन्द्र ने उनके ऊपर बज्र से आघात किया जिसके कारण वह एक पर्वत पर गिर पड़े और उनकी बायी ठुड्डी टूट गई। इस प्रकार वामहनु के क्षतिग्रस्त होने के कारण इन्द्र ने उनका नाम हनुमान रखा।

श्री हनुमान के सम्बन्ध में वैदिक वाङ्मय में भी उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद का निम्न मंत्र इस सन्दर्भ में अवलोकनीय है:-

'देवास आयन् परशू रबिभ्रन्।
बना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्॥'

(ऋग्वेद मण्डल 10) सूत्र 28 मंत्र 8

श्री हनुमान लंका में अशोक वन को उजाड़ने लगे और रखवालों के रोकने पर उन्हें मार-पीट कर इतना व्याकुल कर दिया कि जो बचे उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई जिससे उन्होंने समझा कि देवता लोग आकर उपद्रव कर रहे हैं। उन्हीं रक्षकगणों ने जाकर उपर्युक्त वैदिक मंत्रों के द्वारा श्री हनुमान के सम्बन्ध में

सूचना दी।

इसी प्रकार ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 53 सूत्र के सातवें मंत्र मे वर्णन आता है कि ब्रह्मपाश में बँधजाने पर भी श्री हनुमान ने कोई परवाह नही की तब ब्रह्मपाश का अपमान न हो इसलिए देवतागण श्री रामदूत की प्रार्थना करने लगे:-

'अक्षान हो नहात नोत सोम्या इष्कृणध्वं
रशनाओत पिंशत्।
अष्टाबन्धुरं वहत्ताभितो रथं येन देवासो
अनयन्नभि प्रियम्॥'

अर्थात् हे भगवद्भक्त! परम वैष्णव श्री हनुमान जी महाराज! आपको बाधने आया राक्षस अक्ष स्वयं ही मृत्युपाश में बंध गया। आप कृपा कर इस ब्रह्मपाश बन्धन को अभी मान लीजिए। बाद में चाहे इस ब्रह्म पाश को खण्ड - खण्ड कर डालियेगा। दो हांथ, दो पांव, दो कन्धे और दो इन्द्रियाँ, इस तरह आठ जगह बँधे हुये अपने रथ शरीर को इस लंकापुरी में ले जाइये जिससे देवतागण अपना अभीष्ट प्राप्त करें अर्थात् आपके लंका में जाने से देवताओं को सुख होगा।'

आधुनिक इतिहास वेत्ता इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठाने का प्रयत्न कर सकते हैं, कि वैदिक वाङ्मय पूर्ववर्त्ती है, जब कि रामायणकाल बाद का है। श्री राम के सम्बन्ध में सर्वप्रथम वाल्मीकि ने लिखा और यह कथा आती है कि श्री राम वाल्मीकि से मिले थे। अतः इतिहासकारों को यह शंका होती है कि ऋग्वेद में श्री हनुमान के सम्बन्ध में मिलने वाले सन्दर्भ प्रक्षिप्त तो नहीं है। परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद मंत्रों का एक संकलन (संहिता) है जिसके द्वारा यज्ञों के अवसर पर देवताओं की स्तुति की जाती थी। ऋग्वेद के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। मैक्समुलर उसकी तिथि 1200 से 1000 ई०पू० मानते हैं। जैकोनी ने इसका रचनाकाल 4500 ई० पू० बताया है। बाल गंगाधर तिलक ऋग्वेद के प्राचीनतम् अंश को 6000 ई०पू० के आस-पास मानते हैं, परन्तु आधुनिक विद्वान इतनी प्राचीन तिथि में विश्वास नहीं करते। वेदों को सामान्यतः 1000 ईसा पूर्व में रचित माना जा सकता है।

पारजिटन नामक विद्वान के अनुसार श्री राम 5000 ईसा पूर्व के पहले थे। स्पष्ट है कि श्री राम का अवतार वैदिक वाङ्मय की रचना के बहुत पहले हो चुका था। पुराणों के अनुसार सृष्टि का काल विभाजन सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग में किया गया। श्री राम त्रेता युग में अवतरित हुये। वैदिक वाङ्मय बहुत बाद में विरचित किया गया। अतः वेदों में श्री राम का

सन्दर्भ आना स्वाभाविक है। वैसे भी श्री राम अनादि हैं और वेद भी उन्हीं का ज्ञान कराने वाले अनादि ग्रन्थ हैं। अतः वेदों में श्री राम और उनके अनन्य सेवक श्री हनुमान का वर्णन आना सर्वथा स्वाभाविक है।

श्री हनुमान के सम्बन्ध में यह धारणा कि वह वानर थे सर्वथा त्रुटिपूर्ण है। वस्तुत रुद्र के अवतार श्री हनुमान का जन्म व धर्म दोनों ही दिव्य है। वाल्मीकि ने उन्हें विशिष्ट पंडित, राजनीति धुरन्धर और वीर शिरोमणि सिद्ध किया है। जब हनुमान जी सर्वप्रथम श्री राम से मिले तो उनके वार्तालाप से प्रभावित होकर श्री राम ने श्री लक्ष्मण से कहा :-

"नूनं व्याकरणं कृत्स्नमानेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिद पशब्दितम्॥"

"अर्थात् हे लक्ष्मण ! मालूम पड़ता है कि इस व्यक्ति (हनुमान) ने समस्त व्याकरण शास्त्र का पूर्ण रूप से स्वाध्याय किया है, तभी तो इस लम्बी-चौड़ी बातचीत के दौरान इसने एक शब्द भी अपशब्द नहीं कहा।"

श्री हनुमान के सम्बन्ध में यह प्रश्न भी किया जाता है कि वास्तव में वह सूर्य को निगल गये थे। ऐसी शंका करने वालों को यह स्मरण रखना चाहिए कि जब योगदर्शन के अनुसार योगी दूसरे लोकों में गमन कर सकते हैं, सौर मण्डल में प्रवेश कर सकते हैं, अपने शरीर को छोटा और बड़ा कर सकते है, दूसरों के शरीर में प्रवेश कर सकते हैं तो रुद्र के अवतार हनुमान जी के लिए यह कौन सा कठिन कार्य था?

एनसाइक्लोपेडिया ब्रिटानिका के अनुसार हिन्दू पुराकथाओं के अन्तर्गत हनुमान दैवी वानर जाति के प्रमुख थे एवं रामायण महाकाल के मुख्य पात्र थे। हनुमान एक परी (अंजना) के गर्भ से वायु देवता द्वारा उत्पन्न हुये थे। अनेक वानरों की सहायता से उन्होने श्री राम को उनकी पत्नी सीता को रावण के चंगुल से छुड़ाने में सहायता की। उनके पराक्रम की अनेक गाथाये हैं। रावण के राज्य में उन्होंने राम के गुप्तचर के रूप में कार्य किया। जब उन्हें पकड लिया गया तथा उनकी पूँछ में आग लगा दी गई तब उन्होंने रावण के नगर लंका में आग लगा दी। हनुमान हिमालय तक जाकर जड़ी बूटियों का पर्वत श्री राम की सेना के घायल सैनिकों के उपचार के लिये उखाड़ लाये। उन्होने भारत तथा सिलोन के बीच की जल संयोजिनी (जलडमरु मध्य) को एक ही छलांग में पार कर लिया था।

ब्रिटानिका के अनुसार हनुमान जी की पूजा लाल चेहरे वाले वानर के रूप में की जाती है जो मानव की भाँति सीधे खड़े रहते हैं। हनुमान के मंदिर बहुतायत में मिलते हैं। हनुमान श्री राम के आदर्श भक्त जाने जाते हैं। दक्षिण

भारत की कांस्य मूर्तियों में भक्त हनुमान का चित्रण अत्यन्त कलात्मक ढग से किया गया है। जापान में भी देवता के रूप में हनुमान बहुल लोकप्रिय है जहाँ उनके अनेक मंदिर बनाये गये हैं तथा उनके नगर हनुमान के नाम से नामित किये गये हैं।

रामचरित मानस में हनुमानजी भरत जी को अपना परिचय इस प्रकार देते हैं :-

"मारुतसुत मैं कपि हनुमाना।

नामु मोर सुनु कृपा निधाना।।"

हनुमान नाम में पवनसुत के सभी गुण समाहित हो गये हैं। मेदिनी कोष के अनुसार हनु शब्द का अर्थ है मृत्यु, अस्त्र, रोग एवं दोनों कपोलांग अस्त्र एवं मृत्यु ये दोनों अर्थ हन् धातु के हिंसार्थ से सम्बन्धित हैं। अस्त्र में गति का अर्थ भी सम्मिलित है तथा इस शब्द का अर्थ है क्षेपण और दूरीकरण। हनु के इन दोनों अर्थों को मतुप् प्रत्यय के अर्थ से संयुक्त करने पर हनुमान का अर्थ होगा अस्त्रवान् एवं मृत्युमान्, ये दोनों अर्थ हनुमान् को प्रक्षेपण प्रहार एवं संहार की प्रचण्ड शक्ति से युक्त निर्दिष्ट करते हैं। इन्हीं गुणों के अनुसार हनुमान जी सर्वसंकटहर्ता, भूत प्रेत पिशाच ग्रहादि बाधा के निवारक स्तम्भक एव असुर संहारक माने जाते हैं।

श्री हनुमान भगवान राम की परमभक्ति से सम्पन्न हैं। उनमें दीनता, सरलता, नम्रता कूट कूट कर भरी हुई है।

श्रीमद्भागवत् में शुक मुनि ने राजा परीक्षित से कहा :-

"किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादि पुरुष लक्ष्मणाग्रज सीताभिराम राम तच्चरण संनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्ति रूपास्ते।"

अर्थात् :- हे राजन्! किम्पुरुष वर्ष में श्री लक्ष्मण जी के बड़े भ्राता आदि पुरुष सीता हृदयाभिराम भगवान श्री राम के चरण कमलों के सान्निध्य के परम रसिक महाभागवत् श्री हनुमान जी अन्य किन्नरगणों के सहित अविचल भक्ति भाव से उनकी उपासना करते हैं।

श्री हनुमान भगवान राम के निःस्वार्थ भक्त हैं। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। वे केवल अपने प्रभु की सेवा एवं प्रसन्नता में ही आनन्दित रहते हैं। वह भगवान राम के सर्वोत्तम दास भक्त हैं। वह बाल ब्रह्मचारी अद्वितीय वीर, अत्यन्त शक्तिवान और बुद्धिमान विद्वान, सत्यवादी, स्वामिभक्त, भगवान के तत्व, रहस्य, गुण और प्रभाव को भली प्रकार जानने वाले निःसंग और विरक्त सिद्ध, अनन्य भक्त और सदाचारी महात्मा हैं। युद्ध कौशल में सर्वथा निपुण, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ तथा भगवान् के नाम, गुण, स्वरूप और लीला

के रसिक हैं। आज भी जहाँ श्री राम की कथा या कीर्तन होता है, वहाँ हनुमान जी किसी न किसी वेष मे उपस्थित रहते ही हैं।

श्री हनुमान भगवान के श्रेष्ठ और महान् भक्त हैं। वह भगवान के प्रेम मे आमूल चूल निमग्न रहते हैं। भक्ति श्री हनुमान के रूप में साकार हो उठी है। "गीता" में भक्त के लक्षण बताते हुये श्री कृष्ण ने कहा है:-

"अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखः क्षमी।।
संतुष्टः सतत योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः।
मय्यर्पित मनोबुद्धियो मद्भक्तः समेप्रियः।।"

अर्थात् :- "जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित, स्वार्थ रहित, सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित अंहकार से रहित, सुख-दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है तथा जो योगी निरन्तर सतुष्ट है मन इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुये हैं और मुझमें दृढ़ निश्चय वाला है। वह मुझमें अर्पण किये हुये मन बुद्धि वाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।"

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त पुरुष भगवान का सच्चा भक्त होता है। श्री हनुमान मे यह लक्षण साकार हो उठे हैं। उनके अन्दर किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं है। वस्तुतः उनकी कोई स्वार्थपूर्ण इच्छा है ही नहीं, अतः किसी के प्रति द्वेषभाव होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब किसी के अंदर स्वार्थपूर्ण लालसा रहती है और कोई व्यक्ति उस इच्छा की पूर्ति में बाधा पहुँचाता है तो लालसा पूर्ति मे बाधा पहुँचाने वाले के प्रति द्वेषभाव उत्पन्न होता है। श्री हनुमान भगवान राम के अनन्य भक्त हैं। उनकी कोई स्वार्थपूर्ण इच्छा या लालसा नहीं है। इसीलिये उनके अन्दर किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं है श्री हनुमान सबके प्रति मैत्री भाव रखते हैं तथा दयालु हैं। श्री हनुमान ममता से रहित हैं। वह बाल ब्रह्मचारी है। उनका किसी के प्रति कोई मोह नहीं है। वह तो अपना सब कुछ भगवान राम को समर्पित कर चुके हैं। वह पुरी तरह से भगवान राम के हो गये है। ऐसी स्थिति में श्री हनुमान के अन्दर ममता होने का प्रश्न ही नहीं है। श्री हनुमान अहंकार से मुक्त हैं। हनुमान जी ही ऐसे देवता है जिन्हें कभी अंहकार नहीं हुआ। प्रभु राम के चरणों में पूर्णतया समर्पित होने के कारण उनका अंह पूर्णतया विलीन हो गया है। वह दुःख और सुख में समभाव रखते हैं। वस्तुत महाप्रभु राम के भक्ति के अतिरिक्त हनुमान जी का कोई प्रयोजन नहीं है। भगवान राम को पा लेने के कारण उन्हें कुछ पाना शेष नहीं है। इसीलिए वह न तो किसी बात से दुखी होते हैं और न किसी बात से सुखी। वह सदैव

सन्तुष्ट रहते हैं तथा योगी के समान भगवान राम के प्रेम में तन्मय रहते है। वह मन और इन्द्रियों सहित अपने अन्त: करण को नियंत्रण में रखते हैं। भगवान राम की भक्ति में उनका निश्चय दृढ़ है। वह भगवान के अनन्य भक्त और प्रेमी हैं। अपने मन और बुद्धि को पूरी तरह भगवान में लगा दिया। संकल्प विकल्पात्मक मन को पूर्ण रुपेण भगवान राम के चरणों में समर्पित कर दिया है। मन बड़ा चंचल होता है। उसको नियंत्रण में रखना उतना ही कठिन है जितना हवा को बांधना। चंचल मन को भगवान में लगा देने वाला व्यक्ति भगवान का सच्चा भक्त होता है बुद्धि कर्त्तव्य का निर्णय करती है। यह तर्क प्रधान होती है। तर्क वितर्क और ऊहापोह में उत्प्रेरित करने के कारण बहुधा बुद्धि मनुष्य के अन्त:करण में संशय का संचार करती है। ऐसी बुद्धि को भगवान मे समर्पित करने से मनुष्य भगवान का सच्चा और अनन्य प्रेमी हो जाता है।

इस प्रकार सच्चे भक्त की "गीता" की अवधारणा श्री हनुमान के व्यक्तित्व मे साकार हो उठी है। वस्तुतः श्री हनुमान का जीवन भक्ति की व्यवहारिक व्याख्या है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व भक्ति को सच्चे अर्थों में परिभाषित करते हैं।

श्री हनुमान दास्य भाव से भगवान राम का भजन करते हैं। वह दास्य भक्ति से पूर्ण हैं। अर्थात् वह सेवक के समान भगवान राम की सेवा करते है। वह श्रीराम को अपना स्वामी और उपासक मानते हैं। पूर्ण समर्पण भाव से वह नि:स्वार्थ सेवक हैं। वह अपने शरीर, मन बुद्धि, बल, विवेक, भाव और अन्त:करण को भगवान राम की ही सेवा में लगाये रखते हैं। वह सर्वतोभावेन भगवत्परायण है।

वैष्णव मतावलम्बियों के अनुसार दास्य रति भगवद्भक्ति का प्रारम्भिक सोपान है। दास्य भाव में भक्त अपने आप को दास एवं इष्ट को स्वामी मानकर उनकी सेवा सेवक भाव से करते हैं। श्री हनुमान भगवान राम को स्वामी मानकर मनसा, वाचा कर्मणा उनकी सेवा करते हैं।

श्री हनुमान जी अतिशय बलशाली अत्यन्त पराक्रमी, जितेन्द्रिय, ज्ञानियो मे अग्रगण्य तथा भगवान श्री राम के अनन्य भक्त हैं। उनका दिव्य रूप उत्कृष्ट स्वामि-भक्ति, अनन्य निष्ठा और प्रशंसनीय विनय का जीता जागता चित्र है। उनका चरित्र अत्यन्त उदात्त, उज्ज्वल, आदर्श और अनुकरणीय है। वह भक्त, धीर, वीर, बुद्धिमान और सभा चतुर हैं। लंका दहन के समान अत्यन्त कठिन कार्य को भी अनायास करने वाले तथा शतयोजन विस्तीर्ण सागर पार करते हुये असाध्य कर्म को करने में समर्थ हैं। श्री हनुमान का जीवन भगवान राम के लिये समर्पित था। उनके जीवन में कोई स्वार्थ नहीं है। वह काम, क्रोध, अभिमान और दर्प पर विजय प्राप्त कर चुके थे। शत्रु संहार के समय रौद्र

रूप में क्रोध अवश्य झलक जाता था, परन्तु वस्तुतः वह वीररस के सभी भाव के रूप में प्रकट होता है।

वीरता और कर्त्तव्यनिष्ठा में श्री हनुमान अतुलनीय हैं, जिस प्रकार के असाध्य और अवर्णनीय कर्मों का सम्पादन उन्होंने किया, वे अवर्णनीय हैं। फिर भी वे निरभिमान रहे। श्री हनुमान में अभिमान, स्वार्थ, काम और लोभ लेशमात्र भी नहीं है। वह जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, निःस्वार्थ निष्काम और निरभिमान हैं। वे परमभक्त श्री राम के अनन्य सेवक, प्रत्युत्पन्न मति और परोपकारी हैं। वह सभी कष्टों और दुःखों से छुटकारा दिलाने वाले हैं और लोगों में बल बुद्धि, विद्या, यश और शक्ति को बढ़ाने वाले हैं।

श्री हनुमान जी की सेवा भावना तथा सेवा परायणता ऐसी अद्‌भुत थी कि श्री राम भक्त, लक्ष्मण तथा माता सीता जी सभी उनके ऋणी बन गये। इतने महान होकर भी हनुमान जी भगवान राम के समक्ष सदैव निरभिमानिता की मूर्ति ही रहे। जब श्री हनुमान जी लंका से सीता जी का समाचार लेकर लौटे और भगवान श्री राम चन्द्र ने सब पूछकर जानकर उनके महान कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा प्रारम्भ करदी, तब विनय की मूर्ति श्री हनुमान जी ने नम्रतापूर्वक कहाः-

"बंदर का बल यही पुरुषार्थ है। यदि मेरे द्वारा कोई कार्य सम्पन्न हुआ है तो यह सब आपका ही प्रताप है। हे नाथ इसमें मेरी प्रभुता कुछ भी नही है।"

श्री हनुमान का स्वरूप चिन्मय तथा दिव्य है। उनके रूप, गुण और चरित्र का वर्णन वैदिक वांगमय में मिलता है, परन्तु विज्ञान स्वरूप होने के कारण वे अरूप हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी श्री हनुमान को सम्पूर्ण चिन्मय रूप मे स्वीकार किया हैः-

"सीता राम गुण ग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ।

वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरौ कपीश्वरौ॥"

अर्थात् :- सीताराम के गुण समूह के पुण्यमय वन में विहारकरने वाले विशुद्ध विज्ञानरूप कपीश्वर को नमस्कार करता हूं।

श्री हनुमान ज्ञान और गुणों के समुद्र हैं। तीनों लोकों में वह प्रकट एवं साक्षात् हैं। राम के दूत और अतुलनीय बल से युक्त हैं। वह अंजना देवी के पुत्र हैं तथा उनका नाम पवन सुत है। वह महावीर है, पराक्रमी और बज्र के समान अंग वाले हैं कुमति को दूर करने वाले तथा सुमति के साथ रहने वाले हैं। उनके शरीर की कान्ति स्वर्ण के समान है। वह सुन्दर वेषधारण किये रहते हैं। उनके कानों में कुंडल सुशोभित है तथा उनके बाल घुंघराले हैं। उनके

हाथ में वज्र और ध्वजा शोभायमान है। कंधे पर जनेऊ धारण किये हुये है। वह शंकर के पुत्र और केशरी के दुलारे हैं अपनी तेजस्विता और प्रताप के कारण वह महनीय हैं तथा सम्पूर्ण जगत् की वन्दना के पात्र हैं वह विद्वान गुणी और अत्यन्त बुद्धिमान है तथा भगवान राम का कार्य करने के लिये आतुर रहते हैं। वह प्रभु के चरित्र के रसिक श्रोता है तथा राम, लक्ष्मण और सीता के मन में निवास करते हैं। उन्होंने सूक्ष्म रूप धारण करके सीता जी को दिखाया तथा भयंकर रूप धारण करके स्वर्णमयी लंका को भस्म कर दिया। विकट रूप धारण करके राक्षसों का विनाश किया तथा भगवान राम के कार्य को पूर्ण किया। संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मण जी को जीवित किया जिसके कारण श्री राम ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। भगवान राम ने उनकी बड़ी प्रशसा की तथा कहा कि तुम भरत् के समान मुझे प्रिय हो। सहस्त्र मुखों वाले शेषनाग भी तुम्हारे यश का गान करेंगे। ऐसा कहकर भगवान ने उन्हें अपने गले से लगा लिया। सनकादिक मुनिवर, ब्रह्मा, नारद, सरस्वती, शेष नाग, यम, कुबेर, समस्त दिक्पाल तथा बुद्धिमान कवि भी गुणगान करते नहीं अघाते। तुमने सुग्रीव का कल्याण किया तथा भगवान राम से मिलाकर कर उन्हें राज्य दिलाया। विभीषण ने तुम्हारे परामर्श को माना और समूचा विश्व जानता है कि लका के राजा बन गये। सहस्त्रों योजन दूर सूर्य को मीठा फल जान कर आपने निगल लिया। भगवान राम की मुद्रिका अपने मुख में रखकर समुद्र को लांघ गये। विश्व में जितने दुर्गम कार्य हैं वह तुम्हारी कृपा से सुगम हो जाते हैं। तुम राम के द्वार पर रक्षक बनकर विराजमान रहते हो तथा तुम्हारी आज्ञा के बिना राम के अन्त: पुर में प्रवेश नहीं हो सकता। तुम्हारी शरण में आने पर सभी सुख प्राप्त हो जाते हैं। यदि तुम रक्षक हो तो किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। अपने तेज को तुम स्वयं ही संभाल सकते हो तथा तुम्हारी आवाज से तीनों लोक कम्पित हो जाते हैं। महावीर नाम लेने पर भूत और प्रेत निकट नहीं आते वीर हनुमान का निरन्तर जप करने से सभी रोगों का नाश हो जाता है तथा समस्त पीड़ा दूर हो जाती है। यदि कोई हनुमान जी का मनसा, वाचा, कर्मणा ध्यान करे तो वह संकट से छुड़ा देते हैं। श्री राम सर्वश्रेष्ठ तपस्वी राजा हैं। आपने उनके समस्त कार्य पूर्ण कर दिये। मनुष्य की और भी कोई इच्छा हो, हनुमान जी उसे पूरी करते हैं तथा जीवन का अमर फल प्रदान करते हैं। चारों युगों में आपका प्रताप प्रसिद्ध और प्रकाशित है। तुम असुरों का नाश करने वाले साधु संतों के रखवाले तथा राम के दुलारे हो। माता जानकी ने तुम्हें वरदान दिया है कि तुम आठों सिद्धियों और नवों निधियों के दाता हो। तुम्हारे पास राम की भक्ति का रसायन है, तुम सदैव रघुपति के दास हो। तुम्हारा भजन करने से मनुष्य राम को पा जाता है तथा

जन्म जन्मान्तर के दुःखों को भूल जाता है। अन्तकाल में वह विष्णु लोक में जन्म लेता है जहाँ वह भगवान का भक्त कहा जाता है। यदि मनुष्य किसी और देवता का ध्यान न करके हनुमान जी की ही सेवा करे तो सभी सुखों को प्राप्त कर सकता है। जो महाबली महावीरहनुमान का स्मरण करता है उसके सभी संकट और पीड़ा दूर हो जाती हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने "रामचरित मानस" में हनुमान जी की निम्नवत् स्तुति की है :-

"अतुलित बलधामं स्वर्ण शैलाभदेहं,।
दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।।
सकल गुण निधानं वानराणामधीशं।
रघुपतिवर दूतं वातजातं नमामि।।"

अर्थात् :- अतुलनीय बल के धाम, सोने के पर्वत के समान कान्तियुक्त शरीर वाले, दैत्य रूपी वन के लिये अग्नि के समान, ज्ञानियों में प्रधान, समस्त गुणों के निधान वानरों के स्वामी श्री रघुनाथ जी के श्रेष्ठ दूत पवन पुत्र को मै प्रणाम करता हूँ।"

श्री हनुमान के अन्दर इतना बल है कि उसकी तुलना नहीं की जा सकती। बल और पराक्रम ने तो मानो उनके व्यक्तित्व में अपना घर ही बना लिया है गोस्वामी जी ने लिखा है "पवन तनय बल पवन समाना।" श्री हनुमान पवन के पुत्र हैं तथा उनके अन्दर पवन के समान बल है।" "राम काज सब करिहहु तुम बल बुद्धि निधान।" श्री हनुमान के व्यक्तित्व और कृतित्व से सर्वतोभावेन सिद्ध है कि बल और पराक्रम में वह अपनी तुलना आप है।

श्री हनुमान के शरीर की कान्ति सोने के पर्वत के समान है। श्री हनुमान "कनक भूधराकार शरीरा समर भयंकर अति बल वीरा हैं।"

श्री हनुमान "दनुज वन कृशानु" अर्थात् राक्षस रूपी वन के लिये अग्नि के समान हैं। प्रनवऊँ पवन कुमार खल बन पावक ज्ञान घन। लंका दहन करने मे समर्थ श्री हनुमान के लिये दनुज वन कृशानु की संज्ञा सर्वथा सार्थक है।

श्री हनुमान ज्ञानियों में अग्रगण्य हैं। ज्ञानी पुरुषों में उनकी प्रथम गणना है। वह सकल गुण निधान हैं। सीता जी ने उन्हें शुभाशीष दिया - "अजर अमर गुण निधि सुत होहू।"

"सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदय बसहु हनुमन्त" कह कर श्री हनुमान के व्यक्तित्व में समस्त गुणों के सन्निकेता की शुभकामना की गई।

श्री हनुमान वानराणामधीशः अर्थात् वानरों के राजा हैं। गोस्वामी जी ने

लिखा है -

"नव तुलसिका वृंद तहँ देखि हरषि कपिराई।"

प्रश्न यह उठता है कि वानरों के राजा सुग्रीव हैं तो हनुमान जी को राजा क्यों कहा? इसका समाधान यह है कि राजा का कर्म रक्षा करना है। हनुमान जी ने वानरों के प्राणों की रक्षा की है। अतः उन्हें वानरों का अधीश्वर कहा गया :-

"राखे सकल कपिन्ह के प्राना।"

श्री हनुमान भगवान राम के श्रेष्ठ दूत हैं। श्रेष्ठ दूत कहने का भाव यह है कि उन्होंने आज्ञा से अधिक काम किया।

"राम कृपा भा काज बिसेखी।"

श्री हनुमान जी सनातन चिरंजीवी और परात्पर हैं। स्वयं भगवान उनके यश का वर्णन करते नहीं अघाते। गोस्वामी तुलसीदास ने "रामचरित मानस" मे लिखा है :-

"महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।"

हनुमान जी के जीवन का परम लक्ष्य श्री राम का कार्य और सेवा करना है।

हनुमान जी स्वयं कहते हैं :-

"राम काज कीन्हें बिना मोहिं कहाँ बिश्राम।"

बाल्मीकि रामायण में हनुमान जी की विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् किया गया है:-

"पराक्रमोत्साहमति प्रताप सौशील्य माधुर्य नयानयैश्च।
गाम्भीर्य चातुर्य सुवीर्यधैर्यहनूमतः कोउप्यधिकोअस्तिलोके।।"

अर्थात् :- संसार में ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति अनीति के विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्य में श्री हनुमान जी से बढ़कर हो।"

स्कन्दपुराण में उल्लेख है कि साक्षात् शिव ने हनुमान जी को अजर, अमर, अजेय और समस्त आयुधों से अबध्य, शत्रुओं को भयाकुल करने वाला तथा मित्रों को अभयदाता होने का वरदान दिया था। कथा है कि इन्द्र के बज्र से हनुमान जी के मूर्च्छित होने पर वायु देव ने महाकाल वन में शिवलिंग की अराधना की। लिंग का स्पर्श करते ही हनुमान जी में प्राण का संचार हो गया।

उस समय शिवलिंग ने हनुमान जी को वर दिया :-

"आयुधानां हि सर्वेषामवध्योऽयं भविष्यति।
अजरश्चामरश्चैव भविष्यति न संशयः।।
अमित्र भयदोप्येष मित्राणांभयप्रदः।
अजेयो भवितायुद्धे लिंगेनोक्तं पुनः पुनः।।"

श्री हनुमान साक्षात् परब्रह्म हैं। वे रुद्र रूप में प्रकट महादिव्य शक्ति के भागवत् ज्योति के प्रतीक है। वे ऊँ स्वरूप हैं। परम उपास्य हैं। ऊँकार में मकार उन्हीं का रूप है। मकार शिव का वाचक है।

"मकाराक्षरसम्भूतः शिवस्तु हनुमान् स्मृतः।"

गोस्वामी तुलसीदास ने हनुमान जी को अत्यन्त स्फूर्तिवान, बलवान एव वेगवान बताया है। वह लिखते हैं :-

"जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।
तेही भाँति चलेऊँ हनुमाना।।"

श्री हनुमान जी को श्री राम के अचूक बाणों की उपमा दी गई है क्योकि भगवान राम के बाण कभी व्यर्थ नहीं जाते, लक्ष्य को बेधकर ही लौटते है। जैसे श्री राम के बाण किसी के रोकने से नहीं रूकते, बल्कि कार्य पूरा करके ही दम लेते हैं उसी प्रकार हनुमान जी भी अपने कार्य को पूरा करने की क्षमता रखते हैं। बाल्मीकि रामायण में हनुमान जी स्वयं कहते हैं:-

"यथा राघव विनिर्युक्तः शरः श्वसन विक्रमः।
गच्छेत्तद् गमिश्यामि लंका रावणपालिताम्"।।
अनेनैव हि वेगेन गमिश्यामि सुरालयम्।
सर्वथा कृतकार्योऽहमेश्यामि सह सीतया।।"

अर्थात् :- "जिस प्रकार राघव का छोड़ा हुआ बाण पवन वेग से जाता है और पराक्रम करके लौटता है, वैसे ही मैं लंका में जाऊँगा। यदि वहाँ सीता जी न मिलीं तो उसी वेग से देव लोक में जाकर ढूढूँगा। जैसे बनेगा, कार्य पूरा करके लौटूँगा।"

श्री हनुमान जी का चरित्र सेवा और आत्मसमर्पण का प्रत्यक्ष रूप है। साथ ही उनके अपूर्व शौर्य, और अगाध बाहुबल से बड़े - बड़े वीर कांप उठते थे परन्तु वह अपने बल का उपयोग दुष्टों के संहार के लिए ही करते थे। वह अशरण शरण थे तथा धर्म परायण और असहाय लोगों की रक्षा में तत्पर रहते थे। अखण्ड ब्रह्मचर्य के प्रतीक थे अत्यन्त बलवान और विद्वान होते हुये

भी सदैव निरीह और अनन्य भक्त के रूप में कर्मरत रहे। अपनी बुद्धिमत्ता और बाहुबल के विषय में तो वह स्वयं ही अनभिज्ञ बने रहते थे। जाम्बवान जी को उनकी शक्ति की याद दिलानी पड़ी थी।

श्री हनुमान अखण्ड शक्ति के स्रोत हैं। अशरण शरण हैं। दीनजन के सहाय है और दुष्टों के लिये कालस्वरूप हैं। उनका जीवन समर्पित भक्त का जीवन था। उनका कोई व्यक्तिगत सुख-दुःख तो था ही नहीं। वह तो भगवान के एक निष्ठ उपासक हैं इसीलिये समस्त जगत् के कष्ट को दूर करने के लिये सदा उद्यत रहते हैं।

हनुमान जी में अभिमान, स्वार्थ, काम और लोभ इन सबका लवलेश भी नहीं है वे जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी निःस्वार्थ, निष्काम, निर्लोभ और निरभिमान हैं। वे परमभक्त, श्री राम के अनन्य सेवक, प्रत्युत्पन्नमति और परोपकारी हैं। वे संकट मोचन, संकट हरण, शत्रु पर विजय और रोगों से छुटकारा दिलाने वाले तथा लोगों में बल, विद्या, बुद्धि यश तथा शक्ति को बढ़ाने वाले हैं।

सम्पूर्ण सृष्टि में परमब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त किसी का कोई अस्तित्व नहीं है। स्थावर जंगम रूप में जो कुछ भी तत्व दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे सब ब्रह्म के ही प्रतीक हैं। परब्रह्म अमृत स्वरूप, मृत्यु और परिवर्तन रूप विकार से रहित तथा नित्य सत्य परमानन्दस्वरूप हैं। ब्रह्म ही विश्व का यथार्थ रूप है तथा वही एकमात्र आराध्य तथा आकांक्षणीय तत्व है। हमारा जीवन श्रेयस्कर तभी हो सकता है जब हम सम्पूर्ण दृश्यमान विश्व तत्व को साक्षात् ब्रह्म के ही रूप में अनुभव करें, जिससे समस्त चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवन धारण करते हैं तथा अन्त में इस लोक से प्रयाण करते हुये जिसमें समाविष्ट हो जाते हैं वही ब्रह्मपद वाच्य है।

विश्व के समस्त प्राणी परमेश्वर के ही अंशभूत हैं। "गीता" में भगवान कृष्ण ने कहा है :- ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः। जो जीव दिव्य शक्तियों से युक्त हुये वे देवता हो गये, हनुमान जी अपने दिव्य गुणों के कारण देव कोटि में आते हैं।

हनुमान जी नित्य जीवी तथा अजर अमर है। लंका विजय के उपरान्त हनुमान जी ने भगवान राम से यही याचना की थी कि श्री राम में सदैव उनकी निश्चल भक्ति बनी रहे। तब श्री राम ने उन्हें वरदान दिया था:-

"हे कपि श्रेष्ठ ! ऐसा ही होगा। संसार में मेरी कथा जब तक प्रचलित रहेगी, तब तक तुम्हारी कीर्ति भी अमिट रहेगी और तुम्हारे शरीर में प्राण भी रहेंगे। तुमने मेरे ऊपर जो उपकार किये हैं, उनका बदला मैं नहीं चुका सकता।"

भगवान राम द्वारा यह आशीर्वाद दिये जाने पर श्री हनुमान ने भगवान से कहा :-

"जब तक संसार में आपकी पावन कथा का प्रचार होता रहेगा तब तक मै आपकी आज्ञा का पालन करते हुये पृथ्वी पर रहूंगा। इन्द्र ने भी हनुमान जी को वरदान दिया कि "इनकी मृत्यु तब तक नहीं होगी जब तक स्वयं इन्हे मृत्यु की इच्छा नहीं होगी।"

एक बार माता सीता द्वारा दिये गये मणि और रत्नों से विभूषित हार को पहन कर हनुमान जी भगवान राम के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े थे। भगवान ने इनकी अनन्य भक्ति के कारण प्रसन्न होकर कहा :- हनुमान मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम जो वर चाहो मांग लो। जो वर त्रिलोकी में देवताओं को मिलना दुर्लभ है वह भी मैं तुम्हें अवश्य दूँगा। तब हनुमान जी ने भगवान राम से निवेदन किया :- प्रभो! आपका नाम स्मरण करते हुये मेरा मन तृप्त नहीं होता। अतः मैं निरन्तर आपके नाम का स्मरण करता हुआ पृथ्वी पर स्थित रहूँगा। भगवान मेरा मनोवांछित वर यही है कि जब तक संसार में आपका नाम स्थित रहे, तब तक मेरा शरीर भी विद्यमान रहे। इस पर भगवान श्री राम ने कहा :- ऐसा ही होगा। तुम जीवन्मुक्त होकर संसार में सुखपूर्वक रहो। कल्प का अन्त होने पर तुम्हें मेरे सायुज्य की प्राप्ति होगी। इसमें संदेह नहीं है।

इस प्रकार हनुमान जी नित्य जीवी, इच्छा मृत्यु तथा अजर अमर हैं। भगवान श्री राम से उन्हें काल के अन्त में सायुज्य मुक्ति का वरदान प्राप्त है अतः उनकी अजरता अमरता में कोई संशय नहीं है। आज भी वह अपने भक्तों को यदा-कदा दर्शन देते हैं।

एक बार भगवान शंकर कैलाशपर्वत के शिखर पर समाधिस्थ थे। भगवती सती उनके बगल में विराजमान थीं। एकाएक राम राम कहते हुये उन्होंने अपनी समाधि भंग की। सती ने देखा कि भगवान शंकर अपूर्व भाव से उन्हें देख रहे हैं। वे सामने खड़ी हो गई और हाथ जोड़कर विनय के साथ कहने लगीं.-

भगवन्! इस समय मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मेरे लिये आपकी क्या आज्ञा है? भगवान शंकर ने कहा :-

"प्रिये ! आज मेरे मन में एक बड़ा ही शुभ संकल्प उठ रहा है। मैं सोच रहा हूं कि जिनका निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ वही मेरे स्वामी संसार में अवतार ले रहे हैं। मैं सोच रहा हूं कि संसार में जाकर उनकी सेवा करूँ तथा अपना जीवन सफल बनाऊँ" इस पर सती ने कहा :- 'आपका संकल्प तो बहुत अच्छा है, परन्तु वियोग के भय से मेरा मन दुःखी हो रहा है। एक

बात और है। भगवान का अवतार इस बार रावण को मारने के लिये हो रहा है। वह आपका बड़ा भक्त है। उसने अपने सिर तक आपको काट कर चढ़ाये है। ऐसी स्थिति में आप उसको मरने के भय में कैसे सहायता कर सकते है?'

भगवान शङ्कर ने हँस कर कहा :-

"देवि ! तुम बड़ी भोली हो। उसमें वियोग की तो कोई बात ही नही है। मैं एक रूप से अवतीर्ण होकर उनकी सेवा करूँगा और एक रूप से तुम्हारे साथ रहकर तुम्हें उनकी लीलायें दिखाऊँगा। रह गई तुम्हारी दूसरी बात सो तो जैसे रावण ने मेरी भक्ति की है, वैसे ही उसने मेरे एक अंशकी अवहेलना भी की है। तुम तो जानती ही हो कि मैं ग्यारह स्वरूपों में रहता हूँ। जब उसने दस सिर चढ़ाकर मेरी पूजा की थी तब उसने मेरे एक अंश को बिना पूजा किये ही छोड़ दिया था अब मैं उसी अंश के रूप में उसके विरुद्ध युद्ध कर सकता हूँ। मैंने वायु देवता के द्वारा अंजना के गर्भ से अवतार लेने का निश्चय किया है।"

देवराज इन्द्र की अमरावती में एक पुंजिक स्थला नामक अप्सरा थी। एक दिन उससे कोई अपराध हो गया जिसके कारण उसे वानरी होकर पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ा। शाप देने वाले ऋषि ने बड़े अनुनय विनय के बाद इतनी कृपा कर दी जब जैसा चाहे, तब वैसा रूप धारण कर ले। चाहे जब वानरी रहे, चाहे जब मानवी, वानर राज केशरी ने उसे पत्नी के रूप में ग्रहण किया था।

एक दिन अंजना तथा केशरी दोनों सुमेरु पर्वत पर विचरण कर रहे थे। वायु के झोंके से अंजना की साड़ी का पल्ला उड़ गया। अंजना को ऐसा लगा जैसे उसे कोई स्पर्श कर रहा है। वह अपने कपड़े को संभालती हुई अलग खडी हो गई। उसने डाटते हुये कहा :- कौन ढीठ है जो मेरे पतिव्रत्य को नष्ट करना चाहता है? मेरे इष्टदेव, मेरे पतिदेव सामने विद्यमान हैं और कोई मेरा व्रत नष्ट करना चाहता है? मैं अभी शाप देकर उसे भस्म कर दूँगी। इस पर वायु देवता ने कहा :- देवि ! मैंने तुम्हारा व्रत नष्ट नहीं किया है। तुम्हें एक ऐसा पुत्र होगा जो शक्ति में मेरे समान होगा। बल और बुद्धि में उसकी समानता कोई नहीं कर सकेगा। मैं उसकी रक्षा करूँगा। भगवान शंकर ने अंश रूप से अंजना के कान के द्वारा उसके गर्भ में प्रवेश किया।

गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रसंग का "दोहावली" में निम्नवत् वर्णन किया है:-

"जेहि सरीररति राम सो, सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्र देहतजि नेह बस बानर भे हनुमान।।"

चैत्र शुक्ल 15 मंगलवार के दिन अंजना के गर्भ से भगवान शंकर ने वानर रूप से अवतार लिया। अंजना और केसरी बड़े मनोयोग से बालक का लालन पालन करने लगे। एक दिन बच्चे को छोड़कर अंजना देवी कहीं फल-फूल लाने के लिये चली गई। केसरी पहले से ही कहीं गये थे। बालक घर मे अकेला था। उसे बहुत भूख लगी हुई थी। उसकी दृष्टि सूर्य पर पड़ी। उसने सूर्य को मीठा फल जानकर उनकी ओर उड़ान भरी। वह आकाश में उड़ने लगा। देवता, दानव, यक्ष आदि इसे देखकर विस्मित हो गये। वायु के मन मे भी शंका हुई। उन्होंने सोचा कि कहीं यह नन्हा सा बालक सूर्य की किरणों से जल न जाय। उन्होंने हिमालय और मलयाचल से शीतलता एकत्र की और अपने पुत्र के पीछे-पीछे चलने लगे। उस दिन ग्रहण था। अपना समय जान कर राहु सूर्य को ग्रसने के लिये आया। उसने देखा कि एक वानर बालक सूर्य के रथ पर बैठा हुआ है। पहले तो राहु ने कोई परवाह नहीं की। पहले की भाँति ही सूर्य पर टूट पड़ा। परन्तु जब वानर ने अपने कठोर हाथों से उसे पकड़ लिया तो राहु भयभीत हो गया और अपने को छुड़ा कर भागा। वह सीधे देवराज इन्द्र के पास गया तथा उनसे उस वानर शिशु की शिकायत की। उन्होंने पुनः राहु को सूर्य के पास भेजा। दुबारा राहु के जाने पर उसे खाने की चीज समझ कर उस पर टूट पड़ा। राहु डर गया तथा इन्द्र को पुकारने लगा। इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर उसकी रक्षा के लिये दौड़े। ऐरावत को देखकर बालक ने राहु को छोड़ दिया और ऐरावत को अच्छा सा फल समझ कर पकड़ने के लिये दौड़ा तब इन्द्र ने डर कर अपना बज्र फेंका और जिससे बालक की बायीं हनु (ठुड्डी) टूट गई। बालक घायल होकर पहाड़ पर गिर गया और छटपटाने लगा।

वायु देवता बालक को उठाकर गुफा में ले गये। उन्हें इन्द्र पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपनी गति बन्द कर दी। वायु के बंद हो जाने से हाहाकार मच गया। सबकी सांस बन्द होने लगी। देवता भी घबरा गये। इन्द्र दौड़े हुए ब्रह्मा के पास गये। उसी क्षण ब्रह्मा पर्वत की उस गुफा में आये तथा अपने हाथों से बालक का स्पर्श करके उसे जीवित कर दिया। पवन देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने समूचे जगत् में प्राण का संचार कर दिया। ब्रह्मा ने देवताओं से कहा-, यह साधारण बालक नहीं है। यह देवताओं का कार्य साधन करने के लिए ही प्रकट हुआ है। इसलिए आप सब देवता इसको वरदान दें। इस पर इन्द्र ने कहा - मेरे बज्र के द्वारा इसकी हनु टूट गई है, इसलिए इसका नाम हनुमान होगा और मैं वर देता हूँ कि मेरे बज्र से हनुमान का कभी बाल बाका नहीं होगा। सूर्य ने कहा- "मैं अपना शतांश तेज इसे देता हूँ। मेरी शक्ति से यह अपना रूप बदल सकेगा और जब इसे शास्त्र का अध्ययन करने की

इच्छा होगी तो मैं सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन करा दूँगा। यह बड़ा भारी वागर्म होगा। वरूण ने अपने पाश और जल से निर्भय होने का वरदान दिया। कुबे आदि देवताओं ने भी अपनी-अपनी ओर से हनुमान को निर्भय किया। विश्वकम ने अपने बनाये हुए दिव्यास्त्रों से अवध्य होने का वरदान दिया। ब्रह्मा ने ब्रह्मज्ञान दिया, चिरायु होने के साथ ही ब्रह्मास्त्र और ब्रह्मपाश से भी मुक्त कर दिया

बड़े होने पर वानर राज केसरी ने विद्याध्ययन के लिए उन्हें सूर्य के पास भेज दिया। वहाँ जाकर हनुमान ने समस्त वेद वेदांगों का अध्ययन किया।

भगवान राम का अवतार हो चुका था। भगवान शंकर उनकी बाल लीलाओं का आनन्द लेने के लिए प्रायः ही अयोध्या में आते थे। एक दिन भगवान राम खेलने के लिए महल से बाहर आने लगे, उसी समय एक मदारी आया। उसके साथ एक अत्यन्त सुंदर नाचने वाला बंदर था। यह साधारण बंदर नहीं था, बल्कि भगवान को रिझाने के लिए ही हनुमान रूप में प्रकट होने वाले स्वयं शिव थे। आखिर, भगवान रीझ गये। बंदर का नाच देखकर सब लोग लौटने लगे। परन्तु भगवान राम अड़ गये। उन्होंने कहा कि मैं तो यह बंदर लूँगा। महाराज दशरथ ने आज्ञा दी कि बंदर के बदले में मदारी जितना धन चाहे ले ले बंदर मेरे राम को दे जाय। मदारी धन के लिये तो आया नहीं था। वह तो अपने आपको प्रभु के चरणों में समर्पित करने के लिए आया था। भगवान राम ने उस बंदर को ग्रहण किया। स्वयं भगवान शंकर हनुमान रूपी वानर के रूप में श्रीराम के हाथों नृत्य करने लगे। हनुमान बहुत दिनो तक भगवान राम की सेवा और मनोरंजन करते रहे। जब विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को लेने आये तब भगवान ने उन्हें एकान्त में बुलवाकर समझाया। उन्होंने कहा हे हनुमान तुम मेरे अन्तरंग हो। तुमसे मेरी कोई लीला छिपी नहीं है। आगे चलकर मैं रावण को मारूँगा। उस समय मुझे वानरों की आवश्यकता होगी। रावण ने बालि को मिला रखा है। खर दूषण, त्रिशिरा, शूर्पणखा दण्डक वन में है, मारीच, सुबाहु, ताड़का हमारे पड़ोस में ही हैं, उनका जाल चारो ओर फैला है। तुम शबरी से मिलकर ऋस्यमूक पर्वत पर जाओ और वहाँ सुग्रीव से मित्रता करो। मैं धीरे-धीरे रास्ता साफ करता हुआ वहाँ आऊँगा, तब तुम सुग्रीव को मुझसे मिलाना और वानरी सेना एकत्रित करना। फिर रावण का वध कर के अवतार का उद्देश्य पूरा किया जायेगा। हनुमान जी ने भगवान की आज्ञा शिरोधार्य करके ऋस्यमूक पर्वत के लिए प्रस्थान किया।

उन दिनों बालि से भयभीत होकर सुग्रीव अपने मंत्रियों के साथ ऋस्यक पर्वत पर रहते थे। हनुमान भी उनके साथ थे। एक दिन वह अपने मंत्रियो और हनुमान जी के साथ बैठे विविध विषयों पर चर्चा कर रहे थे। एकाएक उनकी दृष्टि पंपासर की ओर चली गई। उन्होंने देखा कि वहाँ दो सशस्त्र व्यक्ति

खडे हैं। उन्होंने कहा - हनुमान जी पता लगाइये कि यह दोनों वीर पुरुष कौन है?

सुग्रीव की आज्ञा से हनुमान सुपात्र ब्रह्मण का वेश बनाकर उनके पास गये। उन्होंने उनसे कहा- आपके मुख मण्डल का तेज बता रहा है कि आप साधारण पुरुष नहीं हैं। अलौकिक हैं। क्या आप तीनों देवताओं में से कोई है? कहीं आप साक्षात् नर नारायण ही तो नहीं हैं? मेरे मन में बड़ा आकर्षण हो रहा है। आपके सौन्दर्य और माधुर्य से मेरा चित्त मुग्ध हुआ जा रहा है। कृपया बताइये कि आप कौन हैं?

भगवान राम मन्द-मन्द मुस्कराते हुए हनुमान की बात सुन रहे थे। उन्होने लक्ष्मण की ओर देखकर कहा- यह ब्राह्मण बड़े बुद्धिमान हैं। इनकी बातो से लगता है कि इन्होंने सांगोपांग वेदों का अध्ययन किया है। इनके बोलने में एक भी अशुद्धि नहीं हुई इनकी आकृति पर ऐसा कोई लक्षण प्रकट नहीं हुआ है जिससे इनका भाव दूषित कहा जा सके। यह किसी राजा के मंत्री होने के योग्य हैं। इनकी उच्चारण शैली और नीमिमत्तता दोनों ही गम्भीर तथा प्रभावोत्पादक हैं। राम का संकेत पाकर लक्ष्मण ने कहा- "हम लोग अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के पुत्र हैं। उनकी आज्ञा मानकर 14 वर्ष के लिए वन मे आये हैं। यहाँ किसी राक्षस ने जनकनन्दिनी सीता का अपहरण कर लिया है। हम लोग उन्हीं को खोजते हुए घूम रहे हैं। अब आप अपना परिचय दीजिए।"

लक्ष्मण की बात समाप्त होते-होते हनुमान का रूप बदल गया। वे वानर रूप में भगवान के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने कहा- प्रभु मैं पशु हूँ। साधारण जीव हूँ। मैं आपको भूल जाऊँ, मैं आपके सामने अपराध करूँ, यह स्वभाविक है। परन्तु आप मुझे कैसे भूल गये? मैं तो आपकी आज्ञा से सुग्रीव के पास रहकर बहुत दिनों से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। सुग्रीव भी बड़े दुःखी हैं। मैने उन्हें आपका परिचय देकर ढाँढस बंधा रखा है। उन्हें अब एक मात्र आपका ही भरोसा है। अब आप चलकर उन्हें स्वीकार कीजिये और उनकी विपत्ति टालकर उनसे सेवा लीजिए।" हनुमान ने दोनों भाइयों को कन्धे पर बिठा लिया तथा सुग्रीव के पास ले गये।

राम और सुग्रीव की मित्रता हुई। बालि मारा गया। सुग्रीव वानरों के राजा हुए। भोगविलास में पड़कर सुग्रीव राम का काम भूल गये। परन्तु हनुमान कैसे भूलते। वह सुग्रीव को याद दिलाते रहे। परन्तु सुग्रीव ने सुनी अनसुनी कर दी। जब लक्ष्मण ने सुग्रीव को उपेक्षा करते देखा तो बड़े क्रोधित हुए। सुग्रीव राम के पास पहुँचे तथा अपने प्रमाद के लिए क्षमा मांगी। सुग्रीव ने चारों ओर वानरों और भालुओं को सीता की खोज के लिए भेजा तथा आदेश

दिया कि जो एक महीने में निर्दिष्ट स्थानों का पता लगाकर नहीं लौटेगा उसे मै बड़ा कठोर दंड दूँगा।

दक्षिण दिशा में जाम्बवान, हनुमान, अंगद, नील आदि को भेजा गया। सुग्रीव ने हनुमान से कहा- हनुमान! जल में, थल में, नभ में सर्वत्र एक सी तुम्हारी गति है। स्वर्ग अथवा अन्तरिक्ष में भी ऐसा कोई नहीं जो तुम्हारी गति रोक सके। तुम अपने पिता के समान ही गति, वेग, तेज और स्फूर्ति से युक्त हो, तुम सब कुछ जानते ही हो, तुमसे और क्या कहूँ? मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम सीता का पता लगा कर ही लौटोगे।

हनुमान, जाम्बवान, अंगद आदि ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये। अंगद ने कहा भाई अब एक महीना बीत गया, न हम लोग जानकी का पता लगा सके और न जहाँ-जहाँ जाना चाहिए था, वहाँ-वहाँ जा ही सके। अब वहाँ जाने पर सुग्रीव अवश्य मुझे मार डालेंगे। सब लोग बहुत दुखी होकर बैठे थे। कौन पार जा सकता है? इस विषय पर विचार होने लगा। सबने समुद्र पार जाने में असमर्थता प्रकट की। अंगद ने भी कहा- मैं किसी प्रकार पार तो जा सकता हूँ, परन्तु लौटने में मुझे सन्देह है। जाम्बवान ने भी वृद्धावस्था के कारण लाचारी प्रकट की। अब तक हनुमान चुप थे। जाम्बवान ने हनुमान जी से कहा- हनुमान! तुम चुपचाप कैसे बैठे हो? तुम्हारा जन्म ही राम के काम के लिए हुआ है। वायु नन्दन! तुम अपने पिता के समान क्षण भर में ही समुद्र पार कर सकते हो। तुम्हारी बुद्धि अप्रतिम है। तुम विवेक और ज्ञान के निधान हो। तुम अपने अदर इतना बल लेकर चुपचाप कैसे बैठे हो?

हनुमान निरन्तर भगवान के भजन में ही तल्लीन रहते थे। उन्हें अपनी अथवा अपने बल की स्मृति ही नहीं रहती थी। जाम्बवान की बात सुनते ही उन्हें ऐसा मालुम हुआ कि मुझमें अपार शक्ति है। मुझ पर भगवान की अनन्त कृपा है। भगवान की सारी शक्ति मेरी शक्ति है। उनका शरीर बढ़कर सुमेरू पर्वत का सा हो गया। उन्होंने गर्जना करते हुए कहा- "इस समुद्र में क्या रखा है? भगवान की कृपा से मैं ऐसे सैकड़ों समुद्र लांघ सकता हूँ। यदि लंका मे मुझे सीता न मिली तो मैं स्वर्ग से लेकर ब्रह्म लोक तक छान डालूँगा। लका के साथ त्रिकूट पर्वत को उखाड़ लाऊँगा, रावण को मार डालूँगा, ऐसी कोई शक्ति नहीं जो भगवान का कार्य करते समय मेरे मार्ग में रोड़ा अटका सके।" इस पर सभी वानर हर्षित हो गये। हनुमान उछलकर एक बड़े पर्वत श्रृंग पर चढ़ गये। उनके चरणों के आघात से बड़े बड़े पर्वत श्रृंग टूट कर गिरने लगे। उनकी पूंछ की चोट से बड़े-बड़े वृक्ष आकाश में उड़ने लगे। देवताओं ने जय-जयकार किया। ऋषियों ने शान्तिपाठ किया। वायु ने सहायता की। समुद्र पार जाने के लिए हनुमान उछल पड़े। वह समुद्र के ऊपर आकाश मार्ग से

चले जा रहे थे।

समुद्र ने मैनाक से रामदूत का स्वागत करने के लिए कहा। मैनाक बड़ा विशाल रूप धारण करके समुद्र के ऊपर निकल आया। हनुमान ने समझा कि यह कोई विघ्न है। वह मैनाक पर पैरों का प्रहार करने ही जा रहे थे कि मैनाक मनुष्य का रूप धारण करके अपने श्रृंग पर खड़ा हो गया और निवेदन किया- हनुमन्! तुम मेरे सहायक वायु के पुत्र हो। जब इन्द्र अपने बज्र द्वारा पर्वतों की पाँखें काट रहे थे, तब तुम्हारे पिता की सहायता से मैं समुद्र मे आ घुसा और अपने आपको बचा सका। मैं तुम्हें विश्राम देना चाहता हूँ। थोड़ी देर थकावट मिटा कर फिर जाना। भगवान राम का काम तो सम्पूर्ण जगत् का काम है। उनके दूत की सहायता सारे जगत् की सहायता करना है।

हनुमान ने मैनाक से कहा - मैनाक! तुम मुझ पर बड़ा स्नेह रखते हो। तुम मेरे पिता के समान बन्दनीय हो। मुझे तुम्हारी आज्ञा का पालन करना चाहिए। परन्तु मैं इस समय भगवान राम के काम से जा रहा हूँ। इस समय मैं नहीं रूक सकता। मुझे क्षमा करो।

हनुमान समुद्र के ऊपर उड़ चले। देवताओं ने उनकी बुद्धि की परीक्षा करने के लिए नागमाता सुरसा को भेजा। वह आकर हनुमान के सामने खड़ी हो गई और कहने लगी कि आज मुझे भाग्यवश भोजन मिला है। मैं पेट भर खाऊँगी। हनुमान ने सुरसा से प्रार्थना की- राम का काम है, पहले मुझे कर लेने दो, तब मुझे खा जाना। मैं मृत्यु से नहीं डरता। परन्तु जब उसने अस्वीकार कर दिया तब हनुमान ने उससे मुँह फैलाने को कहा। वह जितना ही मुँह फैलाती, हनुमान उससे दुगुने हो जाते। जब उसने सौ योजन का मुँह बना लिया, तब हनुमान छोटा सा रूप बनाकर उसके मुँह में घुसकर फिर निकल आये। हनुमान के बुद्धि कौशल को देखकर सुरसा बहुत प्रसन्न हुई और उसने सफलता का आशीर्वाद देकर विदा किया।

राहु की माता सिंहिका समुद्र में ही रहती थी, ऊपर उड़ने वालों की छाया जल में पड़ती तो वह छाया ही पकड़े लेती और उड़ने वाला विवश होकर जल में गिर पड़ता इस प्रकार वह अनेकों का संहार कर चुकी थी। हनुमान के साथ भी उसने यही छल किया। अपनी गति को रुकती देखकर हनुमान ने नीचे दृष्टि डाली और उस राक्षसी को पहचान लिया उन्होंने एक प्रहार से ही उसका काम तमाम कर दिया और हनुमान निरापद रूप से समुद्र के दूसरे तट पर पहुँच गये।

अब हनुमान जी ने लंका में प्रवेश की बात सोची। इतने विशाल शरीर से लंका में जाना और वहाँ की प्रत्येक बात को गौर से देखना आवश्यक था।

इसलिए हनुमान जी ने अणिमा सिद्धि का प्रयोग करके अपने को छोटा बना लिया और लंका के द्वार पर पहुँचे। लंका नगर की अधिष्ठात्री देवी लंकिनी ने संध्या के समय छिपकर इन्हें प्रवेश करते हुए देखा। उसने हनुमान जी के पास आकर डाटा-क्या तुम चोरी करना चाहते हो? हनुमान ने उसे एक घूसा मारा और वह खून उगलती हुई जमीन पर गिर पड़ी। उसने अपने को सम्हाल कर कहा-जाओ, मैं तुम्हें पहचान गई। ब्रह्मा ने मुझे पहले ही बता दिया था कि जब बानर के मारने से तुम्हारी ऐसी दशा हो जाय तब जान लेना कि रावण का अन्त आ गया है। हनुमान ने अंदर प्रवेश किया। उन्होंने लंका मे बडी खोज बीन की, परन्तु सीता का कहीं पता नहीं लगा। वह चिन्तित हो गये तथा सीता माता की खोज में आगे बढ़े। उन्हें एक छोटी सी कुटिया मिली। उसी कुटी पर जगह-जगह राम-राम लिखा था। क्यारियों में तुलसी के पौधे लगे थे। उस पर्ण कुटी के सामने ही एक छोटा सा भगवान का मंदिर था। हनुमान उस कुटी को देखकर आश्चर्यचकित भी हुए और हर्षित भी।

ब्रह्म मुहूर्त का समय था। विभिषण जाकर राम-राम करने लगे। हनुमान को विश्वास हो गया कि यह तो कोई संत है। उन्होंने विभीषण से मुलाकात की। दोनों ने एक दूसरे का परिचय दिया। हनुमान जी ने श्री राम के चरित्र का वर्णन किया तथा अपने लंका आगमन का उद्देश्य बताया। विभीषण श्री राम दूत से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। विभीषण को विश्वास हो चला कि हनुमान जी के मिल जाने के बाद उन्हे भगवान राम के दर्शन अवश्य होंगे।

विभीषण के बताने पर हनुमान अशोक वन में गये। माँ सीता अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई थी। उनका शरीर सूख गया था। बालों की जटा बध गई थी। सिर पर सौभाग्य चिन्ह एक वेणी मात्र था। वह निरन्तर भगवान के नाम का जप कर रही थी। हनुमान ने दूर से ही उन्हें मानसिक प्रणाम किया और एक वृक्ष पर चढ़कर बैठ गये। रावण आया और उसने सीता को मनाने की चेष्टा की, फिर धमकाया, परन्तु सीता की दृढ़ता, पवित्रता, रामनिष्ठा और सतीत्व के आगे उसकी एक न चली। बहुत सी राक्षसियाँ सीता को रावण के अनुकूल करने के लिए समझाने लगी। सीता बड़ी दुःखी हुई। परन्तु त्रिजटा ने अपने स्वप्न का वृत्तान्त सुनाकर उन्हें आश्वासन दिया। थोड़ी देर में राक्षसियाँ और त्रिजटा वहाँ से चली गई।

सीता को अत्यन्त दुःखी देखकर हनुमान ने राम की कथा कही और अपने को राम का दूत बताया। सीता को अपार हर्ष हुआ। परन्तु उन्हे बड़ी शका भी हुई कि कहीं यह राक्षसी माया तो नहीं है। हनुमान जी माता के इस भाव तो ताड़ गये तथा उन्होंने वह मुद्रिका गिरा दी जिस पर राम नाम अंकित था। सीता को विश्वास हो गया। उन्होंने हनुमान जी को नीचे बुलाया। वह

बड़ी हर्षित थी। उन्होंने हनुमान से पूछा- क्या स्वामी मेरा कभी स्मरण करते है? क्या मैं उन्हें कभी देख पाऊँगी? क्या वे शीघ्र ही मेरा उद्धार करेंगे? इस पर हनुमान जी ने बताया कि राम आपके लिए अत्यन्त दुखी हैं। वह सदा आपकी ही याद किया करते है। तुम्हारे वियोग से राम जितने व्यथित हैं, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह आपका समाचार पाते ही तुरन्त चल पडेगे तथा राक्षसों का संहार करके आपको छुड़ाकर ले जायेंगे।'' हनुमान जी ने सीता माता को आगे बताया-

हनुमान ने कहा-माता! तुम इतनी दुखी क्यों हो रही हो। राम तुम्हारे लिए कितने दुखी हैं इसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। वे पृथ्वी को देखकर कहते हैं कि माँ पृथ्वी! मेरे कारण तुम्हारी प्यारी पुत्री को बड़ा कष्ट हुआ है। क्या इसी से तुम मुझ पर नाराज हो, जो मुझे समा जाने के लिए स्थान नहीं दे रही हो! वे खिले हुए फूलों और कलियों को देखकर कह उठते है कि ''लक्ष्मण! इन्हें चुन लाओ, मैं सीता के बालों में गूथूँगा। माता! उनकी विरह-कथा अवर्णनीय है। वे अपने को भूल जाते हैं और सदा तुम्हारी ही याद किया करते हैं।

हनुमान ने पुनः कहा- ''माता! उन्होंने आपको सम्बोधित करके कहा है- प्रिये! तुम्हारी उपस्थिति में जो वस्तुएँ मेरे लिए सुखकर थीं, वे ही आज दुःखकर हो रही हैं। सुन्दर-सुन्दर वृक्षों की नयी-नयी कोंपलें आज मुझे आग-सी जान पडती हैं। चन्द्रमा ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की भांति जलाता है और बादलों की नन्हीं-नन्हीं बूँदें जो पहले अमृत के समान जान पड़ती थी, अब जलते हुए तेल-सी मालूम पड़ती हैं। शीतल, मन्द सुगन्ध वायु विषैले साँपों की साँसो के समान मुझे पीड़ा पहुँचाता है। यदि मैं अपना यह उद्वेग, यह आवेग किसी पर प्रकट कर पाता तो मेरा हृदय कुछ हल्का हो जाता। परंतु किससे कहूँ, क्या कहूँ। कोई समझे भी तो। हम दोनों का जो पारम्परिक प्रेम है, एक दूसरे की आत्मा का संयोग है, मिलन है, उसका रहस्य केवल मेरा हृदय, मेरी आत्मा ही जानती है और मेरा हृदय, मेरी आत्मा सर्वदा तुम्हारे पास ही रहती है, एक क्षण के लिए भी तुमसे बिछुड़ती नहीं। तुमसे अलग होती नही। क्या इतने से हमारे अनिवर्चनीय प्रेम की व्याख्या हो जाती है। मैं तो कहूँगा, कदापि नहीं, परतु और कहा ही क्या जा सकता है?''

यह कहते समय हनुमान् भावाविष्ट हो गये थे। सीता को ऐसा मालूम हुआ मानों स्वयं राम उनके सामने खड़े होकर बोल रहे हैं। वे प्रेममग्न हो गयीं, शरीर की सुधि भूल गयीं। हनुमान् ने उन्हे धैर्य बँधाते हुए कहा माता। भगवान के प्रभाव, ऐश्वर्य और बल की ओर देखो। उनके बाणों के सामने ये तुच्छ राक्षस एक क्षण भी नहीं ठहर सकते। समझ लो कि ये मर गये।

भगवान को अब तक आपका पता नहीं मिला था, नहीं तो वे न जाने कब राक्षसों का संहार करके आपको ले गये होते। हम सब वानर-भालू उनके साथ आयेंगे और निश्चरों को पछाड़-पछाड़ कर मारेंगे और आपको लेकर आनन्द मनाते हुए अयोध्या चलेंगे।"

माता, आप क्या प्रभु का प्रभाव भूल गयी हैं? वे मालूम होते ही वहाँ से सैनिकों के साथ चल पड़ेंगे, बाणों मे समुद्र को स्तम्भित कर देंगे, लंका मे एक भी राक्षस नहीं बचेगा। यदि देवता, दानव और स्वयं मृत्यु भी भगवान् राम के मार्ग में विघ्न डालना चाहेंगे तो वे उन्हें भी नष्ट कर देंगे। माता[1] मै शपथपूर्वक कहता हूँ, तुम्हारे वियोग से राम जितने व्यथित है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे एक क्षण का भी विलम्ब नहीं करेंगे। आप उन्हें शीघ्र ही सकुशल देखेंगी। सीता ने कहा- हनुमान! अब तक दस महीने बीत गये, अब दो ही महीने बाकी हैं, यदि इसके बीच में ही भगवान ने मेरा उद्धार नहीं किया तो मैं उनके दर्शन से वंचित रह जाऊँगी। मैं उनके दर्शन की आशा से ही जीवित हूँ। रावण ने अब तक मुझे मार डाला होता, यदि विभीषण ने अनुनय-विनय करके मेरी रक्षा न की होती। सीता हनुमान से ये बाते कहते-कहते व्याकुल हो गयीं, उनका गला सूख गया, वे बोल न सकीं।

हनुमान ने कहा- माता! मैंने कहा न कि भगवान् मेरी बात सुनते ही चल पड़ेंगे। परंतु उनके आने की क्या आवश्यकता है? मैं आज ही आपको इस दुःख से मुक्त करता हूँ। आप मेरी पीठ पर चढ़ जाइये, मैं आपको पीठ पर लेकर समुद्र लाँघ जाऊँगा। जैसे अग्नि हवन किये हुए हविष्य को तत्काल इन्द्र के पास पहुँचा देता है, वैसे ही मैं आपको तत्काल प्रवर्षण गिरिपर विराजमान भगवान् राम के पास पहुँचाये देता हूँ। भगवान् की कृपा से न केवल आपको बल्कि रावण के साथ सारी लंका को मैं ढोकर ले जा सकता हूँ। अब देर मत कीजिए। जब मैं आपको लेकर चलूँगा तब कोई भी राक्षस मेरा पीछा नही कर सकेगा। हनुमान की बात सुनकर सीता को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होने कहा- "हनुमान! तुम्हारा शरीर बहुत छोटा है, तुम मुझे ले चलने का साहस कैसे कर रहे हो? हनुमान् ने सीता को अपना विराट् रौद्ररूप दिखलाया। वे बढकर सुमेरू पर्वत के समान हो गये। उन्होंने सीता से कहा- देवि! अब देर मत करो। कहो तो राक्षसों के साथ लंका को ले चलूँ? कहो तो राक्षसों को मारकर लंका को ले चलूँ। निश्चय कर लो और चलकर राम-लक्ष्मण को सुखी करो।

जानकी ने कहा- हनुमान! मैं तुम्हारी शक्ति, तुम्हारा बल जान गयी। तुम वायु और अग्नि के समान प्रतापशाली हो। तुम मुझे ले चल सकते हो। परतु तुम्हारे साथ मेरा जाना ठीक नहीं है। मैं तुम्हारे तीव्र वेग से मूर्छित हो सकती

हूँ। तुम पर से गिर सकती हूँ। राक्षसों से तुम्हें बड़ी लड़ाई करनी पड़ेगी और मेरे पीठ पर रहने से तुम्हें बड़ी आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। युद्ध की बात है, पता नहीं तुम जीतोगे या वे जीतेंगे। तुम जीत भी सकते हो, परन्तु इससे भगवान का यश नहीं बढ़ेगा। मेरे इस प्रकार जाने से बहुत लोग सोचेंगे कि हनुमान अपनी पीठ पर किसको लिये जा रहा है। एक ही क्षण के लिए सही, उन्हें हमारे चरित्र पर शंका हो सकती है। सीता ने और भी बहुत से कारण बतलाते हुए कहा-" पतिभक्ति की दृष्टि से मैं स्वेच्छापूर्वक तुम्हारे शरीर का स्पर्श नहीं कर सकती। रावण ने मेरा शरीर छू लिया था, वह तो विवशता की बात थी, मै असमर्थ थी, क्या करती? जब राम यहाँ आकर राक्षसो के साथ रावण को मारेंगे तब मैं उनके साथ चलूँगी और यही उनके योग्य होगा।' हनुमान ने सीता की बातों का सम्मान किया। उनकी प्रशंसा की। सीता ने कहा-बेटा! तुम्हारी भक्ति, भगवान् पर विश्वास और तुम्हारा बल-पौरूष देखकर मुझे बडा संतोष हुआ है। मै तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम बड़े बलवान, शीलवान, अजर-अमर और गुणी होओ। भगवान् सदा तुम पर स्नेह रखें।

"भगवान सर्वदा स्नेह रखें, यह सुनकर हनुमान् पुलकित हो गये। उन्हे और चाहिए ही क्या? जीवन का परम लाभ तो यही है। उन्होंने माता के आशीर्वाद को अमोघ कहकर कृतकृत्यता प्रकट की।

माता का दर्शन हो जाने के बाद हनुमान ने सोचा कि अब तो श्रीराम का रावण से युद्ध होना निश्चित है परन्तु इसका किला इतना मजबूत है, इसकी चहारदीवारियाँ इतनी सुरक्षित हैं, इसके दरवाजों पर ऐसे-ऐसे यन्त्र लगे हैं कि सहज में इसे जीतना सम्भव नहीं है। इन्हें तोड़े बिना हमारे आक्रमण का मार्ग नहीं खुल सकता। परन्तु इन्हें तोड़ा कैसे जाय, यह एक प्रश्न है। अच्छा! मैं तो वानर हूँ न, मैं फल तोड़कर खा सकता हूँ, क्योंकि अब भगवान् का काम हो चुका है। मैं वृक्षों के कुछ डालपात तोड़ सकता हूँ, क्योंकि इन दुष्टों को उत्तेजित करने का यही एक मार्ग है। हनुमान् ने निश्चय कर लिया, उनकी बुद्धि और बल देखकर माता ने भी अनुमति दे दी।

बाग के अनेकों वृक्ष नष्ट हो गये। बागवान खदेड़ दिये गये। हजारों राक्षस धूल में मिला दिये गये। एक घूँसे से ही अक्षयकुमार की हड्डी पसली चूर-चूर हो गयी। सारी लंका में तहलका मच गया। रावण पहले तो स्वयं ही युद्ध करने के लिए आ रहा था, परन्तु मेघनाद ने उसे रोक दिया। वह आया, हनुमान के प्रहार से उसके प्राणों के लाले पड़ गये। उसने घबराकर ब्रह्मपाश का प्रयोग किया। ब्रह्मपाश का अपमान नहीं करना चाहिए और रावण की सभा में चलकर भगवान् की महिमा सुनानी चाहिए, जिससे राक्षस भयभीत हो जायँ। वे स्वयं ही ब्रह्मपाश में बँध गये।
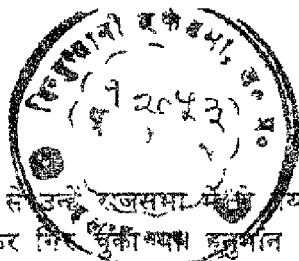
मेघनाद बड़ी प्रसन्नता से उन्हें राजसभा में ले गया। वहाँ जाते-जाते वह बन्धन उनके शरीर से छूटकर गिर चुके थे। हनुमान ने देखा की रावण की सभा में बड़े-बड़े देवता, लोकपाल, दिक्पाल हाथ जोड़े खड़े हैं। सूर्य का प्रकाश मन्द है, वायु पंखा झूल रहा है और अग्निदेव आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सब रावण के इशारे का इन्तजार कर रहे हैं। हनुमान निःशंक खड़े थे। रावण ने उन्हें इस प्रकार अविनीत देखकर न जाने क्या सोचा और ठहाका मारकर हँसने लगा परन्तु दूसरे ही क्षण उसे अपने पुत्र अक्षयकुमार की याद आ गयी। उसने डाँटकर पूछा- तू कौन है, किसके बल पर तूने ऐसा उत्पात मचा रखा है? क्या तू मुझे नहीं जानता? मैं अभी तुझे समझाता हूँ। हनुमान ने बड़े ही गम्भीर स्वर से कहा- रावण! जो सम्पूर्ण प्रकृति के आश्रय हैं, जिनके रोम-रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड प्रतिक्षण पैदा होते और नष्ट होते रहते हैं, जिनकी शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपना-अपना काम करते हैं, जिनके कृपालेश से शेषनाग पृथ्वी को धारण करने में समर्थ होते हैं, जो तुम्हारे जैसे राक्षसों को दण्ड देने के लिए ही अवतीर्ण हुए हैं - मैं, उन भगवान् राम का दूत हूँ। क्या तुम उन्हें नहीं जानते? जनक के धनुषयज्ञ में जो धनुष तुमसे हिल तक न सका था, उसे तिनके की भाँति तोड़ देने वाले को तुम भूल गये हो। खर, दूषण और त्रिशिरा को चौदह हजार सेना के साथ अकेले मारने वाले को तुम नहीं जानते? तुम्हें अपनी काँख में दबा रखने वाले बालि को जिन्होंने एक ही बाण से मार डाला, उनको तुम नहीं जानते? रावण! तुम उन्हें भूल सकते हो, परन्तु वे तुमको नहीं भूल सकते। जिनकी अनुपस्थिति में वेष बदलकर, धोखा देकर, जिनकी धर्मपत्नी को तुम चुरा लाये हो, उन्हें भूल कर भी तुम बच नहीं सकते। मैं उन्हीं का दूत हूँ। मुझे अच्छी तरह पहचान लो। अब देर नहीं है, उनके बाणों से लंका वीरान हो जायगी, इन तुम्हारे सभासदों का नाम-निशान तक नहीं रहेगा।

हनुमान की निर्भीक वाणी सुनकर राक्षस काँपने लगे। उनके मन में वह भय बैठ गया,जिसके कारण वे युद्ध में भी वीरता के साथ राम का सामना नहीं कर सके। देवता लोग मन ही मन प्रसन्न हो गये। रावण ने हनुमान की बातों की उपेक्षा कर दी। हनुमान ने पुनः कहा- ''भूख लगने पर फल खाकर मैंने कोई अपराध नहीं किया है। पेड़ पत्ता तोड़ना तो मेरा स्वभाव ही है, जिन दुष्टों ने मुझे मारा है, उनसे आत्मरक्षा करने के लिए मैंने भी प्रहार किया है। ज्यादती तो तुम्हारे पुत्रों की ही है, जिन्होंने मुझे बंदी बनाने की चेष्टा की है, परन्तु मैं उन्हें क्षमा करता हूँ। तुम मेरी एक बात सुनो, बस एक बात मान लो। मैं विनय से कहता हूँ, प्रेम से कहता हूँ और सच्चे हृदय से तुम्हारे हित के लिए कहता हूँ। ''भाई रावण! जो काल सारी दुनिया को

निगल जाता है, वह उनसे भयभीत रहता है, वह उनके अधीन रहता है। उनसे वैर करके तुम बच नहीं सकते। तुम जानकी को ले चलो, परम कृपालु भगवान् तुम्हें क्षमा कर देंगे, वे शरणागत के सब अपराध भूल जाते हैं। तुम उनके चरणों का ध्यान करो और लंका का निष्कण्टक राज्य भोगो। तुम बड़े कुलीन हो, तुम्हारे पास अतुल सम्पत्ति है, तुम बड़े ही विद्वान हो और बल भी तुम्हारे पास पर्याप्त है, उन्हें पाकर अभिमान मत करो, ये चार दिन की चाँदनी है। चलो, भगवान् की शरण होओ। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, शपथपूर्वक कहता हूँ कि राम से विमुख होने पर तुम्हारी कोई रक्षा नहीं कर सकता।'' इसलिए-

''मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान।।''

यद्यपि हनुमान ने बहुत ही हितकर बातें कहीं, परन्तु वे रावण को अच्छी नहीं लगीं। उसने खीझकर राक्षसों को आज्ञा दी कि इसे मार डालो। विभीषण ने आपत्ति की कि दूत को मारना अन्याय है। अन्त में अंग-भंग करना निश्चय हुआ और रावण ने पूँछ जला देने की आज्ञा दी। पूँछ में कपड़े लपेटे जाने लगे। उसे तेल में भिगोया गया और आग लगा दी गयी। दस-बीस राक्षस उन्हें पकड़कर नगर में घुमाने लगे, बच्चे ताली पीट - पीटकर हँसने लगे। हनुमान ने लंकाध्वंस करने का यही अवसर उपयुक्त समझा। उन्होंने अपनी पूँछ से एक झटका लगाया और सारे राक्षस अपने-अपने प्राण बचा कर भाग गये। वे उछलकर एक महल से दूसरे महल पर जाकर सबको भस्म करने लगे। वायु ने सहायता की। अग्नि ने अपने मित्र वायु के पुत्र के कार्य में हाथ बँटाया, लंका धह-धह करके जलने लगी। बहुत से यन्त्र नष्ट कर दिये। धोखा देने के स्थान भस्म कर दिये। परन्तु सोने की लंका अब तक जली नहीं। यद्यपि सारे नगर में हाहाकार मचा हुआ था, सब अपनी-अपनी सामग्री, बाल बच्चे और स्त्री, वृद्धों को लेकर अलग भाग रहे थे तथापि लंका जलने के समय भी चमक रही थी।

कहते हैं कि लंका की एक काल कोठरी में शनैश्चर देवता कैद थे। हनुमान् का पैर उसकी चहारदीवारी पर लगा और वह टूट गयी। शनैश्चर ने हनुमान से पूछकर सारी बात जान ली और एक कनखी से लंका की ओर देखा। एक विभीषण का घर छोड़कर सारी लंका जलकर राख की ढेरी हो गयी। उन्होंने हनुमान को वरदान दिया और बतलाया कि अब लंका का सत्यानाश निकट है, वे चले गये। शनैश्चर देवता को मुक्त करके हनुमान ने जब देखा कि सारी लंका ध्वस्त हो गयी, इनके बीहड़ मोर्चों में अब कोई खतरनाक बात न रही, तब वे समुद्र में कूद पड़े और स्नान करके फिर माँ सीता के पास आये। मा

सीता ने भगवान् के लिए उन्हें चूड़ामणि दिया और शीघ्र से शीघ्र अपने उद्धार की प्रार्थना करने के लिए कहा। उन्हें प्रणाम करके घोर गर्जना करते हुए हनुमान ने यात्रा की।

जाम्बवान, अंगद आदि बिना कुछ खाये-पीये एक पैर से खड़े रहकर हनुमान की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी किलकारी सुनते ही सबने कार्यसिद्धि का अनुमान कर लिया और आगे बढ़कर उन्हें गले से लगाया। खाते-पीते, मधुवन उजाड़ते हुए सब भगवान् राम के पास पहुँचे। हनुमान ने बड़े ही करुण शब्दों में सीता की दशा का वर्णन किया। लंका के ऐश्वर्य, रावण की शक्ति और वहाँ की एक-एक बात उन्होंने भगवान् से बतायी। भगवान ने कहा- हनुमान! तुम्हारे समान उपकारी संसार में और कोई नहीं है। मैं तुम्हें क्या बदला दूँ, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, तुम्हारे सामने मुझसे देखा नहीं जाता। भगवान् की यह बात सुनते ही हनुमान व्याकुल होकर उनके चरणों पर गिर पड़े और प्रेममग्न हो गये। भगवान् राम ने बलात् उन्हें उठाकर हृदय से लगाया और उन्हें अपनी अनन्य भक्ति का वरदान दिया। भगवान् शंकर की अभिलाषा पूर्ण हुई जिसके लिए वे हनुमान बने थे, वह कार्य पूरा हुआ।

हनुमान के जीवन में यह विशेषता है कि जो इनके सम्पर्क में आया, उसे इन्होंने किसी न किसी प्रकार भगवान् की सन्निधि में पहुँचा ही दिया। लका में विभीषण इनसे मिले, इनके संसर्ग और आलाप से वे इतने प्रभावित हुए कि रावण की भरी सभा में उन्होंने हनुमान का पक्ष लिया और अन्त मे रावण को छोड़कर वे राम की शरण में आ गये। उस समय जब सुग्रीव के विरोध करने पर भी भगवान् ने शरणागत रक्षा के प्रण की घोषणा की, तब इन्हें कितना आनन्द हुआ, यह कहा नहीं जा सकता। अंगद को साथ लेकर सबसे पहले हनुमान् उमंगभरी छलाँग मारकर विभीषण के पास चले गये और उन्हे भगवान् के पास ले आये। उनका एक मात्र काम है भगवान् की सेवा, भगवान् की शरण में जाने वालों की सहायता।

समुद्र मंथन हुआ, उसमें हनुमान कितने पहाड़ ले आये, उसकी गिनती नही की जा सकती। सेतु पूरा होते-होते भी ये उत्तर की सीमा से एक पहाड लिये आ रहे थे। इन्द्रप्रस्थ से कुछ दूर चलने के बाद उन्हें मालूम हुआ कि सेतु बन्धन का कार्य पूरा हो गया। उन्होंने सोचा कि अब इस पहाड़ को ले चलकर क्या होगा, वहीं रख दिया, परन्तु वह पहाड़ भी साधारण पहाड़ नहीं था, उसकी आत्मा ने प्रकट होकर हनुमान से कहा- भक्तराज! मैंने कौन सा अपराध किया है कि आपके करकमलों का स्पर्श प्राप्त करके भी मैं भगवान् की सेवा से वंचित हो रहा हूँ। मुझे यहाँ मत छोडो वहाँ ले चलकर भगवान्

के चरणों में रख दो, पृथ्वी पर स्थान न हो तो समुद्र में डुबा दो, भगवान्, के काम आऊँ तो जीवित रहना अच्छा, नहीं तो इस जीवन से क्या लाभ?

हनुमान ने कहा- "गिरिराज! तुम वास्तव मे गिरिराज हो। तुम्हारी यह अचल निष्ठा देखकर मेरे मन मे आता है कि मैं तुम्हें ले चलूँ, परन्तु भगवान् की ओर से घोषणा की जा चुकी है कि अब कोई पर्वत न लावे। मैं विवश हूँ। परन्तु मैं तुम्हारे लिये भगवान् से प्रार्थना करूँगा, जैसी वे आज्ञा देंगे, वैसा मै तुमसे कह दूँगा।"

हनुमान भगवान के पास गये। उन्होंने उसकी सच्चाई और प्रार्थना भगवान् के सामने निवेदन की। भगवान् ने कहा- वह पर्वत तो मेरा परम प्रेमपात्र है। उसका तुमने उद्धार किया है। जाकर उससे कह दो कि द्वापर में मैं कृष्ण रूप मे अवतार लेकर उसे अपने काम में लाऊँगा और सात दिनों तक अपनी अँगुली पर रखकर ब्रजजनों की रक्षा करूँगा। हनुमान ने ब्रज भूमि में जाकर गोवर्धन से भगवान् का संदेश कहा। हनुमान की कृपा से गोवर्धनगिरि भगवान् का परम कृपापात्र बन गया। भगवान् की नित्यलीला का परिकर हो गया।

सुबेल पर्वत पर भगवान् पर्णशैय्या पर लेटे हुए थे। सुग्रीव की गोद मे उनका सिर था, अंगद हनुमान चरण दबा रहेथे, धनुष और तुणीर अगल-बगल रखे हुए थे, लक्ष्मण पीछे की ओर वीरासन से बैठकर भगवान् को देख रहे थे, भगवान् अपने हाथ में बाण लेकर सहला रहे थे। भगवान् ने चन्द्रमा की ओर देखकर पूछा- भाई! अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार तुम लोग बताओ कि यह चन्द्रमा में श्यामता कैसी है? सुग्रीव, विभीषण अंगद आदि ने अपने-अपने भाव के अनुसार उसके कारण बतलाये। सबके पीछे हनुमान् ने कहा- प्रभो! चन्द्रमा आपका सेवक है। आपका भी उस पर अनन्त प्रेम है। वह आपको अपने हृदय में रखता है और आप उसके हृदय में रहते हैं। बस, आप ही चन्द्रमा के हृदय में श्यामसुन्दर रूप से दीख रहे हैं। भगवान हँसने लगे, सबको बड़ी प्रसन्नता हुई –

> "कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
> तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामताभास।।"

हनुमान को तो सर्वत्र भगवान् के दर्शन होते थे। चन्द्रमा में उन्होंने भगवान् के दर्शन किये तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

राम और रावण का भयंकर युद्ध हुआ। हनुमान ने उसमें कितने राक्षसो का वध किया, यह रामायण - प्रेमियों से छिपा नहीं है। समय-समय पर युद्ध मे उन्होंने राम, लक्ष्मण, विभीषण, जाम्बवान सभी की सहायता की। मेघनाद

से युद्ध करते समय लक्ष्मण को बड़ी ही भयंकर शक्ति लग गयी। वे रणभूमि में ही मूर्च्छित हो गये। मेघनाद और उसके समान अनेक सैनिकों ने मिलकर चेष्टा की कि लक्ष्मण को उठा ले चलें, परन्तु वे सफल न हुए, लक्ष्मण को जमीन पर से उठा न सके। हनुमान् ने उन्हे अनायास ही उठा लिया और राम के पास ले आये। उन्हें मूर्च्छित अवस्था में देखकर राम शोकाकुल हो गये। जाम्बवान् ने बतलाया कि लंका में एक सुषेण नाम के वैद्य रहते हैं। यदि वे इस समय आ जायं तो लक्ष्मण स्वस्थ हो सकते हैं।

हनुमान ने लंका की यात्रा कर दी। उन्होंने सोचा कि शत्रुपक्ष का वैद्य है, शायद रात्रि में न आवे, इसलिये उसका मकान की उखाड़ ले चलें, ऐसा ही किया। सुषेण ने राम-सेना में आकर लक्ष्मण को देखा और बतलाया कि द्रोणाचल से यदि आज रात भर में औषधियाँ आ जायँ तो लक्ष्मण जीवित हो सकते हैं। हनुमान ने भगवान का स्मरण करते हुए द्रोणाचल की यात्रा की। यह समाचार रावण को मिल गया था। उसने कालनेमि नामक दैत्य से मिलकर ऐसा षड्यन्त्र रचा कि हनुमान् को मार्ग में ही अधिक समय लग जाय और वे कल सूर्योदय के पहले यहाँ न लौट सकें। कालनेमि ने ऋषि का वेष बनाकर हनुमान् को भुलावे में रखना चाहा परन्तु मायापति के दूत पर किसी माया चल सकती है। दैवयोग से हनुमान् को पता चल गया और उन्होंने उस बनावटी ऋषिराज को मृत्यु की गुरू दक्षिणा देकर आगे की यात्रा की।

हनुमान् द्रोणाचल पर पहुँच गये। रात का समय था। वे औषधियों को नहीं पहचान सके। शायद औषधियों ने अपने को छिपा लिया। हनुमान् विलम्ब करना तो जानते ही नहीं थे, रातोंरात ही उन्हें लंका पहुँचना था। उन्होंने समूचा द्रोणाचल ही उखाड़ लिया और लेकर चलते बने। लौटते समय अयोध्या उनके मार्ग में पड़ती थी। भरत ने दूर से ही देखकर अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है। उन्होंने एक हल्का सा बाण चला दिया। बाण लगते ही "राम-राम" कहते हुए हनुमान मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उनके मुँह से राम-राम सुनकर भरत उनके पास दौड़ गये और बड़ी चेष्टा करके उन्हें जगाने लगे। अन्त मे उन्होंने कहा- "यदि मेरे हृदय मे राम की सच्ची भक्ति हो तो यह वानर अभी जीवित हो जाय। हनुमान उठकर बैठ गये। हनुमान् ने सारी कथा सुनायी। भरत ने पछताकर अपनी बड़ी निन्दा की और पश्चाताप किया। हनुमान द्रोणाचल लेकर लंका पहुँच आये। उस समय श्रीराम बहुत ही व्याकुल हो रहे थे। हनुमान् के आते ही उन्होंने उन्हें हृदय से लगा लिया, सुषेण ने उपचार किया और लक्ष्मण स्वस्थ हो गये। चारों ओर हनुमान की कीर्ति गायी जाने लगी। सुषेण को उनके घर सहित हनुमान् यथास्थान रख आये।

हनुमान निरन्तर राम के काम में ही लगे रहते। अब भी लगे ही रहते

है परन्तु यह बात युद्ध के समय की है। दिन भर कभी भगवान् के पास और कभी उनसे दूर रहकर युद्ध किया करते और रात में भगवान् के चरण दबाते। उनसे धर्म की, प्रेम की, ज्ञान की बातें सुनते। कभी-कभी क्या प्रायः निद्रा दूर हो जाती। चहार दीवारी बनाकर दरवाजे पर बैठ जाते और रातभर पहरा देते तथा पुनः प्रातःकाल होते-होते युद्ध। कोई कठिन काम आ पड़ता तो जाम्बवान, सुग्रीव, अंगद - सभी हनुमान् की शरण लेते।

रावण से युद्ध करते समय हनुमान् ने उसको एक ऐसा घूँसा जमाया कि वह मूर्च्छित हो गया। उसने होश में आकर हनुमान् की भूरि-भूरि प्रशंसा की और स्वीकार किया कि जीवन भर में ऐसे वीर से कभी मेरा पाला नहीं पडा था। बात यह थी कि रावण के प्रहार से लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये थे। अपने पुत्र मेघनाद की भांति रावण ने भी चाहा था कि मैं इन्हें उठा ले चलूँ। उसने सारी शक्ति लगा दी, पर लक्ष्मण, न उठे। यह देखकर हनुमान् दौड़े, रावण के बाणों से सारा शरीर बिंद जाने पर भी वे लक्ष्मण के पास पहुँच गये और रावण को एक घूँसा जमाया। वे लक्ष्मण को फूल के समान उठाकर राम के पास ले आये। राम ने हनुमान् का आलिङ्गन करते हुए कहा- "भैया! तुम तो काल के भी महाकाल हो। देवताओं की रक्षा के लिए अवतीर्ण हुए हो, फिर मुर्च्छा कैसी? राम की बात सुनते ही लक्ष्मण उठ बैठे और फिर दूने उत्साह से रणभूमि में गये। हनुमान् के सत्साहस से इतना बड़ा संकट क्षण भर में टल गया।

राम विजयी हुए। अब सीता के पास विजय का संदेश लेकर कौन जाय? भगवान् ने हनुमान को बुलाकर कहा- "हनुमान! सीता तुमसे बड़ा स्नेह रखती है। अब यह विजय-समाचार सुनाने के लिए तुम्हीं उनके पास जाओ। महाराज विभीषण से आज्ञा लेकर लंका में प्रवेश करना और मेरी, सुग्रीव और लक्ष्मण की कुशल कहना तथा रावण के वध की बात भी कहना। सीता जैसे प्रसन्न हो, वैसी ही बात उनसे कहना। हनुमान् ने लंका में प्रवेश किया। लंकावासी राक्षसों ने उनका बड़ा सम्मान किया। विभीषण की आज्ञा तो प्राप्त थी ही। वे अशोकवन में अशोक के नीचे बैठी हुई सीता जी के पास पहुँचकर गये। चरणों में साष्टाँग दण्डवत करके उन्होंने सारा वृतान्त निवेदन किया। सीता एक क्षण तक कुछ नहीं बोल सकीं, उनका कण्ठ हर्षद्गद् हो गया। उनकी आँखों मे आँसू भर आये, सीता ने कहा- बेटा! मैं यह हर्ष का समाचार सुनकर कुछ बोल न सकी, इसे अन्यथा मत समझना। इससे बढ़कर मेरे लिए सुखद संवाद और कोई हो ही नहीं सकता। मैं सोच रही हूँ कि इसके बदले तुम्हें क्या दूँ? क्योकि आनन्द की बात सुनाने वालों को कुछ न कुछ देने की प्रथा है। परन्तु यदि मैं तुम्हें त्रिलोकी की सम्पूर्ण संपत्ति, समस्त ऐश्वर्य दे दूँ, तो भी मुझे

संतोष नहीं होगा। तुम्हारे हृदय मे सर्वदा भगवान् की अनन्य भक्ति बनी रहे और मैं तुम्हारी रिनियाँ ही रहूं। सब सद्‌गुणों का तुम्हारे मन में निवास हो और रघुनाथ जी की तुम पर सदा कृपा बनी रहे।

हनुमान् ने अंजलि बाँधकर कहा- माता! तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है, जो ऐसी स्नेहपूर्ण बात कहे? मेरे हृदय में युगल सरकार की स्मृति बनी रहे, मैं उनके कर-कमलों की छत्रछाया मे रहूँ, इससे बढ़कर और है ही क्या, जो आप मुझे देंगी। आप आज्ञा करें कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? सीता जी ने कहा- मैं भगवान् के दर्शन के लिए बहुत ही उत्सुक हूं। अब एक क्षण का भी विलम्ब नहीं सहा जाता। हनुमान ने तुरन्त वहाँ से यात्रा की और भगवान् के पास पहुँच आये। उन्होंने सीता की प्रसन्नता, उनकी दर्शनोत्कण्ठा और प्रार्थना भगवान् को सुनायी। भगवान् ने विभीषण को आज्ञा दी कि सीता को ले आओ।

भगवान् राम सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदि के साथ पुष्पकविमान पर चढ़कर अयोध्या के लिए लौटे। प्रयाग मे उन्होंने हनुमान को बुलाकर कहा- हनुमान तुम अयोध्या मे जाकर देखो कि भरत क्या कर रहे हैं। मेरे वियोग में उन्हें एक-एक क्षण भी कल्प के समान जान पड़ता होगा। उन्हें मेरा समाचार सुनाना और उनका समाचार लेकर शीघ्र ही मेरे पास आ जाना। हनुमान ने प्रस्थान किया।

अयोध्या में भगवान् के लिए भरत कितने व्याकुल हो रहे थे, इसका अनुमान कोई भी नहीं कर सकता। हनुमान ने उनकी दशा देखी, वे जटा का मुकुट बाँधे कुश के आसन पर बैठे हुए थे, उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया था, आँखों से आँसू बह रहे थे और मुँह से निरन्तर रामनाम का उच्चारण हो रहा था। वे इतने तन्मय थे कि उन्हें पता भी नहीं चला कि यहाँ कोई आया हुआ है। हनुमान ने स्वयं ही उनका ध्यान भंग करते हुए कहा- जिनके विरह में आप दुखी हो रहे हैं, जिनके नाम और गुणों की रटना कर रहे हैं, वे ही देवता और मुनियों के रक्षक भगवान् राम, माँ जानकी तथा लक्ष्मण के साथ सकुशल आ रहे हैं। हनुमान के वचन सुनते ही भरत के शरीर में नवीन प्राणों का संचार हो गया। उनका रोम-रोम, उनका रग-रग अमृत से सराबोर हो गया। उन्होंने झट उठकर हनुमान को अपने गले से लगा लिया। परिचय जानने पर तो उनके आनन्द की सीमा न रही। उन्होंने बार-बार भगवान् राम की बातें पूछीं और हनुमान ने भी कई बार कही। दोनों को अनन्त का अनुभव हो रहा था।

भरत ने कहा- "भाई! तुम्हें मैं क्या दूँ, इसके बदले में देने योग्य और कौन सी वस्तु है? तुम्हारा ऋणी रहने में ही मुझे प्रसन्नता है। हनुमान उनके चरणों पर गिर पड़े और उनके प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा करके बतलाया कि

"भगवान राम प्रायः ही आपकी चर्चा किया करते है। आपके सद्गुणों का बखान करते हैं। आपका नाम जपा करते हैं। भरत से अनुमति लेकर हनुमान वहाँ से विदा हुए।

हनुमान् जैसा पुत्र और सीता जैसी माता। फिर दोनों के स्नेह का क्या कहना। हजारों दास-दासियाँ थीं सीता की सेवा करने के लिए, उनके इशारे से ही जो चाहती हो जाता परन्तु इतने से ही उन्हें तृप्ति नहीं होती। उन्होने अपने लाडले लाल हनुमान् को अपने हाथों रसोई बनाकर खिलाने की सोची। अनेकों प्रकार के व्यंजन बनाये। हनुमान भोजन करने बैठे। माता के हाथ की रसोई कितनी मीठी होती है। हनुमान् खाने लगे। उन्हें पता ही नहीं था कि मै कितना खा गया। सारी रसोई खतम होने पर आयी, परन्तु अभी हनुमान् भोजन से विरत नहीं हुए। माता सीता हनुमान के इस कृत्य से चकित हो गयीं। उन्होंने निरुपाय होकर भगवान् राम का स्मरण किया। सीता ने देखा कि हनुमान् के वेश में स्वयं शंकर ही भोजन कर रहे हैं। प्रलय के समय सारे ससार को निगल जाने वाले महाकाल के भी काल हनुमान का पेट कुछ व्यंजनो से कैसे भर सकता है? उन्होंने एक प्रकार से हनुमान् की स्तुति की, किन्तु की मर्यादापूर्वक। उन्होंने हनुमान् के पिछले भाग में जाकर उनके सिर पर लिख दिया- उँ नमः शिवाय" और तब फिर भोजन की सामग्री दी। अब की बार हनुमान् तृप्त हो गये। इस प्रकार स्वयं माँ सीता ने हनुमान् को शिवरूप से स्वीकार किया।

भगवान् राम की सभी सेवाएँ हनुमान् ही करते, वे अपने काम में इतने सावधान रहते कि दूसरों को अवसर ही नहीं मिलता। भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण भी भगवान् की सेवा केलिए ललकते ही रह जाते। अन्त में उन लोगो ने एक उपाय सोचा। वह यह कि एक ऐसी दिनचर्या बनायी जाय, जिसमे भगवान् कीसब सेवाओं का विभाजन हो और हम लोग अपना-अपना समय तथा काम निश्चित कर लें। हनुमान् केलिए उसमें कोई स्थान न रखा जाय। योजना बनी और सर्वसम्मति से पास हो गयी। माता सीता के द्वारा वह भगवान् राम के सामने उपस्थित की गयी। उसे देखकर भगवान् मुस्कराये। उन्होंने हनुमान् को दिखाकर पूछा- कहो हनुमान्! तुम इस योजना को पसंद करते हो? हनुमान् ने कहा- भगवान! सबकी सम्मति और माताजी की सिफारिश है तो आप इसे स्वीकार कर लें, जो सेवाकार्य इसमें न हो वह मेरा रहा।" भगवान् ने और लोगों से कहा- "भाई! खूब सोच समझ कर देख लो। सबने देखा, कोई काम छूटा नहीं था। सबने हनुमान् जी की बात मान ली। वह योजना सरकार से मजूर हो गयी।

हनुमान् ने बताया-भगवान! दरबार की यह प्रथा है कि जब महाराज

जँभाई लेने लगें, तब चुटकी बजायी जाय। सो यह काम मेरा रहा। सबने इसे साधारण काम समझा और भगवान् ने भी हँसकर उन्हें स्वीकृति दे दी। हनुमान् को सेवा के सम्बन्ध में कितना सूक्ष्म ज्ञान है, भरत यह देखकर अवाक् हो गये।

अब हनुमान् की बन आयी। भगवान् के चलते-फिरते, खाते-पीते सर्वदा उनके साथ रहने लगे। जब भगवान् कहीं चलते, तब हनुमान् आगे-आगे पीछे की ओर मुँह करके चलते। जब भगवान् सोते, तब ये थोड़ी दूर पर खड़े रहकर भगवान का मुखचन्द्र निहारते रहते। जब भगवान सोते, तब ये थोड़ी दूर पर खड़े रहकर भगवान का मुखचन्द्र निहारते रहते। किसी-किसी ने आपत्ति भी की थी, परन्तु हनुमान ने उसे यह कहकर निरूत्तर कर दिया कि प्रभु को न जाने कब जँभाई आ जाय। माता सीता को भी भगवान् की सेवा में असुविधा होने लगी। लक्षमण और शत्रुघ्न तो घबरा से गये। भगवान राम खूब हँसते थे। अन्ततः महारानी सीता के कहने पर भगवान ने नयी योजना बदल दी और फिर हनुमान पहले की भाँति निरन्तर सेवा करने लगे।

भरत, शत्रुघ्न आदि सभी की ऐसी धारणा थी और यह बात सच भी थी कि भगवान राम सबसे अधिक हनुमान पर ही स्नेह करते हैं। जब उन्हे कोई बात भगवान से पूछनी होती, तब वे हनुमान के द्वारा ही पुछवाते। हनुमान स्वयं भी भगवान से और माता सीता से अनेकों प्रकार के प्रश्न पूछते और जीव, शिव आदि के सम्बन्ध में तत्वज्ञान प्राप्त करते। भगवान राम ने कई बार उन्हें तत्वज्ञान का उपदेश किया था और वेदान्त का सम्पूर्ण रहस्य समझाया था। अध्यात्मरामायण के प्राथमिक प्रसंग ऐसे ही हैं। ब्रह्माण्ड पुराण में भी यह कथा आयी है कि भगवान ने श्रीकृष्ण अवतार में जो उपदेश अर्जुन और उद्धव को किये हैं, वे ही उपदेश श्रीरामावतार में आंजनेय श्री हनुमान जी को किये है। हनुमान ज्ञान की मूर्ति थे, इस बात का प्रमाण कई प्रसंगों से मिलता है। शिव ही जो ठहरे। उनके लिए यह आश्चर्य की कौन सी बात है।

कभी-कभी हनुमान को बहुत सेवा करते देखकर भगवान कहते कि हनुमान! तुम तो मेरे स्वरूप ही हो, तुम्हें इतनी सेवा करने की क्या आवश्यकता है? तुम तो केवल मस्त रहा करो!'' हनुमान कहते - प्रभो! आपका कहना सत्य है, किन्तु सेवा करने से क्या मैं आपका स्वरूप नहीं रहता? क्या सेवा के समय मैं मस्त नहीं रहता? शरीरदृष्टि से मैं आपका सेवक हूँ। शरीर सर्वदा आपकी और आपके भक्तों की सेवा में लगी रहे, इसका यही उपयोग है। जीव-दृष्टि से मैं आपका अंश हूँ। मैं आपकी संनिधि मे रहूँ, आपसे विलग न होऊँ, यह सर्वदा वांछनीय है। तत्वदृष्टि से मैं आपका स्वरूप ही हूँ। उस दृष्टि से क्या कहना, क्या सुनना है? भगवान हनुमान की ऐसी बातें सुनकर बहुत

ही प्रसन्न होते।

भगवान राम के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया। शत्रुघ्न, पुष्कल, लक्ष्मीनिधि आदि बड़े-बड़े वीर उसकी रक्षा के लिए नियुक्त हुए, हनुमान भी उनके साथ थे। अनेकों स्थानों पर बड़े-बड़े युद्ध हुए, हनुमान ने उनमें कितनी तत्परता दिखायी, कितनी वीरता से युद्ध किया, यह बात तो पद्मपुराण के पातालखण्ड का वह अंश पढ़ने पर ही जानी जा सकती है। यहाँ केवल कुछ घटनाओं का दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है।

चक्राङ्का नगरी के राजा सुबाहु से युद्ध हो रहा था। बहुत से वीर मारे गये, अनेकों घायल हुए,अन्तिम युद्ध सुबाहु और हनुमान का हो रहा था। हनुमान की एक लात सुबाहु की छाती पर लगी और वे बेहोश हो गये। मूर्च्छा मे सुबाहु ने देखा कि मैं अयोध्या में हूँ। भगवान राम सरयू के किनारे यज्ञ कर रहे हैं और कोटि-कोटि ब्रहाण्डो के अधिपति ब्रह्मा आदि उनकी स्तुति कर रहे हैं। नारदादि ऋषिगण वीणा, पखावज आदि बजाकर उनके गुणों का कीर्तन कर रहे हैं और वे मूर्तिमान होकर उनके यश का गायन कर रहे हैं। उनकी वह श्यामसुन्दर छवि देखकर सुबाहु मुग्ध हो गये, उसी अवस्था में बहुत देर तक पड़े रहे।

जब उनकी मूर्च्छा टूटी, तब उनका अज्ञान नष्ट हो चुका था। उन्होंने एक ऋषि के शाप की कथा सुनाकर हनुमान की बड़ी महिमा गायी और बतलाया कि इन्हीं के चरणस्पर्श से मुझे रामतत्व का ज्ञान हुआ है, अब युद्ध बंद कर दो और सब लोग भेंट की सामग्री लेकर अयोध्या चलें। भगवान राम के यज्ञ मे सेवा कार्य करें। हनुमान आदि की पूजा करके वे लोग अयोध्या आये और हनुमान ने यज्ञीय अश्व के साथ आगे प्रस्थान किया।

जब वह घोड़ा देवपुर के शिवभक्त राजा वीरमणि के द्वारा बाँध लिया गया, तब बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। वीरमणि की भक्ति से प्रसन्न होकर स्वय भगवान शंकर ने युद्ध किया और शत्रुघ्न, पुष्कल आदि सभी वीर मूर्च्छित एव मृतप्राय हो गये। केवल हनुमान ही लड़ते रहे। भगवान शंकर की ही लीला थी, वे ही अपने भक्त और भगवान दोनों की ओर से लड़ रहे थे। दोनों ही ओर शंकर, तब भला कौन हारता। हनुमान ने डाँटते हुए कहा- मैं तो जानता था कि शंकर राम के भक्त हैं, परन्तु तुम्हारी भक्ति का पता लग गया। हम लोग राम का यज्ञ पूर्ण होने के लिए घोड़े की रक्षा करते हैं और तुम उसमें विघ्न डालने के लिए युद्ध कर रहे हो। शंकर ने कहा- भाई! बात तो ठीक है। मुझसे भगवान की भक्ति कहाँ बनती है? परन्तु तुम्हारी बातें बड़ी अच्छी लग रही हैं। तुमने मुझे भगवान का स्मरण तो करा दिया परन्तु मैं क्या करूँ?

वीरमणि की भक्ति से विवश हूँ। मुझे उसकी ओर से लड़ना ही पड़ेगा।

बड़ा घमासान युद्ध हुआ। हनुमान के प्रहारों से शंकर का रथ टूट गया उनके आयुध निष्फल हो गये। उनका शरीर जर्जर हो गया। नन्दी भागने का उपक्रम करने लगा। शंकर ने हनुमान को पुकार कर कहा- वीर! "तुम धन्य हो, तुम्हारी भगवद्भक्ति धन्य है। मैं तुम्हारी वीरता और भगवत्परायणता देखकर प्रसन्न हूँ। जो वरदान यज्ञ, तप से नहीं प्राप्त हो सकते, वह मै तुम्हें देने केलिए तैयार हूँ। माँगो, माँगो, तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो।"

हनुमान ने कहा- शंकर! भगवान राम की कृपा से मुझे किसी वस्तु की कामना नहीं है, तथापि आज तुम मुझसे युद्ध में प्रसन्न हुए हो, इसलिए मै तुमसे कुछ काम लूँगा। देखो, युद्ध में पुष्कल मर गये हैं, शत्रुघ्न मूर्च्छित हो गये हैं, सैनिक क्षत-विक्षत होकर रणभूमि में पड़े हुए हैं, तुम अपने गणो के साथ इनकी रक्षा करो। मैं औषधियाँ लाने के लिए द्रोणाचल पर जाता हूँ। यदि देवता विरोध करेंगे तो सम्भव है, वहाँ भी युद्ध करना पड़े, विलम्ब हो जाय, तब तक इन वीरों का कोई अनिष्ट न होने पावे। शंकर ने स्वीकार किया और हनुमान ने यात्रा की।

हनुमान ने क्षीरसागर के पास जाकर द्रोणाचल को अपनी पूँछ में लपेट लिया। वे उसे उखाड़कर वहाँ से चलने वाले ही थे कि उसके रक्षक देवताओं ने उन पर आक्रमण कर दिया। परन्तु हनुमान के सामने उनकी एक न चली, वे घायल होकर भग गये। जब उन्होंने इन्द्र से जाकर कहा कि एक वानर द्रोणाचल को लिये जा रहा है और हमारे अस्त्र उस पर काम नहीं करते, तब वे घबराकर अपने कुलगुरु बृहस्पति के पास गये। बृहस्पति ने हनुमान का पूरा परिचय बताकर उन्हें प्रसन्न करने की प्रेरणा दी। इन्द्र ने कहा- भगवन! यदि हनुमान द्रोणाचल को उखाड़ ले जायेंगे तो हमारे देवता तो मर ही जायेंगे, क्योंकि वही हम लोगों का जीवनाधार है। कोई ऐसा उपाय कीजिए कि हनुमान का काम भी बन जाय और हमारी औषधियाँ भी सुरक्षित रहें।

बृहस्पति इन्द्र और देवताओं को साथ लेकर हनुमान के पास गये। उनसे बहुत रोये-गिड़गिड़ाये, अपने अपराधों को क्षमा कराया और उनकी अभिलाषा पूर्ण होने का वरदान देकर उन्हें मृतसंजीवनी औषधि दे दी। हनुमान उसे लेकर रणभूमि में पहुँचे। चारों ओर हनुमान की जयध्वनि होने लगी। वे औषधि लेकर पुष्कल के पास पहुँचे। पुष्कल मर चुका था, उन्होंने औषधि का प्रयोग करते हुए कहा- "यदि मैं मन, वाणी तथा कर्म से भगवान् राम को ही जानता होऊँ, उन्हीं की आज्ञा का पालन करता होऊँ और मेरी दृष्टि में उनके अतिरिक्त और कोई वस्तु न हो तो इस औषधि से पुष्कल जीवित हो जायँ। सिर धड़

जोडते ही पुष्कल जी उठे और शंकर से लड़ने के लिए दौड़े।

हनुमान् शत्रुघ्न के पास गये। शत्रुघ्न मूर्च्छा में "राम-राम', "रघुनन्दन-रघुनन्दन" आदि बोल रहे थे और कभी-कभी उनकी लीलाओं का प्रलाप भी करते थे। (हनुमान ने औषधि का प्रयोग करते हुए कहा)-- "यदि भगवान की कृपा से मैं नित्य ब्रह्मचारी हूँ और मेरा ब्रह्मचर्य कभी भंग नही हुआ है तो शत्रुघ्न अभी जीवित हो जायँ। शत्रुघ्न उठ बैठे और शिव कहाँ है, मै अभी मार डालूँगा, यह कहते हुए युद्ध भूमि की ओर दौड़े। पुनः घमासान युद्ध हुआ, वीरमणि मूर्च्छित हो गये, शंकर और शत्रुघ्न लड़ने लगे। जब शकर के बाणों से शत्रुघ्न व्याकुल हो गये, तब हनुमान ने कहा कि "अब अपने भैया की याद करो, तब काम बनेगा।" शत्रुघ्न ने वैसा ही किया और भगवान राम वहाँ उपस्थित हो गये, फिर शंकर ने बड़ी श्रद्धा भक्ति से उनकी स्तुति की और अपने इस अपराध को अमार्जनीय बतलाकर क्षमा प्रार्थना की।

भगवान् राम ने कहा- "देवाधिदेव महादेव! आपने बड़ा अच्छा काम किया है। यह तो देवताओं का धर्म ही है कि वे अपने भक्तों की रक्षा करें, तुम मेरे हृदय में हो और मैं तुम्हारे हृदय में हूँ, हम दो थोड़े ही हैं। जो हम दोनों में अन्तर देखते हैं, वे नरक में जाते हैं। जो तुम्हारे भक्त हैं, वे ही मेरे भक्त हैं। मेरे भक्त भी अत्यन्त भक्तिपूर्वक तुम्हें नमस्कार करते है। भगवान् ने सब मरे हुए और घायल वीरों का स्पर्श करके उन्हें जीवित किया। राजा वीरमणि अपना सर्वस्व समर्पित करके राम का भक्त हो गया। हनुमान् घोड़े के साथ आगे बढ़े।

जब भगवान् राम सम्पूर्ण वानर -भालुओं को विदा करने लगे और हनुमान् की बारी आयी, तब वे भगवान् के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने प्रार्थना की कि "भगवान! मैं आपके चरणों मे ही रहूँगा। भगवान् ने स्वीकृति दे दी। ऐसे भक्तों को भला भगवान् कब छोड़ते हैं। भगवान् की लीला के संवरण का समय आया, तब भगवान् ने हनुमान को बुलाकर कहा- हनुमान! अब तो मैं अपने लोक में जा रहा हूँ, परन्तु तुम दुःख मत मानना। यह अप्रिय कार्य तुम्हें करना पडेगा। तुम पृथ्वी में रहकर शान्ति का, प्रेम का और ज्ञान का प्रचार करो। जब तुम मुझे स्मरण करोगे, तब मैं तुम्हारे सामने प्रकट हो जाऊँगा। जहाँ-जहाँ मेरी कथा हो, मेरा कीर्तन हो, वहाँ-वहाँ तुम उपस्थित रहना, मैं तुमसे अलग थोडे ही होता हूँ यह तो केवल मेरी एक लीला है। हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा- प्रभो! मैं रहूँगा, जहाँ-जहाँ आपकी कथा होगी वहाँ-वहाँ जाकर सुनूँगा। यह ही मेरी जीवन का अवलम्बन होगा। भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए भगवान् राम ने एक ऐसे ही प्रसंग पर हनुमान से कहा था हनुमान! इस लोक में

जब तक मेरी कथा रहेगी, तब तक तुम्हारी कीर्ति और तुम्हारा जीवन रहेगा। जब तक जगत् रहेगा, तब तक मेरी कथा रहेगी। तुमने जो बड़े-बड़े मेरे उपकार किये हैं, उनमें से एक-एक के बदले में मैं अपने प्राण दे दूं तो भी तुम्हारा बदला नहीं चुका सकता। तुम्हारे उपकार का बदला मैं न दे सकूँ, यही ठीक भी है। तुम्हारे जीवन में कभी ऐसा अवसर ही न आवे कि तुम्हें प्रत्युपकार की आवश्यकता हो, क्योंकि मनुष्य विपत्ति में ही प्रत्युपकार का पात्र होता है।' भगवान् राम ने अपनी लीला संवरण कर ली, परन्तु उनके भक्त भगवान शकर की लीला चालू रही- "राम ते अधिक राम कर दासा।"

भगवान राम के परमधाम पधारने के पश्चात हनुमान का एकमात्र काम रहा भगवान के नाम, लीला और गुणों का कीर्तन एवं श्रवण। जहाँ-जहाँ सत्सग होता, वहीं हनुमान उपस्थित रहते। आर्ष्टिषेण ऋषि के साथ किंपुरुष वर्फ मे रहकर प्रायः ही भगवान के गुणानुवाद सुना करते। गन्धर्व के स्वलहरी जब अपने रस में त्रिभुवन को उन्मत किये होती, जब हनुमान उनके अमृतमय संगीत से निःसृत भगवान् राम की लीला का साक्षात् अनुभव करते होते। युग - पर-युग बीत गये, परन्तु एक क्षण के लिए भी उन्हें भगवान् की विस्मृति न हुई। भगवान् के अतिरिक्त और कोई भी उनके सामने न आया।

वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण का अवतार हुआ। श्रीकृष्ण और श्रीराम एक ही हैं, दो नहीं। वे भला अपने परम प्रिय भक्त हनुमान के बिना कैसे रहते? उन्होंने हनुमान को बुलाने का संकल्प किया, परन्तु इसके साथ भी तो कुछ लीला होनी चाहिए, हनुमान् की महत्ता प्रकट होनी चाहिए। अपना कहलाने वालों में जो दोष - दुर्गुण आ गये हैं, उन्हें दूर करना चाहिए। भगवान् के संकल्प करते ही हनुमान द्वारिका के पास ही एक उपवन में आ विराजे। भगवान नाम का संकीर्तन करते हुए फल खाने लगे, डालियाँ तोड़ने लगे।

अभी गरुड़ का गर्व टूटा नहीं था। वे सोचते थे कि अगर मै पकड़ न गया होता तो हनुमान् को बलात् ले चल सकता। उन्होंने दुबारा आक्रमण किया। अभिमान अंधा बना देता है। श्री कृष्ण का दूत समझ कर हनुमान् ने उन पर जोर से आघात नहीं किया, पर हल्के हाथ से पकड़ कर समुद्र की ओर फेक दिया। समुद्र में गिरने पर गरुड़ को दिग्भ्रम हो गया, बहुत देर तक वही छटपटाते रहे। जब उन्होंने भगवान् का स्मरण किया, तब कहीं द्वारिका का प्रकाश दीख पड़ा और वे श्रीकृष्ण के पास आये। सब बात सुनकर श्रीकृष्ण बहुत हँसे। अभी गरुड़ के मन में तेजी से उड़ने का गर्व बाकी ही था। वे सोचते थे कि उड़ने में मेरा मुकाबला वायु भी नहीं कर सकता भले ही हनुमान

बल में मुझसे बड़े हों।

भगवान् ने कहा - "गरुड़।*इस बार जाकर तुम कहो कि तुम्हारे इष्टदेव भगवान् श्रीराम तुम्हें बुला रहे हैं। शीघ्र ही चलो। उन्हें अपने साथ ही ले आना। अब वे तुम्हें कुछ नहीं करेंगे। तुम्हारा बड़ा आदर करेंगे। यद्यपि गरुड़ जाने मे डरते थे फिर भी अपनी उड़ने की शक्ति दिखलाने के लिये वे गये। भगवान् ने सत्यभामा से कहा कि सीता का रुप धारण करके आओ, हनुमान् आ रहा है। "चक्र से कहा कि सावधानी से पहरा दो, कोई भी द्वारिका में प्रवेश न करने पावे। सुदर्शनचक्र सावधानी से पहरा देने लगा और सत्यभामा सज-धजकर अपने सौन्दर्य के गर्व में मत्त होकर आ बैठीं। भगवान् श्रीकृष्ण धनुष बाणधारी रामभद्र हो गये।

इस बार गरुड़ की हिम्मत हनुमान् के पास जाने की न पड़ी। उन्होने दूर से ही कहा कि भगवान् श्रीराम आपको शीघ्र ही बुला रहे हैं। यदि मेरे साथ ही आप चल सकें तो चलें, नहीं तो मेरे कंधों पर बैठ जायें, मैं लेता चलूँ। हनुमान ने बड़ी प्रसन्नता से कहा - "अहोभाग्य। भगवान् ने मुझे बुलाया है। तुम चलो मैं आता ही हूँ। गरुड़ ने सोचा कि ये क्या कह रहे हैं। मुझसे पीछे चलकर ये कितनी देर में पहुँचेंगे। परन्तु वे डरे हुए थे, हनुमान से फिर कुछ कहने की उनकी हिम्मत न पड़ी। वे चुपचाप चल पड़े, सोच रहे थे कि भगवान् के पास चलकर अपनी तीव्र गति का प्रदर्शन करूँगा। हनुमान् गरुड़ से बहुत पहले द्वारिका में पहुँच गये। हनुमान की दृष्टि में वह द्वारिका नहीं थी, अयोध्या थी। फाटक पर चक्र ने अकड़कर कहा कि मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा। हनुमान ने कहा - तू भगवान् के दर्शन में विघ्न करता है और उसे पकड़कर मुँह में डाल लिया। भगवान् के महल में जाकर उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीराम सिंहासन पर विराजमान हैं। उन्हें माता सीता के दर्शन न हुए। हनुमान ने भगवान के चरणों में साष्टांग प्रणाम करके पूछा - "महाराज! आज माता जी कहाँ है? उनके स्थान पर यह कौन बैठी हैं? आपने किस दासी को इतना आदर दे रखा है? सत्यभामा लज्जित हो गयीं। उनका सौन्दर्यमद नष्ट हो गया। भगवान् ने कहा - हनुमान। तुम्हें किसी ने रोका नहीं? तुम यहाँ कैसे आ गये? हनुमान ने मुँह से चक्र निकाल कर सामने रख दिया। चक्र श्रीहत् हो गया था। जब दौड़ते हाँफते गरुड़ पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि हनुमान तो पहले से उपस्थित हैं। उनका मस्तक नत हो गया। इस प्रकार हनुमान को निमित्त बनाकर भगवान ने तीनों का गर्व नष्ट किया और हनुमान को द्वारिका के पूर्व द्वार पर, पुरी की रक्षा के लिए नियुक्त किया।

* उन दिनों पाण्डव [illegible] में थे। एक दिन द्रौपदी के सामने सभा में

उडता हुआ एक बड़ा ही सुन्दर और सुगन्धियुक्त पुष्प आया। द्रौपदी ने भीम से और फूलों के लिये प्रार्थना की और वे जिस ओर से फूल आया था उस ओर चल पड़े। भीम को अपने बल का घमंड था और वे कोई काम करने मे कभी कुछ सोचते - बिचारते नहीं थे। हनुमान ने सोचा कि भीम मेरा ही भाई है। उसके मन में गर्व नहीं होना चाहिए और इस समय वह जिधर बढ रहा है, उधर बड़ा खतरा है, कहीं नासमझी में उसका अनिष्ट न हो जाय। हनुमान आकर रास्ते में लेट गये और अपना लम्बा लंगूर फैला दिया। भीम ने हनुमान को पहचाना नहीं। उन्होंने कहा - वानर! अपनी पूँछ हटा ले, नही तो मैं उसे तोड़ डालूँगा। हनुमान ने अपने को पीड़ित सा बना लिया और कहा - भाई! मेरी पूँछ बहुत बड़ी है, तुम अभी जवान हो, बली हो, इसे लाँघकर चले जाओ या उसे हटा दो। भीम ने कहा - तुम्हारी पूँछ चाहे जितनी बड़ी हो, जैसे मेरे बड़े भाई हनुमान ने समुद्र लाँघा था, वैसे ही मैं तुम्हारी पूँछ लाँघ जाता परन्तु सबके शरीर में भगवान रहते हैं, इसलिए किसी को लाँघना उचित नहीं है। मैं तुम्हारी पूँछ हटा देता हूँ। उन्होंने पहले एक हाथ लगाया, परन्तु पूँछ न हिली, दोनों हाथ लगाया, फिर भी वह जैसी की तैसी अटल रही। उनके शरीर में पसीना आ गया, वे थक गये परन्तु पूँछ को न हटा सके। अब भीम को ध्यान आया। अभिमान टूटते ही वे हनुमान को पहचान गये। उन्होंने अपने कृत्य पर पश्चा-ताप किया, क्षमा माँगी और हनुमान ने बड़े प्रेम से उन्हें गले लगाकर भगवान राम की कथा सुनायी। भीमसेन के बहुत आग्रह करने पर हनुमान ने अपना वह भीषण रूप दिखाया, जिससे उन्होने समुद्र पार किया था। फिर छोटे रूप में हो गये और भीम को अनेकों प्रकार के उपदेश दिये। उन्होंने कहा - अब अभिमान कभी न करना। मेरे मिलने का हाल किसी से मत कहना और कोई आपत्ति पड़े तो मेरा स्मरण करना। कहो तो मैं हस्तिनापुर जाकर सारा नगर अभी नष्ट कर दूँ और धृतराष्ट्र के पुत्रो को मार डालूं। दुर्योधन को बाँध लाऊँ। जो कहो मैं करने को तैयार हूँ। भीमसेन ने कहा - आपकी सहायता पाकर हम सनाथ हुए, आपकी सहायता से ही हम शत्रुओं को जीत सकेंगे। हनुमान ने कहा - भीम जब तुम शत्रुओं की सेना में घुसकर सिंहनाद करोगे तो अर्जुन की ध्वजा के ऊपर रहकर मैं भी ऐसा शब्द करूँगा कि तुम्हारे शत्रु उसे सुनकर मृतप्राय हो जायेंगे। हनुमान ने भीम को आलिंगन किया और वहाँ से अर्न्तध्यान हो गये। उनके बतलाये हुए मार्ग से जाकर भीम ने वह पुष्प प्राप्त किया।

हनुमान में अभिमान की तनिक भी मात्रा नही है। हनुमान के जीवन में कभी अभिमान देखा ही न गया, इसी से भगवान अपने भक्तों के अभिमान को दूर करने का काम प्रायः हनुमान से ही लेते हैं। कहते है कि अर्जुन को

भी एक बार अपने बाहुबल का अभिमान हो गया था। उन्होंने बात ही बात मे एक दिन श्रीकृष्ण से कहा कि तुमने रामावतार में समुद्र पर पुल बाँधने के लिए इतना आयोजन क्यों किया? बाणों से पुल बाँध देते। बेचारे वानरो को झूठ-मूठ परेशान किया। भगवान हँसने लगे, उनका हँसना ही तो लोगो को भुलावा देने वाली माया है।

भगवान ने कहा - अच्छा, तुम बाणों से समुद्र के एक छोटे से अंश पर पुल बाँधो। मैं तुम्हें बताता हूँ। अर्जुन ने आनन - फानन में वैसा कर दिया।

भगवान ने हनुमान का स्मरण किया, वे तुरंत आ पहुँचे। भगवान की आज्ञा से वे बाणों के पुल पर चढ़े। उनके चढ़ते ही पुल चरचराकर टूटने लगा, वे उस पर से उतर आये। अर्जुन ने देखा कि भगवान की पीठ पर खून लगा हुआ है। पूछने पर मालूम हुआ कि यदि भगवान अपनी पीठ लगाकर उस पुल को न रोक रखते तो वह हनुमान को लिये दिये धँस जाता और अर्जुन की बड़ी हँसी होती। भगवान ने कहा - ऐसे-ऐसे अनेकों वानर थे, वे बाण के पुल पर से कैसे जाते। अर्जुन की समझ में बात आ गयी। उनका गर्व भंग हो गया।

अर्जुन ने भगवान की आज्ञा से हनुमान की बड़ी आराधना की। उनके मत्रों के पुरश्चरण किये। हनुमान ने वर दिया कि मैं सदा तुम्हारी सहायता करूँगा और भावी युद्ध में मैं तुम्हारे रथ पर बैठकर तुम्हारी रक्षा करूँगा। कहते हैं कि महाभारत युद्ध में अर्जुन के बाणों से सबके रथ बहुत दूर-दूर गिरते थे। परन्तु किसी के बाणों से अर्जुन का रथ पीछे नहीं हटता था। एक बार कर्ण के बाण से अर्जुन का रथ थोड़ा सा पीछे हट गया, इस पर युद्ध भूमि में ही भगवान श्रीकृष्ण ने कर्ण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अर्जुन ने पूछा- भगवन! मेरे बाण से कर्ण का रथ बहुत पीछे हट जाता है और उसके बाण से मेरा रथ बहुत थोड़ा सा पीछे हटा है, फिर उसकी प्रशंसा करने की क्या बात है? भगवान ने कहा - अर्जुन! तुम्हारे रथ पर हनुमान बैठे हुए हैं, नहीं तो अब तक तुम्हारा रथ भस्म हो गया होता। उनके बैठे रहने पर भी रथ का पीछे हट जाना कर्ण की बहुत बड़ी वीरता का सूचक है। अर्जुन का समाधान हो गया। महायुद्ध के अन्त में जब हनुमान अर्जुन के रथ पर से कूद पड़े, तब उनका रथ जलकर राख हो गया। यह हनुमान का ही प्रताप था कि अर्जुन इतनी वीरता के साथ लड़ सके।

श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न दिग्विजय के लिये निकले हुए थे। द्वारिका में अश्वमेघ यज्ञ होने वाला था और उसी की यह भूमिका थी। वे दिग्विजय करते हुए हिरण्मयखण्ड में पहुँचे। उस समय उनके साथ अर्जुन भी थे और उनके रथ की ध्वजा पर हनुमान विराजमान थे। में नल-नील के वंशज

प्रद्युम्न के रथ को अपनी पूछ म लपटकर जमीन पर पटक देते। बड़ा भयकर सग्राम हुआ, अन्त में हनुमान जी ध्वजा पर से कूद पड़े और अपनी पूँछ मे सब वानरों को समेट लिया। जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो हनुमान है, तब वहाँ के सब निवासियों ने बड़ी श्रद्धा भक्ति से हनुमान, प्रद्युम्न और अर्जुन की पूजा की। अनेकों प्रकार के पदार्थ भेंट दिये। वहाँ से फिर उन लोगो ने दूसरी ओर प्रस्थान किया। हनुमान कितने बड़े तत्ववेत्ता थे, इसका पता रामरहस्य - उपनिषद् से चलता है। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार तथा सनातन चारों भाई उनसे राम - मंत्रो का रहस्य प्राप्त करते हैं। बड़े-बड़े ऋषि और प्रह्लाद उनके शिष्य हैं। स्वयं भगवानराम ने उन्हें उपनिषदों का तत्व बतलाया है, जिनका वर्णन मुक्तिकोपनिषद् में आया है और भी पुराणान्तरों में मारुति चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णित हुआ है।

भगवान् विष्णु के संकल्प से श्रीविखनस् (ब्रह्मा) जी का आविर्भाव हुआ। उनके द्वारा प्रवर्तित यह सम्प्रदाय स्वायम्भुव मन्वन्तर से ही चला आ रहा है। इस वैखानस - सम्प्रदाय में वैदिक ढंग से भगवान् विष्णु की उपासना की जाती है, जिससे लोक-परलोक-परमार्थ-सभी सिद्ध होते हैं। अन्य ग्रन्थ भी इसका समर्थन करते हैं।

श्रीहनुमानजी के शरीर का वर्ण काला तथा उनके वस्त्र का रंग श्वेत है और दक्षिण हस्त से मुख तथा वाम हस्त से वस्त्र को आच्छादित करके वे श्रीरामजी को संदेश सुना रहे हैं, ऐसे श्रीहनुमान का ध्यान करना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि वैखानस-आगम की रीति से निर्मित हनुमानजी की उपासना प्राचीन काल से की जाती रही है।

मध्व - सम्प्रदाय में हनुमानजी को वायुदेव का अवतार माना जाता है। वायुदेव अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् विष्णु के अनन्य भक्त है। परमशक्तिमान् विष्णु की सेवा के लिये वायुदेव सदा तत्पर रहते हैं और उनको वे अपनी विभिन्न चेष्टाओं द्वारा प्रसन्न रखते हैं।

द्वैत-मत के अनुसार वायुदेव ने भगवान् विष्णु के कार्यों के साधनाहेतु तथा उनकी सेवा को दृष्टि में रखते हुए तीन विशिष्ट अवतार लिये हैं, जिनमें उन्होने श्रीहनुमान के रूप में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम की, महाबली भीम के रूप मे श्रीकृष्णभगवान् की और महाज्ञानी मध्वाचार्य के रूप में भगवान् वेदव्यास की सेवा की। वायुदेव द्वारा उपर्युक्त तीनों अवतारों के लिये जाने का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य है - "धर्म - रक्षा"। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भगवान् विष्णु द्वारा संचालित "धर्म" की सुरक्षा के लिये वायुदेव ने इन तीनो अवतारों को ग्रहण किया -

"बाह्वोर्बलात् ज्ञानबलाच्च रक्ष्यो धर्मः।"

हनुमानजी वायुदेव के प्रथम अवतार हैं। मध्व - मत में इन्हें "बुद्धिमता वरिष्ठं:" कहा गया है। श्रीमन्मध्वाचार्यजीविरचित "ऐतरेय-भाष्य" में हनुमान एवं हनूमान - इन दोनों नामों को पर्यायवाची कहा गया है। मध्व सम्प्रदाय के अनुसार "हनु" - शब्द परम - ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होता है और "परम-ज्ञान" का जो अधिकारी देवता है, उसे "हनुमान" या "हनूमान" के नाम से सम्बोधित किया जाता है। उपर्युक्त कथन "ऐतरेय - भाष्य" में वर्णित निम्न लिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है -

"हनुशब्दो ज्ञानवाची हनूमानितिशब्दितः।"

द्वैत-मत में हनुमानजी को एक आदर्श देवता के रूप में देखा जाता है। श्रीराम में अनन्य विश्वास और उनके प्रति "सेवक" की भावना ही इनका परम आदर्श है। यद्यपि हनुमानजी श्रीराम के अत्यन्त प्रिय पात्र थे तथा श्रीराम राज्य में इनके लिये कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं था, तथापि श्रीराम के चरणो की सेवा में अनुरक्त हनुमान को किसी प्रकार की उपाधि या सुख-भोग की अपेक्षा न थी।

श्रीराम के प्रति हनुमानजी की अद्वितीय भक्ति "न भूतो न भविष्यति" इस कहावत को पूर्णतया चरितार्थ करती है। श्रीराम के साथ प्रवासकाल मे ये सदा श्रीराम - नाम का ही जप करते थे। "हे नाथ! तुम्हें प्रणाम है, हे श्रीराम! तुम्हें प्रणाम है, हे प्रभो! तुम्हारे चरणों में सेवक का प्रणाम है" - इस प्रकार के शब्दों का बारंबार उच्चारण करते हुए हनुमान सदा-सर्वदा श्रीराम-भक्ति में तल्लीन रहते थे-

"नमो नमो नाथ नमो नमस्ते।
नमो नमो राम नमो नमस्ते।।
पुनः पुनस्ते चरणारविन्दं।
नमामि नाथेति नमन् स रेमे।।" (सुमध्व - विजय)

मध्व - मत में श्रीहनुमान की सर्वशक्तिशाली एवं अभिलाषापूरक देवता के रूप में पूजा की जाती है। विद्या, धन राज्यश्री, शत्रुनिग्रह आदि सभी कामत्ताओं की पूर्ति हनुमानजी के पूजन से सम्भव है। श्रीमन्मध्वाचार्यजी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "तन्त्रसार" में लिखा है-

"विद्या वापि धनं चापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्।।"

——— में गौड़ीय वैष्णव ——— में श्रीहनुमान दास्य भक्ति के आदर्श

के रूप में पूजित होते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रधान परिकर श्रीमुरारिगुप्त श्री हनुमान जी के अवतार माने जाते थे। कवि कर्णपूर (सोलहवी शताब्दी) "गौरगणोदेश - दीपिका" नामक ग्रन्थ मे लिखते हैं-

"मुरारिगुप्तो हनूमानगंदः श्रीपुरंदर।
यः श्रीसुग्रीवनामासीद् गोविन्दानन्द एव सः।।"

पूर्व त्रेतायुग में जो हनुमान थे, श्री चैतन्य - लीला में वे ही मुरारिगुप्त नाम से अभिहित हैं, अंगद भी पुरंदर हैं और जो सुग्रीव थे, वे ही इस समय गोविन्दानन्द हैं।

वैष्णव - वन्दना में लिखा है-

"वन्दिबो मुरारि गुप्त भक्तिशक्तिमन्त।
पूर्व अवतार याँर नाम हनूमन्त।।"

श्रीमुरारिगुप्त में प्रायः श्री हनुमानजी का आवेश होता रहता था, उस समय उनके शरीर में अपार बल आ जाता था। जिस समय जगाई-मधाई नवद्वीप में उद्दण्डता की चरम सीमा पर थे, उस समय उनके मन में यह गर्व था कि नवद्वीप में उनके समान बलवान् दूसरा कोई नहीं है। किन्तु जिस दिन श्रीगौरांग ने उनका उद्धार किया, उसी दिन महाप्रभु के आदेश से श्रीमुरारिगुप्त ने उन दोनों भाइयों को दोनों कक्ष में दबाकर उनके प्रांगण में लाकर उपस्थित किया था।

प्रसिद्ध गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीमद्रूपगोस्वामी द्वारा संगृहीत "पद्यावली" नामक सुभाषित काव्य - ग्रन्थ में (सोलहवीं शताब्दी) "भक्तानां माहात्म्यम्" - प्रकरण में निम्न श्लोक मिलता है, जहाँ उन्होंने श्रीहनुमानजी को दास्य भक्ति के आदर्श के रूप में स्वीकार किया है-

"श्री विष्णो : श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकि : कीर्तने।
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येथ सख्येर्जुनः।
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत कृष्णाप्तिरेषां परम्।।"

श्रीविष्णु की कथा सुनने में परीक्षित, महिमा कीर्तन में व्यासपुत्र श्रीशुकदेव, भगवत्स्मरण में प्रह्लाद, चरण- सेवा में लक्ष्मी, भगवत्पूजन में पृथु, वन्दना मे अक्रूर, दास्य-भाव की साधना में हनुमान, सख्य-भाव की साधना में अर्जुन तथा सर्वस्व आत्मनिवेदन में महाराज बलि श्रीकृष्ण को प्राप्त करके कृतार्थ हुए थे।

वल्लभ - सम्प्रदाय का प्रारम्भ भगवान् श्रीपुरुषोत्तम से आरम्भ होकर

भगवान् शंकर के द्वारा आगे-से आगे बढाया गया है। भगवान् आशुतोष इस सम्प्रदाय में वैष्णवाग्रगण्य हैं और मारूतिराय शंकर - सुवन होने के कारण इस सम्प्रदाय मे यथाविधि पूजित एवं अर्चित हैं।

"वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।।"

श्रीमद्‌बल्लभाचार्य की श्रीहनुमानजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी, जिसका प्रभाव उनके शिष्यों एवं वंशजों पर भी पड़ा। इसी कारण उनके शिष्यों ने भी श्रीहनुमानजी का गुण-गान किया। श्रीवल्लभ-सुत गुसाईजी श्रीविट्‌ठलनाथजी ने जब "अष्टछाप" की स्थापना की, तब उन्होंने भी कीर्तनो मे श्रीहनुमानजी की स्तुति को उचित स्थान और महत्व दिया। यद्यपि इस सम्प्रदाय में यशोदा-कुमार नन्दनन्दन गोवर्धनोद्धरण आनन्दकन्द प्रभु श्रीकृष्ण ही सेव्य हैं, तथापि श्रीकृष्ण और श्रीराम में अभेद मानकर अष्टयाम-सेवा - विधान में भगवान् के समक्ष शारदीय नवरात्र में चार दिन श्रीराम और श्रीहनुमानजी के सम्बन्ध में कीर्तन गाये जाते हैं, जिन्हे इस सम्प्रदाय में "कररवा" कहते हैं और जो "मारू" - राग में निनादित होते रहते हैं। "अष्टछाप" के सिरमौर कवि, श्याम - सखा तथा महान् गायक श्रीसूरदासजी ने श्रीहनुमानजी का भव्य गुण-गान भावभरे हृदय से अपने पदों में किया है। श्रीनन्ददास, श्रीकृष्णदास आदि "अष्टछाप" के भक्त - कवियों की वाणी भी श्रीहनुमद्‌गुणगान से अलंकृत है।

श्रीरामानन्द - सम्प्रदाय में श्रीहनुमानजी का एक अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। सामान्य हिन्दू - जगत् इन्हे देवता अथवा भगवान् श्रीराम के दूत के रूप में ही मानता और पूजता है, परन्तु श्रीरामानन्द - सम्प्रदाय में इनकी साकेताधीश श्रीराम के नित्य परिकर और श्रीराम-मन्त्र के प्रधान आचार्य के रूप में उपासना की जाती है।

श्रीरामानन्द-सम्प्रदाय के अनुसार सप्तावरण-संज्ञक प्रकृति - मण्डल के ऊपर परम प्रकाशमय "महावैष्णव" - संज्ञक लोक है। उसके मध्य में "साकेत" - संज्ञक दिव्य लोक है, जो नित्य है और वहाँ परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीराम अपने समस्त परिकर, परिच्छद एवं परिजनों के साथ सदा विराजमान रहते है। वहाँ श्रीहनुमानजी सदा उनकी सेवा में तत्पर रहते हैं। वहीं श्रीरामतारक - मन्त्र का उपदेश श्रीरामजी ने श्रीसीताजी को दिया और श्रीसीताजी ने हनुमानजी को फिर श्रीहनुमानजी ने ब्रह्मा को दिया और ब्रह्मा के द्वारा यह मन्त्र परम्पराख्प से विस्तृत हुआ -

"भगवान् रामचन्द्रो वै परं ब्रह्म श्रुतिश्रुतः।
दयालुः शरणं नित्यं दासानां दीनचेतसाम्।।

इमां सृष्टिं समुत्पाद्य जीवानां हितकाम्यया।
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम्।।
तारकं मन्त्रराजं तु श्रावयामास ईश्वरः।
जानकी तु जगन्माता हनूमन्तं गुणाकरम्।।
श्रावयामास नूनं हि ब्रह्माणं सुधियां वरम्।
तस्मादेव वरिष्ठर्षिः क्रमादस्मादवातरत्।।''

श्रीरामानन्द - सम्प्रदाय के अनुसार श्रीरामजी के द्वार पर श्रीहनुमान जी सतत विराजमान रहते हैं और बिना उनकी आज्ञा के कोई श्रीरामजी की ड्योढ़ी मे प्रवेश नहीं कर सकता, अतः श्रीरामजी की प्राप्ति के लिये सर्वप्रथम श्रीहनुमानजी की कृपा आवश्यक है-

''राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे।।''

श्रीहनुमानजी की कृपा से जब जीव श्रीरामजी के भवन में पहुँच जाता है, तब वहाँ वात्सल्यमयी माँ मैथिली उसे भगवान् के सम्मुख कर देती हैं। बिना माँ मैथिली की कृपा के जीव को श्रीराम-रूप का दर्शन नहीं हो सकता। अतः श्रीराम जी की प्राप्ति में श्रीहनुमानजी और श्रीजानकीजी सोपान-स्वरूप है।

तुलसीदासजी द्वारा वर्णित हनुमानजी का चरित्र अत्यन्त उदात्त और पवित्र है। श्रीराम के अतिरिक्त उनका कोई आश्रय, कोई परिग्रह नहीं है श्रीराम के कार्य के अतिरिक्त उनका कोई व्यक्तिगत कार्य नहीं है। श्रीराम का प्रेम ही उनका साधन है। वही उनकी सिद्धि है। कहीं भी उनका व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं दिखायी देता। वे श्रीराममय हैं। स्वयं श्रीराम ही उनके माध्यम से कार्य कर रहे हैं। सुग्रीव के समान उनका राज्य, पुत्र, कलत्र आदि प्रपंच नहीं है। अपने बल का अभिमान तो क्या, उसका उन्हें बोध भी नहीं है। जब याद दिलाया जाता है, तभी उन्हें उसका स्मरण होता है। उन्होंने भक्ति के चरण मापदण्ड को स्थापित किया है। अपने विषय में उन्होंने कहा है-

''कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।।''

भारतीय संतों में राष्ट्रगुरु श्रीसमर्थ रामदास स्वामी का स्थान वैशिष्ट्यपूर्ण है। वे एक ऐसे संत हैं, जिन्होंने मन की साधना के साथ-साथ तन की साधना का भी समर्थन और प्रचार किया था। आध्यात्मिक उन्नति के साथ साथ शारीरिक शक्ति का संचय भी उनकी उपासना पद्धति का एक आवश्यक अंग कहा जा सकता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि स्वयं श्रीहनुमानजी ही

श्रीसमर्थ के गुरू थे-

"आदिनारायणं विष्णु ब्रह्माणं च विसिष्ठकम्।
श्रीरामं मारुति वन्दे रामदासं जगद्गुरुम्।।"

श्रीसमर्थ - सम्प्रदाय की यह गुरू परम्परा है। श्रीहनुमानजी की श्रीसमर्थ पर सप्रत्यक्ष और असीम कृपार्थी। श्रीसमर्थ के चरित्र - लेखकों ने ऐसा संकेत किया है कि श्रीराम - नाम का गुरु मन्त्र देकर श्रीहनुमान जी ने श्रीसमर्थको उनकी बीस वर्ष की अवस्था में ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी का साक्षात्कार करा दिया था।

नासिक - क्षेत्र के निकट गोदावरी के तट पर "टाकली" गाँव स्थित है। यहाँ श्रीसमर्थ ने बारह वर्ष तक श्रीराम - नाम का तेरह करोड़ जप करते हुए उग्र तपश्चर्या की थी। ऐसा कहा जाता है कि उस अवधि में उनके प्रवचनों को सुनने के लिए स्वयं श्रीहनुमानजी भी वामनरूप में उपस्थित रहा करते थे। टाकली की तपश्चर्या उन्हें फलदायी हुई और प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की उनपर कृपा हो गयी बारह वर्ष की तपश्चर्या पूरी करने के बाद टाकली में वे जिरा कुटी में निवास कर तप करते थे, उसमें गोवर सकी श्रीहनुमान-मूर्ति स्थापित करके अपने शिष्य श्रीउद्धवजी गोस्वामी को वहाँ की देखभाल के लिये नियुक्त कर वे तीर्थाटन करने निकल पड़े कहा जाता है कि तीर्थाटन के पूर्व उनकी और बालक शिवाजी की भेंट नासिक में हुई थी।

तीर्थाटन के बारह वर्षों की अवधि में उन्होंने प्रायः समस्त भारत में पैदल ही भ्रमण कर सामाजिक जीवन का दीन-हीन चित्र निकट से देखा। यवनों द्वारा दलित होते हुए, हिंदुओं के "त्राहि-त्राहि" - स्वर से उनके तन-मन तिलमिला उठे। हिन्दूं - धर्म और हिंदू - समाज का दुर्दशामय चित्र देखकर उन्होंने श्रीहनुमानजी की उपासना का संजीवन - महामन्त्र प्रवर्तित किया और इसके द्वारा हिन्दुओं में आत्म-विश्वास की भावना जाग्रत की एवं उन्हें हिंदू-धर्म के संरक्षण करने की प्रेरणा प्रदान की। उनकी प्रेरणा से धर्म - संरक्षणार्थ हजारों स्थानों पर शक्ति के प्रतीक श्रीहनुमानजी की भव्य मूर्तियों की स्थापना हुई तथा स्थान-स्थान उनकी उपासना चल पड़ी। श्रीहनुमानजी केवल शारीरिक शक्ति के ही प्रतीक नहीं थे अपितु उससे भी अधिक वे श्रीराम- "कार्य" के प्रतीक थे। श्रीराम-कार्य का अर्थ है रावणत्व पर रामत्व की विजय, अधर्म के स्थान पर धर्म की स्थापना तथा देवत्व द्वारा असुरता का दमन। समर्थ श्रीरामदास द्वारा स्थापित मूर्तियों में पांव तले राक्षस को दबाकर खड़े हुए विजयी वीर श्रीहनुमानजी का रुद्ररूप ही प्रदर्शित किया गया है। उनके द्वारा स्थापित मूर्तियों की सब एक पहचान सी बन गयी है।

महाकवि कबन ने तमिल - भाषा मे श्रीरामकथा को "रामावतारम्" नामक ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत किया है। उस महाकाव्य के प्रारम्भ में ध्यान के छन्दों में एक रसपूर्ण एवं रहस्यपूर्ण वर्णन मिलता है, जो श्रीहनुमानपरक है। श्रीमारुति का गगनमार्ग से समुद्र पार करके लंका पहुँचना, भगवती सीतादेवी से मिलना और लंका में आग लगाना - ये तीन वृतान्त छन्द में कहे गये है। संकेत से कहकर सभी श्रीहनुमान के पराक्रम, असीम ज्ञान, भक्ति या किसी वीरतासूचक वृतान्त को इस तमिल छन्द में नहीं कहा गया है, यह सांकेतिकता ही इस छन्द का सौन्दर्य है। छन्द की अन्तिम पंक्ति में "वे हमारी रक्षा करे"- कहकर संरक्षण हेतु प्रार्थना की गयी है-

"आन्जिले ओन्रू पेट्रान आन्जिले औनुरैत्ताबि।
आन्जिले औन्रू आराग आरियरकुक्काग एगि।।
आन्जिले ओन्रू पेट्र अणंगु कण्डु अयलार ऊरिलु।
आन्जिले औनुरै वैत्तान् अवन् एम्मै अलितत्तुक्काप्पान्।।"

दक्षिण भारत की प्रमुख भाषा तेलुगु में भी श्रीरामचरित पर प्रभूत साहित्य उपलब्ध है। श्रीहनुमानजी का चरित्र श्रीरामचरित का ही एक अंग है श्रीराम - साहित्य के सभी ग्रन्थ काव्य - कौशल, भाषा शैली आदि की दृष्टि से अपनी-अपनी विशिष्टता रखने पर भी सभी में श्रीरामकथा के कथनाक का प्रवाह लगभग समान ही है। उन सभी ग्रन्थों की तुलनात्मक समीक्षा एक लेख में सम्भव नहीं। अतः कालक्रमानुसार प्राचीन एवं काव्य - दृष्टि से उत्कृष्ट कतिपय तेलुगु रामायणों में जैसा हनुमच्चरित आया है, उसका संक्षिप्त सिंहावलोकन ही यहां किया जा रहा है। चौदहवीं शती के पूर्वार्ध में रचित "भास्कर - रामायण" तथा उत्तरार्ध में रचित "रंगनाथ-रामायण" एवं चौदहवीं या सोलहवीं शती में रचित "मोल्ल - रामायण" का तेलुगु - साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इनमें "गौनबुद्धाराजु" द्वारा विरचित "रंगनाथ-रामायण" स्पष्ट रूप से वाल्मीकि - रामायण का लगभग अनुवाद कहा गया है।

हुलक्कि भास्करडु द्वारा विरचित "भास्कर - रामायण" और आतुकूरि मोल्ला (कवयित्री) द्वारा विरचित "मोल्ल - रामायण' का भी प्रेरणास्रोत वाल्मीकि रामायण ही है। इन दोनों रामायणों में वाल्मीकि का पर्याप्त अनुसरण किया गया है। इन तीनों मुख्य रामायणों में श्रीहनुमानजी के चरित्रों का तुलनात्मक स्वरूप इस प्रकार है-

(1) श्रीहनुमानजी का जन्म - "रंगनाथ - रामायण" के अनुसार अंजनादेवी ने पुत्र - प्राप्ति के लिये वायुदेव से प्रार्थना की। वायुदेव की कृपा से भगवान शंकर का शुक्र साध्वी अंजना के गर्भ में प्रतिष्ठित हुआ और बीस हजार वर्षों

तक माँ अंजना के गर्भ में वास करने के बाद शिशु हनुमान का प्राकट्य हुआ। "मोल्ल-रामायण" में तना ही वर्णन है कि वायुदेव की कृपा से श्रीहनुमानजी का जन्म हुआ।

(2) श्रीहनुमानजी की तपस्या - "भास्कर - रामायण" में आया है कि परमदेव ब्रह्मा जी के लिये तपस्या करने पर ब्रह्मा जी श्रीहनुमान को वर - प्रदान करते हुए कहते हैं कि "जो तुम्हारे शरीर पर रहने वाले आभूषणो को देख सकेगा, वही तुम्हारा स्वामी तथा मुक्तिदाता होगा।"

"ओनरंग नीमेनि बुरू भूषणमुलु।
कनुगोन्नयातंडे गत्तियुनु बत्तियु।।"

(3) श्रीहनुमान - श्रीराम-मिलन - सुग्रीव की प्रेरणा से श्रीहनुमानजी विप्र-रूप धारण करके श्रीराम - लक्ष्मण के पास जाते हैं और श्रीरामजी उनका कपिरूप तथा शरीर पर धारण किये गये उनके आभूषणों को देखकर उनके विषय में पूछते है, इससे श्रीहनुमानजी उन्हें अपने स्वामी के रूप में पहचान लेते हैं और उनके शरणापन्न हो जाते हैं। यह बात "रंगनाथ-रामायण" के अतिरिक्त "भास्कर - रामायण" में भी वर्णित है, किन्तु "मोल्ल-रामायण" मे स्पष्ट रूप से ऐसा वर्णन नहीं पाया जाता।

(4) मुद्रिका - ग्रहण - "रंगनाथ - रामायण" में श्रीराम श्रीहनुमानजी को अपना अंगुलीयक देते हुए कहते हैं कि "तुम अवश्य ही सीताजी का दर्शन-लाभ करोगे।" "मोल्ल-रामायण" में कहा गया है कि "सीताजी को यह अंगुलीयक देकर उनसे उनका शिरोरत्न लेते आना।" "भास्कर - रामायण" में तो श्रीरामचरित-मानस जैसी ही बात कही गयी है कि सीता को अंगूठी देकर उन्हें समझाना।"

(5) लंका - प्रवेशार्थ समुद्रोल्लंघन - सभी वानर दक्षिणी समुद्र तट पर पहुँचकर समुद्र पार करने की क्षमता के अभाव में दुःखित हैं। उस समय श्रीजाम्बवान् की प्रेरणा से हनुमानजी समुद्र लांघते हैं। यह बात "रंगनाथ-रामायण", "भास्कर - रामायण" एवं "रामचरितमानस" में भी स्पष्ट रूप से कही गयी है, किन्तु "मोल्ल - रामायण" में कहा गया है कि सारे वानर - समुदाय ने हनुमान जी से प्रार्थना की। हनुमानजी द्वारा समुद्र पार करते समय मैनाक का आतिथ्य, सुरसा द्वारा उनकी परीक्षा, सिंहिका का बध आदि प्रसंग तीनों रामायणों में एक-से ही पाये जाते हैं।

हनुमानजी ने लंका में प्रवेश करते ही लंकिनी को दण्ड दिया। ऐसा "रंगनाथ-रामायण", "रामचरितमानस" आदि रामायणों में पाया जाता है,

किन्तु "मोल्ल में तो अशोक वाटिका विध्वंस एव लका

- दहन के पश्चात् लंकिनी के वध का प्रसंग आता है।

(6) श्रीसीता - दर्शन - "रंगनाथ - रामायण" में भगवती सीता का दर्शन लेने, उन्हें मुद्रिका दे देने तथा उनसे चूड़ामणि ग्रहण कर लेने के बाद श्रीहनुमानजी अशोक - वन के फल खाने की अनुमति प्राप्त करते हैं तथा वन मे प्रवेश करते हैं-

'तल्लि ने नाकोंटि दनरग वनमु। नेल्लेड फलमुलु नेनु गैकोन्दु।।'

(7) अशोक - वन विध्वंस - यह अंश सभी रामायणों में वर्णित है तथा मेघनाथ द्वारा प्रयोग में लाये गये वायव्य, रौद्र एवं आग्नेयास्त्र - इन सभी के शान्त होने का कारण "मोल्ल" तथा "रंगनाथ" रामायणों में चमत्कारपूर्ण कहा गया है।

(8) लंका - दहन - विभीषण के द्वारा प्रबोध कराये जाने पर रावण ने श्रीहनुमानजी को मारना छोड़कर उनकी पूँछ जलाने का आदेश दिया। तब राक्षसों ने श्रीहनुमानजी की पूँछ के छोर पर कपड़े लपेटकर आग लगा दी। यह बात मालूम होने पर सीताजी ने अग्नि से प्रार्थना की। इस पर अग्नि की दाहिका - शक्ति श्रीहनुमानजी के लिये शान्त हो गयी। पूँछ की आग से लका जला चुकने के पश्चात् उन्होंने समुद्र के जल में उसे बुझा दिया। "रगनाथ-रामायण" और "मोल्ल रामायण" में लंका दहन के वर्णन का सादृश्य होते हुए भी "मोल्ल - रामायण" में श्री हनुमान जी द्वारा पूँछ में आग लगाये जाने पर "अग्निसूक्त" का पाठ करने का उल्लेख किया गया है।

(9) संजीवनी - पर्वत लाना - इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित वानर - सेना के रक्षार्थ श्रीजाम्बवान्जी श्रीहनुमानजी को संजीवनी - पर्वत लाने की आज्ञा देते हैं और वे उसे ले आते हैं। दूसरी बार जब लक्ष्मणजी रावण के शक्ति - प्रहार से मूर्च्छित होते हैं तब सुषेण की सलाह पर श्रीहनुमानजी सजीवनी पर्वत को लाने के लिये प्रस्थित होते हैं। उस समय श्रीहनुमानजी सजीवनी - पर्वत को लाने के लिये प्रस्थित होते हैं। उस समय श्रीहनुमानजी की यात्रा में विघ्न उपस्थित करने के लिये रावण की प्रेरणा से कालनेमि प्रयत्न करता है तथा श्रीहनुमानजी द्वारा शापविमुक्त (मकरी) अप्सरा कालनेमि का वास्तविक परिचय देती है। तब हनुमानजी उस राक्षस को मारकर आगे आते है। ये अंश "रंगनाथ-रामायण" "मोल्ल - रामायण" और "भास्कर - रामायण" मे समान रूप से पाये जाते हैं, किन्तु संजीवनी बूटी के प्रयोग से लक्ष्मणजी के जीवित हो जाने के पश्चात् श्रीहनुमानजी संजीवनी - पर्वत को यथास्थान रख आना चाहते हैं। उस समय भी रावण मार्ग में बाधा डालता है, किन्तु वे सभी राक्षसों का वध करके अपना काम पूरा करते हैं। यह बात

"रगनाथ-रामायण" और "मोल्ल - रामायण" में है।

(10) श्रीराम-सीता - मिलन एवं राज्याभिषेक - रावण-वध का समाचार श्रीहनुमान जी ही सीताजी को सुनाते हैं। अग्नि-परीक्षिता सीताजी के साथ सपरिवार श्री राम जी सेतुबन्ध पर लिंग - प्रतिष्ठा करना चाहते हैं तो श्री हनुमानजी इनके लिये काशी से शिवलिंग लाते हैं। फिर भरद्वाजाश्रम में ठहरे हुए श्रीरामजी का समाचार भरतजी को सुनाकर वे भरत की प्राण-रक्षा करते है। श्रीराम - राज्याभिषेक के लिये श्रीहनुमानजी ही समुद्र - जल लाते हैं और उनके अभिषेक के पश्चात् उनसे बधाई पाते हैं। वे ही श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामजी की ही सेवा में अपना जीवन समर्पित कर जगत् के कल्याण के लिये आज भी विद्यमान हैं।

"रंगनाथ", "भास्कर" और "मोल्ल" रामायणो के रचयिता चौदहवीं शती के ही हैं। इन तीनों ही रामायणों में श्रीहनुमान के श्रीरामभक्त-स्वरूप की अभिव्यक्ति बड़े भावपूर्ण ढंग से की गयी है, जिसका प्रभाव आज भी जन-मानस पर है और लोग बड़ी भक्ति - भावना से श्रीहनुमानजी की आराधना करते है।

कन्नड-साहित्य का आदिकाल (450 ई० से 12 वीं शती ईसवीं तक) जैनयुग या पम्पयुग कहलाता है। कन्नड का आदि ग्रन्थ "कविराजमार्ग" नामक एक लक्षण-ग्रन्थ है, जिसके रचयिता राष्ट्रकूट सम्राट नृपतुंग (814 - 877) माने जाते हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ में किसी रामायण के कुछ अनुष्टुप् छन्द उद्धृत किये है। उनमें से एक द्रष्टव्य है -

"ताराजानकिंय पोगि तारा तरल नेत्रेयम्।
ताराधिपति तेजस्वि तारादि विजयोदय।।"

"हे तेजस्वि ताराधिपति तरलनेगा जानकी को ढूँढ ला।" इन्हीं उद्धृत पद्यों में "अनुव" के नाम से श्रीहनुमान का भी उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि नृपतुंग के पूर्व ही कन्नड में कोई रामायण-ग्रन्थ था, जो आज अनुपलब्ध है। पोंठा (950 ई०) का "भुवनैक रामम्पुरम्", नागचन्द्र (1100 ई०) का "रामचन्द्र - चरितपुराण', कुमुदेन्दु (1275 ई०) की "कुमुदेन्दु - रामायण' आदि प्रसिद्ध जैन रामकाव्य हैं, जिनमें वैदिक रामायण के पात्र तोड़े मरोड़े गये हैं और श्रीहनुमान के चरित्र का चित्रण दूसरे प्रकार से हुआ है। आगे चलकर वीरशैव - युग (1200 ई० से 1500 ई० तक) आया, जिसमें वीरशैवों ने रामायण को छुआ तक नहीं। अतः भक्त श्रीहनुमान का चरित्र हमें वैष्णव -युग में ही देखने को मिलता है।

कन्नड में वैदिक परम्परा के अनुसार रामायण की रचना करने वालों मे

तोरवे नरहरि अथवा कुमार वाल्मीकि (1500 ई०) अग्रगण्य है। "तोरवे-रामायण" तथा "मैरावणन - काळग' इसके दो ग्रन्थ हैं। "तारवे - रामायण" मे वाल्मीकि रामायण की ही कथा निरूपित है। षट्पदी छन्दों में लिखे गये इस काव्य में श्रीहनुमान के युद्धों का विस्तृत वर्णन है। वास्तव में इस काव्य का आधे से अधिक भाग युद्ध - वर्णन के लिये ही निवेदित है।

इसमें श्रीहनुमान जब संजीवनी लाने जाते हैं, तब मार्ग में कालनेमि नामक राक्षस तापस - वेष में उन्हें रोकने का प्रयास करता है। अन्त में श्री हनुमान उसे मार देते हैं। रण में पराजित होकर रावण एक यज्ञ करता है। अन्त मे श्रीहनुमान उस यज्ञ का भी विध्वंस करते हैं। श्रीहनुमान को यहां शिवांस सम्भूत" कहा गया है।

कुमार वाल्मीकि का दूसरा काव्य है - "मैरावणन काळग"। इसमें रावण श्रीराम को जीतने के लिये पाताल में जाकर वहाँ के अधिपति अहिरावण की सहायता माँगता है। अहिरावण निद्रालीन श्रीराम एवं लक्ष्मण को चुरा ले जाता है और पाताल - लंका में अपनी कुलदेवता कंकणादेवी के सामने उनकी बलि चढाने का प्रयत्न करता है। विभीषण के द्वारा श्रीहनुमान को इसका पता चलता है और वे पाताल लंका जाते हैं। वहाँ पहुँचकर वे अहिरावण को मारते है और श्रीराम - लक्ष्मण को कंधो पर उठाकर लाते हैं। श्रीहनुमान की महिमा का गान करना ही इस काव्य का मुख्य उद्देश्य है। इसमें कवि ने स्पष्ट रूप से श्रीहनुमान को शिवरूप कहा है।

कुमार वाल्मीकि के लगभग समकालीन हैं - बत्तलेश्वर (1500 ई०) और उनकी रामायण है - "बत्तलेश्वर - रामायण", जो षट्पदी छन्द में है। युद्ध में रावण श्रीराम-लक्ष्मण आदि को माया से नाग - पाश में बाँध लेता है, किन्तु श्रीराम से भी "राम" - नाम बड़ा है, अतः श्रीराम - नाम का जप करने वाले श्रीहनुमान जी को वह बाँध न सका। यहाँ भी अहिरावण का प्रसग है। वह श्रीराम - लक्ष्मण को चुराकर पाताल - लंका ले जाता है। तब श्रीहनुमान वहाँ जाकर उस राक्षस को मारकर श्रीराम - लक्ष्मण को उठा लाते हैं।

आधुनिक युग के महान् कवि श्रीकुर्वेपुजी ने अपने "रामायणदर्शनम्" महाकाव्य में श्रीहनुमान का अत्यन्त भव्य चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार श्रीहनुमान नरचेतन एवं नारायणत्व के बीच चित् - सेतुका, प्राण-प्रणाली का निर्माण करने वाले महायोगी हैं। श्रीहनुमान समुद्र लंघन करते समय कुण्डलिनी को जगाकर सहस्रार में पहुँचते हैं। वहाँ से पंचभूत सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन कर जडदेह से केवल चेतन रूप बनते हैं। तब जाम्बवान् श्रीहनुमान से यों कहते हैं-

"निनगलौकिक जन्म गुणमल्लदये,।
योगिनीनम्मासदिंदेयु। तपदिंदे, मेन्॥
ब्रह्मचर्यज महिमेयिंश्ट सिद्धिगल।
निनगिष्ट किंकररला, हनुमंतदेव, नीं॥
ध्यान दिंदिच्छिसिदरावुदागदो निनगे,।
निन्नन्नरिगे, सृष्टि तां दृष्टि सूत्रजमलते॥"

"हे हनुमान! जन्म और गुण से तुम अलौकिक हो, तुम योगी हो, अभ्यास, तप एवं ध्यान से तुम चाहे तो कुछ भी कर सकते हो, तुम्हें और तुम - जैसो के लिये सृष्टि दृष्टिसूत्रजमात्र है।"

कन्नड के महान् लेखक श्री डी०बी० गुण्डप्पाजी ने अपने "वालिगोदु नविके" नामक ग्रन्थ में श्रीहनुमान को भारतीयों का आदर्श गुरू घोषित करते हुए इस प्रकार लिखा है - "जीवनोत्साह, पौरुषप्रकाश, लोकस्नेह, प्रगति, विज्ञान, सौजन्य -ये सभी हमारे तारक मन्त्र हैं। इसका निदर्शन हमें आदिकवि वाल्मीकि ने आंजनेयावतार में दिया है। स्वार्थत्यागपूर्ण स्वामिभक्ति, निरालस पौरुषसंधान, उत्साहपूर्वक लोकधर्म में श्रद्धा - ये तीनों गुण श्रीहनुमान के जीवन में जितने स्पष्ट हैं, उतने अन्यत्र नहीं। इसलिए वे हनुमन्त भारतीयों के गुरु तथा धर्मादिर्श बने।" उन्होंने ठीक ही गया है-

"देखो हनुमान को, धीर गुरू को,।
माँगो उससे पौरुष के वर को॥
एक है पौरुष का हाथ, एक है धर्म के साथ॥
एक पद विज्ञान, एक सौजन्य।
यों विराजित मारुति ही गुरू है हमारा॥
निश्चित हो चल उसके पथ में।
मन में स्थित करो राम को सन्मति से,।
जनम को करने दे सार्थक है हनुमद्गुरु॥"

महामहोपाध्याय श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश के प्रसिद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ "तन्त्रसार' के तृतीय परिच्छेद में श्रीहनुमान का उपासना - विधि (हनुमत्कल्प) तथा श्रीहनुमान की अति गुह्य वीरसाधना - पद्धति की विवृत्ति हुई है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वंगप्रदेश में मध्ययुग में श्रीहनुमदुपासना प्रचलित ी और इसका साधक सम्प्रदाय सक्रिय था। श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश श्रीचैतन्यमहाप्रभु के समकालीन या कुछ परवर्ती सोलहवीं शताब्दी में हुए थे।

"तन्त्रसार" में श्रीहनुमान के विभिन्न मन्त्रो द्वारा विशेष-विशेष रूपो मे विभिन्न प्रकार की पूजा का विधान है। भगवान् इस सम्बन्ध में पार्वतीदेवी से कहते हैं - "हे देवि! अब मैं हनुमत्साधना करूँगा। तुम सावधान होकर सुनो। यह साधना महान् पुण्यप्रद तथा महापातक - नाशक है। यह साधना प्रणाली अति गुह्य और शीघ्र सिद्धि प्रद है। इसी के प्रसाद से अर्जुन त्रिलोक - विजयी हुए थे। मनुष्य के लिये जो शीघ्र सिद्धि प्रद है, उसी साधना - विधि को मै तुमसे कहता हूँ। श्रीहनुमान जी का द्वादशाक्षर मन्त्र है- "हं हनुमते रुद्रात्मकाय हु फट्।' इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना। यह द्वादशाक्षर हनुमन्मन्त्र अति गोपनीय और शीघ्र सिद्धिप्रद हैं। रुद्ररूपी श्रीहनुमान का ध्यान करके इस मन्त्र का जप करना चाहिये। एक लक्ष मन्त्र पूर्ण होने पर श्रीहनुमानजी उस साधक पर प्रसन्न हो जाते हैं। हे देवि! मैंने तुमसे यह सत्य कह दिया।"

"तन्त्रसार" ग्रन्थ में श्रीहनुमानजी की अति गुह्य वीरसाधना-पद्धति वर्णित है। पद्धति के अनुसार साधना करते रहने पर रात्रि के चतुर्थ याम मे श्रीहनुमानजी साधक के सामने उपस्थित होकर महाभय प्रदर्शित करते हैं। यदि इस अवस्था में भी साधक भय और माया का परित्याग कर अविचलित रूप से जप करता रहता है तो वह विद्या, धन, राज्य या शत्रुनिग्रह, जो कुछ भी चाहता है, उसे तत्काल सब प्राप्त होता है और वह धन्य हो जाता है-

"विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्।।"

श्रीगुरू गोविन्दसिंह जी की "गोविन्द-रामायण' में श्रीहनुमानजी के तेज, बल, विक्रम, अमित धैर्य एवं पराक्रम का संक्षेप में ही सही, पर अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है।

जब पक्षिराज जटायु से अपनी प्राणप्रिय सीता के हरण का संवाद प्राप्तकर भगवान श्रीराम अनुज लक्ष्मण के साथ आगे बढ़े, तब उनकी अंजनीनन्दन श्रीहनुमान से भेंट हुई और उनसे मित्रता हो गयी-

'हनुवन्त मारग मो मिले तब मित्रता तासों करी।।'

और फिर श्रीहनुमानजी ने अपनी साथी कपिपति सुग्रीव को लाकर श्रीराम के चरणों पर डाल दिया-

'तिन आन श्री रघुराज के कपिराज पायन डार्यो।'

जनकनन्दिनी सीता का पता लगाने के लिये श्रीराम-सखा सुग्रीव ने अपने बुद्धिमान् और वीर अनुचरों को सर्वत्र भेजा। पवन-पुत्र लंका की ओर भेजे गये। उन्होंने जिस प्रकार सीता का पता लगाकर श्रीराम को सूचना दी, उसका वर्णन श्रीगुरु गोविन्दसिंह जी इस प्रकार करते हैं-

"दल बाँट चार दिशा पठ यो हनुवंत लंक पठै दए।
लै मुद्रिका लँघ बारिधै जहँ सिय हुती तहँ जात मे।।
पुर जारि अच्छ - कुमार छै रन टारि कै फिरि आइयो।
कृत चार जो अमरारि को सब राम बीर जताइयो।।"

"सुग्रीव ने सीता का पता लगाने के लिये अपने वीरों का दल विभक्त कर उन्हें चारों दिशाओं मे भेज दिया और श्रीहनुमान जी को लका की ओर भेजा। श्रीहनुमानजी श्रीराम की अंगूठी लेकर और समुद्र लाँघकर वहाँ पहुँचे, जहाँ सीताजी थी। श्रीहनुमान जी लंकापुरी को जलाकर तथा अक्षकुमार (रावण के पुत्र) को मारकर लौट आये और उन्होंने रावण की पुरी में पहुँचकर जो-जो काम किये थे, वे सब श्रीराम को सुनाये।"

समुद्र पर पुल बाँधा गया और भगवान् श्रीराम की सेना सागर के उस पार लंका में जा पहुँची। यह समाचार सुनकर रावण अत्यन्त कुपित हुआ। उसने अपने दूतों के परामर्श से अपने वीर योद्धा धूम्राक्ष और जम्बुमाली आदि को बुलाकर श्रीराम की सेना को खदेड़ देने के लिए भेजा। असुरों को अपने सम्मुख आते देखकर श्रीहनुमानजी अत्यन्त कुपित हुए-

"रोस कै हनुवंत था पर रोप पाँव प्रहारियं।
जूझ भूम गिर्‌यो बली सुरलोक माँझ विहारियं।।"

"तब श्रीहनुमान ने क्रोध में आकर अपना पैर जमाकर उन्हें मारना प्रारम्भ किया। जो शूर - वीर युद्ध करता हुआ पृथ्वी पर गिरा वह सीधे देवलोक पहुँच गया।"

इस कारण लंकापति रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने श्रीराम की सेना का विनाश करने के लिए विशाल वाहिनी के साथ वीरवर त्रिमुण्ड को भेजा। भयानक युद्ध करने वाला त्रिमुण्ड क्रूरता और क्रोध की मूर्ति था।

"बकै मार मां। तजे बाण धारं।
हनुमतं कोपे। रणं पाँय रोपे।।"

"वह मारो - मारो चिल्लाता हुआ आया और आते ही उसने बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। यह देखकर श्रीहनुमान क्रुद्ध हुए और उन्होंने स्वयं रण मे पैर जमाया।"

"असं छीन लीनो। तिसी कंठ दीनो।
हन्यो षष्ट नैनं - हँसे देवं गैनं।।"

"श्रीहनुमान ने उसकी तलवार छीन ली और उसी के गले में भोंक दी।

त्रिमुण्ड मारा गया। यह देखकर देवगण प्रसन्न हुए।"

रण-भूमि में मेघनाद की शक्ति से सुमित्रानन्दन मूर्च्छित हो गये। उन्हे देखकर प्रभु श्रीराम दुःख से व्याकुल हो उठे। सुग्रीव आदि सभी वीर योद्धा क्रुद्ध होकर एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उस समय-

"हागड़दंग हनुअ कागड़दंग कोपा। बागड़दंग बीरान मों पाँव रोपा।।
सागड़दंग सूरा हागड़दंग हारे। तागड़दंग तै के हनु तऊ पुकारे।।"

"तब श्रीहनुमान ने क्रोधित होकर वीरों में अपना पाँव रोप दिया। (यह प्रसंग उस समय का है, जब श्रीराम ने सुषेण वैध को बुलाया था और उसने आकर संजीवनी - बूटी लाने के लिये कहा था। तब श्रीहनुमान ने सबसे पूछा कि कौन वीर वह बूटी ला सकता है? परन्तु जब सभी वीर चुप रहे, तब हनुमानजी ने क्रोध में भरकर उनकी ओर देखते हुए कहा -

"सागड़ सुनहू रागड़दंग रामं। दागड़दं दीजै पागड़दंग पानं।
पागड़दंग पीठं ठागड़दंग ठोको। हरौ आज पानं सुरं मोहे लोको।।"

"हे श्रीराम। सुनिये आप मुझे पयान की आज्ञा दीजिये। मैं आज देवताओं का पान (पेय) अमृत भी ला सकता हूँ, आप देख लीजिये।"

इस प्रकार के वचन कह पवन-पुत्र श्रीहनुमानजी आकाश में पहुँच गये। श्रीहनुमानजी के आश्वासनमय वचन एवं शौर्य को देखकर श्रीराम की अधीरता कम हुई। और -

'रागड़दंग रामं आगड़दंग आसं। बागड़दंग बैठे नागड़दंग निराशं।।'

"तब श्रीराम को, जो निराश हो बैठे थे, लक्ष्मण के बचने की आशा हो गयी'

इसके अनन्तर महावीर आंजनेय की वीरता एवं पौरुष का संक्षिप्त, किन्तु अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस प्रकार है-

"आगड़दंग आगे कागड़दंग कोऊ।
मागड़दंग मारे सागड़दंग सोऊ।।
नागड़दंग नाको तागड़दंग तालं।
मागड़दंग मारे बागड़दंग विशालं।।"

"उधर श्रीहनुमान के आगे जो कोई विघ्नरूप में आया, वही मार डाला गया। (चलते-चलते जब श्रीहनुमान एक तालाब पर पहुंचे तो वहाँ एक राक्षस मगर के रूप में रहता था। श्रीहनुमान ने उस मगर को मार डाला।"

"आगड़दंग एक्क दागड़दंग दानो।
"चागड़दंग चीरा दागड़दंगदुरानो।।
दागड़दंग देखो बागड़दंग बूटी।
आगड़दंग हैं एक्क ते एक्क जूटी।।

"(इस प्रकार जब श्रीहनुमान बूटी के पास पहुँचे तब) वहाँ जो दानव छिपा बैठा था, उसे चीर डाला। उसके बाद उस बूटी को देखा, परन्तु वहाँ एक-से-एक बूटियाँ आपस में गुँथी पड़ी थी।"

फिर तेजस्वी योद्धा श्रीहनुमान के बल, पौरुष एवं बुद्धि - चातुरी के सम्बन्ध में संकेत करते हुए कथा आगे चलती है-

"चागड़दंग चौंका हागड़दंग हनुमंता।
जागड़दंग जोधा महातेजवंता।।
ऊगड़दंग उखारा पागड़दंग पहारं।
आगड़दंग औषधि को लै सिधारं।।"

"तब श्रीहनुमान चकित हो गये। उन महातेजस्वी योद्धा ने सारा पहाड़ ही उखाड़ लिया और इस प्रकार औषधि लेकर वे लौट पड़े।"

श्रीराम के प्राणप्रिय अनुज की प्राण-रक्षा हुई। उनकी व्याकुलता दूर हुई और श्रीराम सैन्य में उत्साह एवं उल्लास की लहर दौड़ गयी।

"आगड़दंग आए जहाँ राम खेतं।
बागड़दंग बीरं जहां ते अचेतं।।
बागड़दंग विशल्या मागड़दंग मुख्यं।
दागड़दंग डारी सागड़दंग सुख्यं।।"

"बूटी लेकर महावीर श्रीहनुमान वहाँ आ पहुँचे, जहाँ रण-क्षेत्र में श्रीराम बैठे थे और जहाँ लक्ष्मण अचेत पड़े थे। वह विशल्यकरणी बूटी लक्ष्मण के मुख में डाली गयी। उसी समय वे सुखी हो गये (अर्थात् जीवित हो गये)।

लंकाधिपति रावण श्रीहनुमानजी से अत्यन्त भयभीत रहता था। युद्ध-क्षेत्र मे जब उसकी दृष्टि श्रीरामदूत श्रीहनुमान पर पड़ती तो उसका उत्साह शिथिल पड जाता था।

'पँचएँ हनुमंत लख दुतमंतं सुबल दुरंतं तजि कलिनं।'

"रावण अपने पाँचवें मुँह से द्युतिमान् और बलशाली श्रीहनुमान महावीर को देखकर शान्ति या धैर्य छोड़ रहा था।"

लंकाधीश रावण ने भगवान् श्रीराम के पवित्रतम शरसे उनके दुर्लभ धाम के लिये प्रयाण किया, तब प्रभु ने अपनी प्राणप्रिया सीता को ले आने के लिये विभीषण के साथ वीरवर हनुमान को भेजा। प्रसन्न आंजनेय तुरन्त जनकनन्दिनी के समीप पहुँचे।

> "पर्‌यो जाइ पायं। सुनो सीय मायं।
> रिपं राम मारे। खरो तोहि द्वारे।।
> चलो वेगि सीता। जहाँ राम जीता।।
> सबै शत्रु मारे। भुवं भार तारे।।
> चली मोद कै कै। हनू संग लै कै।।"

"श्रीहनुमानजी ने सीता के चरणों मे प्रणाम कर कहा है - माता! शत्रु (रावण) को श्रीराम ने मार डाला। वे आपको ले जाने के लिये आपके द्वारा पर आकर खड़े हैं। हे माता (सीता) वहाँ शीघ्र चलो, जहाँ श्रीराम ने युद्ध जीता है और सभी शत्रुओं को मारकर पृथ्वी का भार उतारा है।

"श्रीसीताजी मुदित होकर हनुमानजी के साथ चल पड़ी।"

"गोविन्द-रामायण" में लव-कुश के साथ युद्ध के प्रसंग में भी सेनाओं के साथ महावीर श्रीहनुमान का उल्लेख है।

श्रीरामकृष्ण साधनकाल के प्रथम चार वर्ष (1857 - 60ई०) में जगदम्बा का दर्शनमात्र करके निश्चेष्ट नहीं हुए, अपितु भावमयी श्रीकालीजी का दर्शन प्राप्त करने के बाद अपने कुलदेवता श्रीरघुनाथजी की ओर उनका मन आकर्षित हुआ। श्रीहनुमानजी की - सी अनन्य भक्ति से ही श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन सम्भव है - यह जानकर दास्य - भक्ति में सिद्धि प्राप्त करने के लिये उन्होंने अपने मे श्री महावीरजी का भावारोप करके कुछ समय के लिये साधना प्रारम्भ कर दी।

निरन्तर श्रीहनुमान जी का चिन्तन करते-करते वे इतने अधिक तन्मय हो गये कि कुछ समय के लिये अपने पृथक् अस्तित्व की बात पूर्णतया भूल ही गये। इस विषय में उन्होंने स्वयं अपने शिष्यों से कहा था - "उस समय आहार - विहार आदि सब कार्य श्रीहनुमानजी के समान किये जाते थे। उन्हे मैं जानबूझकर करता था - ऐसी बात नहीं थी, प्रत्युत वे स्वयं अपने आप होते थे पहनने के कपड़े को पूँछ के समान बाँधकर कमर को कस लेता था, कूदता हुआ चलता था, फल - मूल आदि के सिवा और कुछ नहीं खाता था, उनका छिलका निकालकर नहीं फेंकता था, अधिक समय वृक्ष के ऊपर ही व्यतीत होता था तथा निरन्तर "रघुवीर रघुवी" कहकर गम्भीर स्वर में चीत्कार

करता था। उस समय दोनों नेत्रों में चंचलता आ गयी थी और आश्चर्य की बात है कि मेरूदण्ड का अन्तिम भाग लगभग एक इंच बढ़ गया था।" "श्री रामकृष्ण - लीला प्रसंग" नामक ग्रन्थ के रचयिता स्वामी शारदानन्दजी ने लिखा है कि उपर्युक्त बात सुनकर हमने पूछा था कि "महाशय! क्या आपके शरीर का वह अंग अब भी वैसा ही है?" उन्होंने उत्तर में कहा था - "नहीं, मन के ऊपर से उस भाव का प्रभुत्व निवृत्त हो जाने पर उसने धीरे-धीरे पहले के समान स्वाभाविक आकार धारण कर लिया है।"

गोस्वामी तुलसीदास ने श्री हनुमान जी की स्तुति करते हुये निम्नलिखित श्लोक लिखा है:-

"अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यं।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि।।"

अर्थात् अतुल बल के स्थान, सोने के पर्वत के समान कान्ति और शोभायुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन के लिये अग्निरूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य (श्रेष्ठ, प्रधान, शिरोमणि) समस्त गुणों के खजाना व समुद्र, वानरों के स्वामी, श्रीरघुनाथ जी के श्रेष्ठ दूत पवन के पुत्र को मैं प्रणाम करता हूँ।

गोस्वामी तुलसीदास ने हनुमान जी को अतुलनीय बल का धाम बताया है। उन्होंने उनके सम्बन्ध में "पवन तनय बल पवन समाना", "रामकाज सब करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान" तथा "अतुलित बल अतुलित प्रभुताई' कहकर उनके अतुनलीय बल का वर्णन किया है। श्री हनुमान जी को स्वर्णशैलाभदेह अर्थात् सोने के पर्वत की कान्ति वाला बताया है। गोस्वामी जी ने "कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति रनधीरा' कहा। श्री हनुमान जी दैत्य रूपी बनके अक्षादि का वध किया तथा लंका दहन भी किया। वह समस्त गुणों के निधान हैं। सीता जी ने उन्हें आर्शीवाद दिया था कि "अजर अमर गुननिधि सुत होऊं"। वह वानरों के स्वामी हैं।

"अतुलितबलधामम्' से जनाया कि इस काण्ड में बल और बुद्धि के ऐसे-ऐसे चरित करेंगे कि जिनकी तुलना का अन्यत्र कोई न मिलेगा। "स्वर्णशैलाभदेहम्" से जनाया कि ऐसी भयंकर तप्तकांचन समान देह धारण करेंगे। यह उनका स्वाभाविक रूप नहीं है। यथा - "रामकाज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयऊ पर्वताकारा। कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा। अथवा, "अतुलित बलधामम्" के पश्चात् "स्वर्णशैलाभदेहम्" कहने का भाव है कि श्री हनुमान जी में जैसा अतुल बल है वैसा ही उनका अतुल शरीर है तथा सोना अग्नि में नहीं जलता और न विकार को प्राप्त होता है। यथा - "कनकहु पुनि पषान ते होई। जारेहू सहजु न परिहर सोई। कनकहु बान

चढ़ ई जिमि दाहे इससे जनाया कि इसी प्रकार ये सब लंका को जलावेंगे पर स्वयं नहीं जलेंगे। वरंच इनकी कान्ति बढ़ जायेगी। पुनः, जानकीजी इनको यह वर देंगी कि "अजर अमर गुननिधि सुत होहू"। अजर का एक अर्थ यह भी है कि जो जल न सके।

"स्वर्णशैलाभदेहम्' के बाद "दनुजवनकृशानुम्" कहने का भाव कि सोने के रंग के समान ही अग्नि का भी रंग होता है। अग्नि वन को जलाती है। ये राक्षसरूपी वन को जलावेंगे। इस विशेषण से इनमें वैरभाव एवं अज्ञान का होना सम्भावित होता है, अतः "ज्ञानिनामग्रगण्यम्" कहा गया। फिर "सकलगुणनिधानम्" कहकर जनाया कि ये केवल विज्ञानी ही नहीं है वरन् ये सर्वगुणसम्पन्न हैं। तात्पर्य यह कि वानरों में गुण नहीं होते। पर ये सब गुणो से युक्त हैं। इसी से "वानराणामधीशम्' कहा "रघुपतिवरदूतम्" कहकर शीघ्रगामी भी जनाया। इनकी उत्पत्ति भी शीघ्र गमन करने वाले से है। यह व्यक्त करने के लिये "वातजातम्' कहा। "नमामि" से मनोरथ की सिद्धि चाहते हैं। इस काण्ड के प्रधान देवता (चरितनायक) ये ही हैं। अतएव इनकी वन्दना करके काण्ड की सिद्धि चाहते हैं।

"वातजातम्" नाम के और भाव ये हैं कि "वात" (पवनदेव) का बल अप्रमेय है। इसी से तो वे "प्रभंजन" कहलाते हैं। वे अजेय हैं, बड़े शीघ्रगामी है, सबके शरीर में प्राणरूप से रहते हैं। वैसे ही हनुमानजी अतुलित बलधाम हैं, अजेय हैं, अत्यन्त शीघ्रगामी हैं, मनोवेगवान् हैं, सबके प्राणों के रक्षक है एव पिता के भी रक्षक हैं। यथा "पवनतनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विज्ञान निधाना' "जीति न जाइ प्रभंजन जाया" "जारा नगर निमिष एक माहीं। लक्षाणां षष्टिरास्ते दुहिणगिरिरितो योजनानां हनूमांस्तैलाग्रैः सर्षपस्य स्फुटनरवपरस्तत्र गत्वाऽत्र चैमि। "राखे सकल कपिन्ह के प्राना" तथा "त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवितानि वनौकसाम्" अर्थात् सब वानरों का जीवन तुम्हारे अधीन हैं। इन्होंने पवनदेवही को नहीं किन्तु समस्त लोकपालो को रावण के बंदीखाने से छुड़ाया है। यथा - "देव बंदीछोर रनरोर केसरीकिसोर"। पवनदेव स्वयं रावण से भयभीत रहते थे। यथा कवित्तरामायणे- "समय पुराने पात झरत डरत वात"। रावण से पिता की रक्षा करके सुपूत पुत्र हुए। अतः "वातजातम्" युक्तियुक्त ही हैं। पुनः, बिना आधार के ही समुद्र पार करने से ही "वातजातम्" कहा।

महादेवदत्त जी कहते हैं कि (क) "वातजात" नाम से वन्दना करके कवि ने "भक्तिव्य" सूचित किया है। यथा - "जात पवनसुत देवन्ह देखा" "तरकेउ बल भारी 'साहि भारी मारुतसुत बीरा च पिता के तुल्य पुत्र

थे, प्रायः दबे और लचीले होते थे। इनका पता भी वैज्ञानिको को इसलिये म इला कि इनकी ठठरियाँ मिलती है। परन्तु जिन प्राणियो के शरीर में दृढ़ और ठोस ठठरियाँ न थी उनका पता कैसे लग सकता है? उस समय के प्राणियो के लिये अनुमान मात्र किया जाता है। जब दो लाख वर्ष पूर्व ऐसे विचित्र शरीरधारी प्राणी थे तो 15, 16 लाख वर्ष पूर्व तो इससे भी अधिक और अद्भुत विशालकाय प्राणी हो सकते हैं। इसके सिवा यह भी सम्भव है कि जैसे दो लाख वर्ष पूर्व के दानवाकार प्राणियों का बहुत कम चिह्न बाकी रह गया है और उनकी जाति का तो नाश हो चुका है, वैसे ही 15-16 लाख वर्ष पूर्व के राक्षसों असुरों वानरों, किन्नरों आदि प्राणियो की जातियाँ भी कभी भी उच्छिन्न हो चुकी होंगी और उनका अब कोई चिह्न नहीं मिल सकता। कथा के इतने पुरानेपन पर विचार करने से वैज्ञानिक दृष्टि से तो रामायण का कोई पात्र या उसकी क्रिया अस्वाभाविक या अनहोनी नहीं समझी जा सकती। इसलिए हम तो मानते हैं कि मनुष्यों का माँस खाने वाले भीमकाय राक्षस, मनुष्यो के बराबर की संस्कृति और विकास रखने वाले और उसी तरह का आचरण करने वाले, बिना अग्नि से पकाये हुए फल- शाकाहारी विशालकाय वानर-जाति के प्राणी और उसी तरह के भालू उस समय इस धरती पर रहते थे। यह लोग मनुष्यों से बराबरी का सम्बन्ध रखते थे, वैसी ही भाषा बोलते थे और अच्छे आचरण रखते थे। वानर और भालू जाति के विकास की वह चरम सीमा थे। उनकी जाति में उससे अधिक विकास नहीं हो सकता था। इसलिए यह जातियाँ लाख दो लाख वर्ष में बिल्कुल नष्ट हो गयी और उनके अत्यन्त पूर्व के रूप में के लोग पशुरूप में अर्थात् वर्तमान वानर-भालू के रूप में रह गये है। उसी तरह राक्षसों की जाति भी रावण के साथ-साथ अपने विकास और उन्नति की चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। इसीलिए वह भी रावण के बाद लाख दो लाख वर्ष के आगे ठहर न सकीं, उच्छिन्न हो गयी। महाभारत के हिडिम्ब आदि राक्षस इस जाति के अवशेष मात्र हैं। रामायण में जहाँ राक्षसो की असंख्य सेना है वहाँ महाभारत में अकेला घटोत्कच है। वर्तमान समय मे राक्षस जाति का बिल्कुल उच्छेद हो चुका है। मनुजादों की जो जातियाँ इधर-उधर पायी जाती हैं वह उनके अत्यन्त अविकसित पूर्व रूप से बची-खुची है। जो लोग रामायण की घटनाओं को पाँच - सात हजार वर्षों के भीतर की मानते हैं उन्हें हनुमानजी को वानर और राक्षसादि को मनुष्य जाति के अतिरिक्त प्राणी मानने में संकोच होता है और होना ही चाहिए, क्योंकि 517 हजार वर्ष के भीतर ऐसे प्राणियों का अत्यन्ताभाव नहीं तो अभाव अवश्य ही समझना चाहिए। परन्तु हम यह क्यों मान लें कि रामायण की कथा केवल

517 हजार वर्षों की है? हमें ऐसा कोई विशेष कारण देखने में नहीं आता कि हम उन पश्चिमी लोगों से अपने यहां के इतिहास के मामले में समय के विषय में अवश्य ही सहमत हो जायँ तो हमारी प्राचीनता को घटाने के निरन्तर प्रयत्न में लगे रहा करते हैं। सच्चा विज्ञान इस प्रयत्न का बराबर विरोध करता रहा है। मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं हूँ कि हनुमान जी कोई द्रविड़-देशीय मनुष्य थे, यद्यपि मैं पार्जिटर की बहुत सी कल्पनाओं का आदर करता हूँ जिन प्राणियों का शरीर बहुत तरल पदार्थों का बना हुआ होता है वह अपने शरीर को संकोच और प्रसार से सहज में छोटा और बड़ा कर सकते है। शरीर का पदार्थ जितना ही तरल होगा उतनी ही इस बात में आसानी होगी। वायु का संकोच इतना हो सकता है कि उसका बना पिण्ड लाखों गुना छोटा हो जाय और इतना फैलाव हो सकता है कि लाखों गुना बड़ा हो जाय। आपका प्रभाव वायु पर सभी जानते हैं। प्राचीन काल के व्यालों का शरीर अत्यन्त तरल पदार्थों का बना होता था। सुरसा व्यालों की माता थी। उसका शरीर भी इसी तरह का बना हुआ ता। इसीलिए बिना अणिमा और महिमा सिद्धि के ही वह अपने अंगों को अत्यंत अधिक फैला और सिकोड़ सकती थी।

जिस प्रकार श्री हनुमानजी समुद्रलंघन से नभ, जल और थल की निवासिनी तीन स्त्रियो को जीतकर ही लंका में प्रवेश कर श्रीसीताजी की खोज मे प्रवृत्त हुए उसी प्रकार 'परमार्थ' पक्ष में प्रबल वैराग्यवान् होकर पहले रसना को जीतना चाहिए रसना के देवता जलाधिपति वरुण हैं, इससे इसका जीतना समुद्रलंघन के समान है रसना ही आहार देकर सब इन्द्रियों के सहित देह से प्रमाद कराती है, इसके जीतने के साथ-हीसाथ देहाभिमान भी जाता रहता है। देहाभिमान को सागर कहा भी है, यथा - "कुलप अभिमान सागर सभयंकर घोर .....प्रबल वैराग्य दारून प्रभंजन तनय....'। रसना जीतने में तीनों गुणों के सम्बन्धी तीन प्रकार के आहार कहे गये हैं। देहाभिमान जीतने वाले विरक्त को प्रथम रामनामांकित मुद्रिका रूप राममन्त्रोपदेश रामरूप गुरू से प्राप्त करना चाहिए। जैसे श्रीहनुमानजी को मुद्रिकांकित रामनाम के अर्थ रूप सातों काण्ड के रचित चन्द्रमा मुनि और जाम्बवान द्वारा प्राप्त हुए, वैसे ही मुमुक्षु भी गुरूमुख से मन्त्रार्थ श्रवण करे। जैसे उसके बाद वे समुद्रलंघन में तत्पर हुए वैसे ही यह भी देहाभिमान जीतने में लगे। जैसे वहाँ उन्हें सुरसा मिली वैसे ही इसे विद्यारूपी सात्विक की माया का सामना करना पड़ता है। सात्विक आहार सहित इसे विद्या पढ़ना एवं सत्संग करना चाहिये। जिस प्रकार सुरसा का मुँह बढ़ने लगता है उसी प्रकार इसे भी विद्या की अपेक्षा बढ़ती जाती है। जैसे सुरसा का मुख सौ योजन का हो गया, वैसे ही विद्या का भी विस्तार अनन्त है।

यह दीनतारूपी लघुरूप से विद्या के हृदय का तत्व ब्रह्मविद्या को जान उससे पृथक हो जाय और साधन के लिये उद्यत हो, तब वह विद्या सुरसा की तरह आशिष देती है। फिर तमोगुणी माया का सामना करना पड़ता है। जल मे सिंहिका रहती थी, उसने श्रीहनुमानजी की छाया को खींचकर इनका गतिरोध किया। वैसे तामसांकार से शब्द शब्दादि विषय होते हैं, वे खार जल रूप है, यथा "विषय बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।" विषय सम्बन्ध से रागद्वेष आदि मुमुक्षु का गतिरोध करते हैं। अतः यह उन्हें नाश ही करने का प्रयत्न करें, आगे मुमुक्षु को रजोगुणी मायारूपी लंकिनी मिलेगी। इसका विकार देह पोषण करना है। इसे प्रथम व्रतोपवास आदि से वश में करें, जिस प्रकार एक मुष्टिका मारकर श्री हनुमानजी ने लंकिनी को अधीन किया। तब लंकिनी राम-कार्य में सहायक हुई वैसे ही स्वाधीन इन्द्रियो के साथ देह भी परमार्थ - साधन मे सहायक होती है।

पवनकुमार का सर्वोच्च आदर्श था- सच्चे अर्थ में सेवक बनाना और उसी आदर्श के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व श्रीराम के चरणों में समर्पित कर दिया। लंकाधिपति रावण द्वारा अपहृत श्री जानकी जी को पुनः प्राप्त करने में उन्होने अपने बहुविध गुणों का जो परिचय दिया, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए स्वयं श्रीराम ने कहा - "तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई।"

श्री हनुमानजी नवधा भक्ति के प्रकार में सातवीं दास्य भक्ति के आचार्य माने जाते हैं। स्वामी का आज्ञा पालन ही सेवक का परम धर्म है। वैसे तो हनुमान जी अवध की बाल लीला से ही भगवान श्रीराम के सच्चे सेवक थे, किन्तु उनका विशेष परिचय हमें तब मिलता है, जब श्री सीता जी के वियोग मे भगवान श्रीराम और लक्ष्मण ऋष्यमूकपर्वत के निकट आते हैं। इधर अपने भाई बाली के भय के कारण सुग्रीव पर्वत के ऊपर अपने अनुचरों के साथ निवास करते थे। उन्होंने इन अज्ञात वीर पुरुषो को पहचानने के लिये हनुमानजी को भेजा और वे ब्राह्मण वटु का रूप बनाकर वहाँ गये भी - "विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।"

श्रीराम - लक्ष्मण के श्याम - गौर शरीर, मनोहर मुखाकृति और सौम्य स्वरूप से प्रभावित होकर श्रीमहावीर ने श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया और उनका परिचय पूछा। अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए श्रीराम ने कहा - "हम दोनो भाइ अवध - नरेश श्रीदशरथजी के पुत्र हैं। मेरा नाम राम है और मेरे अनुज लक्ष्मण हैं। सीता देवी के साथ हम लोग वन में आये थे, दुर्भाग्य वश कोई राक्षस जनक- नन्दनी का अपहरण कर लिया। उसी की खोज में हम दोनों वन-वन में फिर रहे हैं।

इस वचनों को सुनकर श्रीहनुमानजी की जो दशा हुई, उसका वर्णन जड़ लेखनी कैसे कर सकती है? माता अन्जना देवी के मुख से उन्होंने श्रीराम का वर्णन सुना था और उसी सीता - हरण के प्रसंग की मानो यहाँ पुनरावृत्ति हो रही थी। श्री शंकरजी ने जिनके बाल स्वरूप का दर्शन भी करा दिया था, उन्ही प्रभु श्रीराम को आज किशोरावस्था में सम्मुख खड़े देखकर श्री हनुमान के नेत्रो से प्रेमाश्रु बहने लगे। अपने आराध्यदेव के दर्शन करके वे अपना वास्तविक रूप छिपा न सके। प्रभु-चरणों को पाकर भला बाह्यडम्बर कहाँ तक टिक सकता है? उन्होंने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया और श्रीराम के चरणों में दण्डवत प्रणाम किया। बाल सखा एवं अनन्य भक्त को भगवान ने अपने हृदय से लगा लिया। भक्त और भगवान के इस मिलन का भला कौन वर्णन कर सकता है?

फिर क्या था? सुग्रीव के साथ मैत्री हुई और बाली का वध हुआ तथा श्रीसीताजी की खोज के लिए श्री हनुमानजी का वरण हुआ। समुद्रोल्लंघनकर वे लंका पहुँचे और श्रीसीताजी को मुद्रिका प्रदान कर वापस लौटे।

स्वामी की आज्ञा का पालन ही सेवक का एकमात्र धर्म होता है। लंका-प्रवेश, लक्ष्मण-मूर्छा, रावण-बध और उसके बाद अयोध्या - लीला में भी हमे श्री महावीर की अनन्य भक्ति का दर्शन होता है। ऐसा भक्त तो स्वयं भगवान को भी सुखदायी होता है। यही कारण है कि आज भी श्री राम पंचायतन मे श्री महावीर के दर्शन करते हैं। इतना ही नहीं, हमें गाँव-गाँव में छोटे - मोटे रूप में प्रतिष्ठित श्रीहनुमान जी के दर्शन होते हैं।

जगजननी श्रीसीताजी के त्याग के पश्चात् भगवान श्री राम कुछ उदास एव एकान्तप्रिय बन गये थे। स्वामी की उदासीनता भला श्रीहनुमान जैसे एकनिष्ठ सत कैसे सहन कर सकते थे। अतः श्रीपवनकुमार प्रभु सेवा से अवकाश पाकर एक समीपस्थ पर्वत के ऊपर बैठकर श्रीराम स्मरण करने लगे। बाललीला से लेकर उस समय तक की सभी लीलाएं वे स्फटिक शिलाओं के ऊपर अपने वज्रनख से देववाणी में काव्यबद्ध करते हुए उत्कीर्ण करने लगे। थोड़े समय मे सम्पूर्ण श्रीरामचरितमय महाकाव्य तैयार हो गया।

जब इस बात की सूचना महर्षि वाल्मीकिजी को लगी, तब वे इस पर्वत पर पधारे। श्रीमहावीर ने महर्षि को नमस्कार करके उनके सामने अपनी रचना रख दी, जिसे देखकर वे मुग्ध हो गये, साथ ही साथ उनके हृदय में यह भी विचार आया कि "यदि यह श्रीरामचरित्र लोकप्रसिद्ध हो जायेगा तो फिर मेरी रामायण को देखना भी नहीं चाहेगा। मेरी कृति इस महाचरित के आगे फीकी

पड जायेगी।" इसी विचार-सागर में महर्षि डूबने- उतराने लगे।

"पूज्यवर! अकस्मात् श्रीमारूति की आवाज सुनकर महर्षि जाग उठे। महावीर ने प्रश्न किया - "आप उदास क्यों हो गये? क्या मेरी रचना मे कोई भूल रह गयी है?"

"नहीं, नहीं वत्स!" वाल्मीकिजी बोले - "आपकी रचना अत्यन्त उच्च कोटि की है, इसमें तो कोई संदेह ही नहीं है, किन्तु.....।"

"आप शीघ्र कहिये, महर्षि जी।" श्रीहनुमान के स्वर में पूज्य - भावना और अपनी भूल सुधारने की तत्परता थी।

"आप प्रथम मुझे वचन दीजिए फिर मैं कहूँगा श्री वाल्मीकिजी बोले - "आप इसे वरदान भी कह सकते हैं।"

"मैं तो आपका तुच्छ दास हूँ।" महावीर ने कहा - "आप आज्ञा दीजिये, मैं उसका अवश्य पालन करूँगा।"

"महाबली!" वाल्मीकि बोले - "आपके रामचरित का विश्व में प्रचार होने के पश्चात् मेरी रामायण को कोई भी नहीं पूछेगा।"

"समझ गया, ऋषिवर।" महोदार चरित्रवान् महावीर ने हँसते हुए कहा- "इतनी छोटी सी बात को आपने इतना महत्व दिया। आप शीघ्र ही मेरे साथ पाधारिये। इन उत्कीर्ण - शिलाओं को भी मैं अपने साथ लिये लेता हूँ।" यह कहकर अपने एक कंधे पर महर्षि को तथा दूसरे पर इन सभी शिलाओं को लेकर पवन कुमार समुद्र तट पर पहुँचे और मध्य समुद्र में जाकर महर्षि के देखते-देखते उन सभी शिलाओं को "श्रीरामार्पणमस्तु" कहकर उन्होने समुद्र मे फेक दिया। पलक मारते-मारते यह सब हो गया, जो वाल्मीकी जी की कल्पना मे भी न था। बड़ा पाश्चाताप हुआ ऋषिवर को। उन्हें लगा कि इन शिलाओं के बदले यदि कपिराज ने मुझे फेंक दिया होता तो उत्तम होता। मैंने परमत्यागी महावीर जी के साथ बड़ा ही अन्याय कर दिया। किन्तु "समय चूकि पुनि का पछितानि"। अपने स्थान पर आकर श्रीहनुमान ने महर्षि के चरणों में प्रणाम किया और कहा" यह कार्य तो मैंने यों ही समय - यापन के लिये किया था - "येन केन प्रकारेण रामे बुद्धि निवेशयेत्" इसके सिवा इसमें मेरा अन्य कोई उद्‌देश्य नहीं था।"

महामना मारूति के हृदय में न दुःख था न पश्चाताप। महान परिश्रम से और जीवन के विप्रयोग के अमूल्य अवसर में की हुई रचना को उन्होंने महर्षि के संतोष के लिए समुद्र को अपर्ण कर दिया।

"धन्य श्रीराम के अनन्य सेवक, धन्य जितेन्द्रिय, धन्य पवन कुमार।" महर्षि वाल्मीकि को आज समग्र शब्दकोश के विशेषण अल्प मालूम होते थे। उनके नेत्रों से अविच्छिन्न अश्रुप्रवाह बह रहा था। वे बोले - "आपका तो समग्र जीवन ही भगवान् श्रीराम की यशोगाथा रूप ही है। महावीर आप अमर हैं। मैं आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपके संतोष एवं तृप्ति के लिये मैं दूसरा जन्म धारण कर आपका ही अनन्य उपासक "तुलसी" बनकर आपके ही अनुग्रह से इस "महानाटक" ग्रन्थ के आधार पर सर्वजनहिताय "रामचरितमानस" नामक अपूर्व ग्रन्थ की रचना करूंगा और अपने उस जीवन - पर्यन्त आपका उपासक बना रहूँगा। इस प्रकार कहकर श्रीवाल्मीकिजी अपने आश्रम को पधारे।

श्रीहनुमान जैसे "अतुलितबलधाम' हैं, वैसे ही वे ज्ञान के भी साक्षात् स्वरूप हैं। श्रीराम के मिलन- प्रसंग के समय श्री हनुमानजी के गुणों का परिचय कराते हुए स्वयं श्रीरामजी लक्ष्मण से कहते हैं कि "श्रीहनुमानजी "त्रयी" के ज्ञाता और सम्पूर्ण व्याकरण को जानने वाले हैं।"

आध्यात्मिक ज्ञान के तो वे मूर्तिमान स्वरूप ही थे। अन्य रामायणों से ज्ञात होता है कि ऋषियों की विशाल सभा में उन्होंने ब्रह्मज्ञान का उपदेश भी दिया था। उनका ज्ञान केवल मौखिक आडम्बर मात्र नहीं था, वह आचरण द्वारा भी प्रत्यक्ष होता था। एक बार का प्रसंग है कि जब श्रीयुगल - सरकार ने अपने भवन में विनोदार्थ उनसे प्रश्न किया - "कस्त्वम्? - तुम कौन हो?" तुरन्त ही हनुमानजी ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया -

"देह दृष्ट्या तु दासोऽस्मिजीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥"

"प्रभो! देहदृष्टि से तो मैं आपका दास हूँ, जीवदृष्टि के विचार से आपका अंश हूँ और तत्वदृष्टि से देखने पर वस्तुतः जो आप हैं, वहीं मैं हूँ - ऐसी मेरी निश्चित धारणा है।"

श्रीहनुमानजी में लेशमात्र भी अभिमान नहीं था। निरभिमानित्व भक्ति के मार्ग में भूषणस्वरूप है - "भक्तानां दैन्यमेवोक्तं हरितोषण कारणम्। - भक्तो की दीनता ही भगवत्संतोष का कारण कही गयी है।" लंका दहन के पश्चात् वहाँ से वापस आने पर श्रीराम के पवनकुमार की प्रशंसा करते हुए उनसे पूछा -

"कहु कपि रावण पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका।
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥"

भला अपने स्वामी द्वारा की हुई प्रशंसा सेवक श्रीमारुति को

कैसे अच्छी लगती? अपनी प्रशंसा का श्रवण ही तो अभिमान उत्पन्न करा देता है। अतः हनुमानजी ने उत्तर दिया -

"सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।"

यदि यहाँ कोई स्वार्थी सेवक होता तो वह स्वयं भी उसी के साथ - साथ अपनी प्रशंसा के गीत गाने लगता। किन्तु श्रीहनुमानजी तो जानते ही थे कि - "इन्द्रोऽपिलघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः" स्वयं (प्रशंसा सुनने से या) अपने ही मुख से अपनी प्रशंसा करने से तो स्वर्गाधिपति इन्द्र भी लघुता को प्राप्त हो जाते हैं। अतः वे बोले - "ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।

"तव प्रभावँ बड़वानलहि जाहि सकई खलु तूल।।"

जिस बड़भागी भक्त के ऊपर भगवान की कृपा होती है, उसे वे अपने सद्‌गुणों का दान देते हैं। भगवान श्रीराम चतुरशिरोमणि है तो उनके अनन्य भक्त श्रीमहावीरजी भी चतुरशिरोमणि क्यों न हो? ऐसी कथा प्रचलित है कि एक समय कपिवर श्रीहनुमान की प्रशंसा के आनन्द में निमग्न श्रीरामजी ने सीताजी से कहा - "महादेवी! लंका - विजय में यदि मारूति का सहयोग न प्राप्त हुआ होता तो आज भी मैं सीता- वियोगी ही बना रहता।"

"आर्यपुत्र! श्रीसीताजी ने प्रश्न किया - "आप बार-बार कपिवर हनुमान की प्रशंसा करते रहते हैं" - कभी उनके बल - शौर्य की, कभी उनके ज्ञान की, कभी उनके चातुर्य की, अतः आज आप एक ऐसा प्रसंग सुनाइये, जिसमें उनका चातुर्य लंका - विजय में विशेष सहायभूत रहा हो।"

"ठीक याद दिलाया तुमने।" श्रीराम बोले - वैसे तो युद्ध से रावण थक चुका था। अनेक असुरों का श्रीहनुमानजी द्वारा बध भी हो चुका था। अब युद्ध मे विजय प्राप्त करने का उसने अन्तिम उपाय सोचा। यह था - देवी को प्रसन्न करने के निमित्त सम्पुटित मन्त्र द्वारा चण्डी महायज्ञ। अब यज्ञ प्रारम्भ हो गया किन्तु हमारे चतुरशिरोमणि मारूति के मन में चैन कहाँ? यदि यज्ञ पूर्ण हो जाता और रावण को देवी का वरदान मिल जाता तो उसकी विजय निश्चित थी। बस, तुरन्त कपिवर ने ब्राह्मण का रूप धारण करके रावण के यज्ञ मे सम्मिलित ब्राह्मणों की सेवा करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी निःस्वार्थ सेवा देखकर ब्राह्मणों ने कहा "विप्रवर! आपकी इस सेवा से हम संतुष्ट हैं। आप इम लोगों से कोई वरदान माँग लें।"

"पहले तो महावीर ने कुछ भी माँगने से इन्कार कर दिया, किन्तु सेवा से संतुष्ट ब्राह्मणों का आग्रह देखकर उन्होंने एक वरदान माँग लिया।"

"वरदान में क्या माँगा महावीर ने?" सीताजी के प्रश्न में उत्सुकता थी,- शीघ्र बतलाइये, नाथ।" "उनकी उसी वर - याचना में ही तो चातुर्य है कपिराज का।" श्री राम बोले - "जिस मन्त्र के सम्पुटीकरण से हवन किया जा रहा था, उसी मन्त्र के एक अक्षर का परिवर्तन महावीर ने वरदान में माँग लिया अ।र बेचारे भोले ब्राह्मणों ने "तथास्तु" कह दिया। उसी के कारण मन्त्र मे अर्थान्तर हो गया, जिससे रावण का घोर विनाश हुआ।"

"एक ही अक्षर में इतना अर्थ - परिवर्तन?' सीताजी ने प्रश्न किया - "कौन सा मन्त्र था वह?"

श्रीराम ने उत्तर दिया - "वह मन्त्र इस प्रकार है-

"जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते।।"

"इस श्लोक में "भूतार्तिहारिणि" में "हा" के स्थान पर "क" उच्चारण करने का श्रीहनुमानजी ने वर मांगा। ब्राह्मण ने वैसा ही किया। "भूतार्तिहारिणि का अर्थ है - "सम्पूर्ण प्राणियों की पीड़ा हरने वाली" और "भूतार्तिकारिणि" का अर्थ है - प्राणियों को पीड़ित करने वाली।" इस प्रकार एक अक्षर के विपर्ययसे रावण का सर्वस्य नाश हो गया।

"रावण को यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद जब यह ज्ञात हुआ तो उसने अपने दसों मुखों से श्रीहनुमानजी की प्रशंसा की।

हनुमान अपने युग के विद्वानों के शिरोमणियों में से एक थे। सम्पूर्ण ऋग्वेद के ज्ञान - विज्ञान पर उनका पूर्ण अधिकार था। यजुर्वेद के कर्म - विज्ञान के दुरूह रहस्यों के पूर्ण ज्ञाता थे। सामवेद के उपासना - विज्ञान के एक तत्वज्ञ मनीषी थे। चारों वेदों के ज्ञान, कर्म और उपासना के तीनों धर्ममार्गों के वेत्ता हनुमान जितने विद्वान थे, उतने ही आचरण सम्पन्न भी थे। उनकी विद्वता उनके सम्पूर्ण आचरण में उतरी हुई थी। उनकी कथनी और करनी मे कोई अन्तर नहीं था। वे कोरे उपदेशक ही नहीं थे, बल्कि उनका सारा सदाचार उनके नित्य के कार्यों में प्रतिबिम्बित होता था। वे संसार भर के ज्ञान, वीर्य पोषण और कर्म बल का प्रतिनिधित्व एक साथ करते थे और उनका सारा धर्माचरण उनके कार्यों में प्रविष्ट था। ऐसे ही धर्म - धुरंधरों के लिये तो तुलसीदासजी ने ये शब्द कहे हैं - "जे आचरहिं ते नर न घनेरे" भगवान श्री राम से हनुमान जब पहले पहल मिले, तब उनकी बातचीत से भगवान अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने लक्ष्मण से उनकी भूरि - भूरि सराहना की। हनुमान की विद्वता और उनकी प्रभावशालिनी वाक्- शक्ति की प्रशंसा जिनके

द्वारा की गयी है, उनके लिये स्वयं वाल्मीकि लिख गये हैं'' - ''श्रीराम द प्रकार की बातें नहीं कहते।'' श्रीराम के इस कथनी में किसी प्रकार क अतिशयोक्ति नहीं खोजी जा सकती।

हनुमानजी स्वयं महामनस्वी व्यक्ति थे। उनका मन जितना पवित्र और सबल था, उतने ही कर्म भी पवित्र और सबल थे। उसी प्रकार उनकी वाणी नितान्त निष्कपट, यथार्थ और ओजस्विनी थी। इस प्रकार शुद्ध मन, शुद्ध कर्म और शुद्ध वाग्बलवाले श्रीहनुमान सदैव सत्य के पक्षधर बने रहे और उसी सत्य में एकाकार होकर वे उसके लिए प्रत्येक कष्ट झेलने को तत्पर रहते थे।

श्रीहनुमान ने अपना सारा जीवन सत्य को समर्पित कर रखा था। सत्य के लिए समर्पित होकर उन्होंने अपने आपको श्रीरामकार्यमय बना डाला था। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने भ्रष्टाचार के सम्मुख घुटने नहीं टेके।

विद्या बुद्धि के निधान, ज्ञानवान्, वेदज्ञ, तीक्ष्ण बुद्धि, सर्वशास्त्र पारंगत असीम पराक्रम की मूर्ति, सर्वोपरि शौर्य - वीर्य के आगार, आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी शंकरजी के अंश से वायु द्वारा कपिराज केसरी की पत्नी अन्जना के गर्भ से चैत्र शुक्ला एकादशी को अवतरित श्रीहनुमानजी ने अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की सेवा में संलग्न होकर ऐसे - ऐसे अद्‌भुत कार्य किये, जिनका और किसी से होना असम्भव था।

समुद्र को लांघना, सीताजी को खोजना, अशोक वाटिका को उजाड़ना लंका को जलाना, संजीवनी बूटी को लाना, राक्षसों के साथ भयंकर युद्ध करना आदि ऐसे शौर्ययुक्त अद्‌भुत कार्य श्रीहनुमानजी द्वारा सम्पन्न हुए कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने ''हनुमान चालीसा' में कहा है कि ''रामदूत हनुमान अतुलित बलधाम, महावीर, विद्यावान, गुणी अति चतुर, कुमति निवारक और सुमति के संगी हैं, जिन्होने विकट रूप धारणकर लंका जलायी, भीमरूप धारणकर असुरों का संहार किया और स्वामी श्रीराम के सब काम सुधारे। जगत के जितने दुर्गम कार्य है, वे सब उनकी कृपा से सुगम हो जाते हैं। विनयपत्रिका में गोस्वामीजी ने विनती की है कि ''हनुमानजी आप अंहकार, काम, क्रोध आदि दुष्टों से व्याप्त घोर संसाररूपी रात्रि का नाश करने वाले साक्षात् सूर्य हैं।'' अतः यह पूर्णतया प्रत्यक्ष है कि हनुमान में इतना बल पराक्रम, सामर्थ्य या ब्रह्मचर्य - तेज था कि वे किसी भी लोक में कैसा भी रूप बनाकर अबाध गति से आ जा सकते थे।

महाभारत के सारे युद्ध में प्रायः सर्वत्र श्रीकृष्ण के सखा अर्जुन छाये हुए हैं। प्रत्येक प्रसंग पर उनके बल - पौरुष की प्रशंसा हुई है। उनके रथ की ध्वजा

पर श्रीहनुमानजी विराजमान थे, तभी अर्जुन बड़े - बड़े योद्धाओं को जीतने मारने में समर्थ हुए। इसीसे भीष्म पर्व में "कपिध्वज", "कपिनिकेतन" आदि नाम बताये गये हैं, जो वीरवर हनुमान के नामपट आधृत है। श्रीकृष्ण के अभिन्न मित्र एवं स्वयं महान शूरवीर होते हुए भी अर्जुन को हनुमान के बल - प्रभाव की आवश्यकता हुई और उनके सम्मान में अर्जुन के नाम उन्हीं के नामानुसार प्रसिद्ध हुए यह महाबली हनुमान के पौरुष का प्रत्यक्ष आदर है और उनके अतुल बलशाली होने का महान प्रमाण है।

श्रीहनुमान सम्यक् ब्रह्मचर्य पालन, शत्रु- निग्रह, काम - विजय, कार्य - सिद्धि आदि दृष्टि से अद्वितीय है। ब्रह्मचर्य पालन में तो श्रीहनुमानजी अपनी उपमा आप है। इतिहास में इसका ऐसा अन्य श्रेष्ठ उदाहरण कहीं नहीं मिलता। अदर्शन, अस्पर्शन, अस्मरण, असंकल्प आदि सामान्य ब्रह्मचर्य के आठ अग निर्दिष्ट है। किन्तु इसके मूल में एतदर्थ योग - वेदान्तादि के स्वाध्याय द्वारा दिव्य ज्ञान, वैराग्य एवं अभ्यास भी आवश्यक होते हैं तथा जन्मान्तरीय स्थिति भी देखी जाती है। इन सभी दृष्टियों से साधन सम्पन्न रुद्रावतार श्रीहनुमानजी ने आजन्म ब्रह्मचर्य के परिपालन द्वारा अपने को अपरिमित शक्तिशाली बनाकर श्रीरामायण कथा को भी अमर कर दिया।

श्रीहनुमानजी का मुखकमल बाल रवि के समान लाल है, उनके लोचन कोर करुणा रस के समूह से भरे हुए हैं जिनकी महिमा मनोहारिणी है, वह अन्जना के सौभाग्य है तथा जीवन दान देने वाले हैं। वह कामदेव के वाणो को जीत चुके हैं, उनके कमल पत्र के समान विशाल एवं उदार लोचन है, उनका शंख के समान कण्ठ और बिम्बफल के समान अरुण ओष्ठ हैं, वह पवन के सौभाग्य हैं। श्रीहनुमानजी ने सीता जी का कष्ट दूर किया और श्रीरामचन्द्र जी के ऐश्वर्य की स्फूर्ति को प्रकट किया, उन्होंने दस वदन रावण की कीर्ति को मिटा दिया, वह वानर सेना के अध्यक्ष है, दानव कुलरूपी कुमुदों के लिए सूर्य की किरणों के समान हैं, उन्होंने दीन जनों की रक्षा की दीक्षा ले रखी है।

श्रीहनुमानजी सिन्दूर स्नान से सुन्दर देहयुक्त, बल - वीर्य के सागर, बुद्धि प्रवाह के आकर और अद्भुत ऐश्वर्य के धाम है, वह वरदान तत्पर, सर्वकामपूरक सकट्घटाविदारक, सर्वव्यापी तथा मंगलकारी है। वानरराज उत्साहपूर्वक महासिन्धु को लाँघ गये, संजीवनी के लिए द्रोणगिरि को ही उठा लाये, लंका नगरी के दहन से उनका प्रभाव - प्रभा दिग्दिगन्त व्याप्त है। घोर राम - रावण युद्ध में सेना का मंथन करने में उन्होंने महान योगदान किया। महाभारत - महायुद्ध में रथ पर उनकी शोभा प्रकट हुई है पृथानन्दन अर्जुन के रथकेतुपर

उनकी विकराल, विशाल मूर्ति विराजमान है। विशाल अगवाले श्रीहनुमानजी का वेग उपमा से रहित अनुपम है, उनकी मुष्टि के प्रहार से राक्षसराज रावण मूर्च्छित हो गया था, उनके पराक्रम की अद्भूत श्री का कीर्तन भगवान श्रीराम करते हैं।

श्री हनुमान भगवान राम की भक्ति में पूर्णतया तन्मय हो चुके थे। उनके मन का राम के प्रेम में इतना परिपाक हो चुका था कि उनके अन्दर सांसारिक वस्तु के लिये कोई इच्छा या कामना नहीं रह गई थी। वह पूर्णतया राममय हो चुके थे, अतः उनका देहाभिमान छूट गया था तथा वह आत्माराम हो चुके थे। अन्तःकरण में अहर्निश राम का दर्शन करते हुए वह आत्मा में ही आत्मा के दर्शन का तत्व समझ चुके थे। श्रीहनुमान को सच्चे अर्थों में स्थितप्रज्ञ कहा जा सकता है। श्री कृष्ण गीता में कहते हैं-

"प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥"

अर्थात् तब मनुष्य अपने मन में स्थित सभी इच्छाओं का पूर्णतः त्याग कर देता है तथा आत्मा से ही आत्मा में संतुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

वस्तुतः समभाव में स्थिति हो कर निष्कामभाव से कर्म करना कर्मयोग है और कर्मयोगी स्थितप्रज्ञ हो जाता है। श्रीहनुमान निष्काम कर्मयोगी थे। उनकी अपनी इच्छा या कामना थी ही नहीं। वह तो भगवदर्थ कर्म करते थे। राम का कार्य पूर्ण किये बिना उनको विश्राम नहीं मिलता था।

कामना ही मनुष्य के समस्त दुःखों का कारण हैं। कामना से चिन्ता और भय का जन्म होता है। मनुष्य कामना चिन्ता और भय के कारण असत् तत्व मे भटकता रहता है। वह सत् तत्व को भुलाकर आनन्द से दूर हो जाता है परन्तु जो आत्मा से ही आत्मा में संतुष्ट रहता है वह सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है। श्रीहनुमान राम के प्रेम रस में पग गये थे। उनकी न तो कोई इच्छा थी, न उन्हें कोई भय था और न उन्हें कोई चिन्ता ही थी। उन्हें तो बस राम की चाह थी और राम उनके हृदय में बस गये थे। वह अपने मन की आखों से निरन्तर राम का दर्शन करते रहते थे।

श्रीहनुमान पूर्ण निष्काम कर्मयोगी थे। भगवान राम के लिये वह सहज ही कर्म करते थे। उनकी निष्काम भक्ति अन्तः प्रकाश से आलोकित थी। वह स्थित प्रज्ञता की चरम अवस्था तक पहुँच चुके थे।

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि जिस पुरुष का मन दुःखो में व्याकुल

नहीं होता तथा सुखों में लालसा से रहित होता है, जो राग, भय और क्रोध से मुक्त है, ऐसा मननशील महापुरुष स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। वह प्रत्येक अवस्था मे अपने भीतर परम शान्त अथवा आनन्दमग्न रहता है और दुःख और सुख उसके विचलित नहीं करते।

श्रीहनुमान दुःख से कभी व्याकुल नहीं हुये। मेघनाथ ने उनके ऊपर ब्रह्मास्त्र चला दिया, फिर भी वह न तो दुःखी हुये, न डरे और न ही उन्हें क्रोध आया। रावण ने उनकी पूँछ में आग लगवा दी, परन्तु न तो वे दुःखी हुये और न भयग्रस्त, बल्कि पूर्ण साहस के साथ श्रीराम का कार्य करने के लिए लका को ही जला डाला ऐसा उन्होंने प्रतिशोध के भाव से अथवा क्रोधवश नहीं किया बल्कि आततायी रावण जिसने भगवती सीता देवी का बलात् अपहरण कर लिया था तथा ऋषियों मुनियों और देवताओं को अकारण कष्ट दिया करता था, को स्मरण दिलाने के लिए कि दुष्कर्म का फल भोगना पड़ता है। लंकादहन एक प्रकार से रावण को दी गयी चेतावनी थी। यदि वह तब भी संभल गया होता तो सम्भवतः रावण का पूर्ण विनाश टल गया होता।

जो मनुष्य समस्त मनोगत कामनाओं को समूल नष्ट कर देता है तथा आत्मा द्वारा आत्मा में ही मग्न रहता है, वह स्थितप्रज्ञ रहता है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति दुःख में उदिग्न नहीं होता है तथा सुख में स्पृहा नहीं करता। स्पृहा (तृष्णा) कामना का सूक्ष्म रूप है। सुख से स्पृहा से मुक्त होकर मनुष्य राग, द्वेष, भय एव क्रोध से सदैव मुक्त रहता है। कर्मयोगी सदा और धैर्यवान रहता है। ब्रह्म् को सत्, संसार को असत् माने पर भौतिक दुःख सुख मिथ्या प्रतीत होने लगते है। आध्यात्मिक आनन्द की उपलब्धि एवं अनुभूति होने पर सांसारिक विषय के सुख नीरस एवं निःस्राव प्रतीत होने लगते हैं तथा दुःख कठिन एवं क्लेशप्रद नही होते हैं। कर्मयोगी सदैव समबुद्धि एवं समरस रहता है।

ईश्वरभक्त दुःख में सदैव प्रभुकृपा की अनुभूति करता है। श्री हनुमानजी भगवान राम की भक्ति में इतने तन्मय रहते थे कि वह सुख-दुःख, राग द्वेष, भय, क्रोध इत्यादि के ऊपर उठ गये थे।

श्रीकृष्ण ने गीता में उल्लेख किया है कि जो मनुष्य सर्वत्र अनाशक्त हुआ, अनेक शुभ व अशुभ वस्तुओं को प्राप्त करके भी न हर्षित होता है और न उदास होता है, वह स्थितप्रज्ञ है। योगवाशिष्ठ ने लिखा :- "न सिद्धावौत्सुक्य गच्छेत् ना सिद्धौ दैन्यम्।" अर्थात् न सिद्धि (कार्य सफलता) में उत्सुकता को प्राप्त हों, न असिद्धि (असफलता) में दीनता का अनुभव करें।

वस्तुतः जो व्यक्ति आध्यात्मिक मूल्यों में प्रगाढ़ विश्वास रखते हैं, वे बाह्य

गुणों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होने पर सुखद अथवा दुःखद स्थिति प्राप्त होने पर विचलित नहीं होते हैं। भगवान में आस्था रखने वाले मनुष्य को सब कुछ मंगलमय प्रतीत होता है तथा वह सुख-दुःख में प्रभु के कल्याणकारी अनुग्रह का अनुभव करता है। वह सर्वत्र प्रभु का दर्शन करके मन में आनन्द का अनुभव करता है। श्री हनुमान भी प्रभु की भक्ति में इतने तल्लीन रहते हैं कि उन्हे किसी भी सांसारिक वस्तु की इच्छा नहीं है, अतः वह सुख-दुख शुभ-अशुभ के ऊपर उठ गये हैं और उनकी प्रज्ञा पूर्णतः श्रीराम में प्रतिष्ठित हो गयी है।

भगवान कृष्ण ने गीता में यह भी लिखा है कि जिस प्रकार कछुआ अपने अगों को सब ओर से अपने भीतर समेट लेता है, उसी प्रकार मनुष्य जब अपने इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषय से हटाकर अपने भीतर समेट लेता है, वह स्थितप्रज्ञ होता है।

संसार में इन्द्रियों के विषय (भोग्य पदार्थ) सर्वत्र विद्यमान हैं। जब मनुष्य का मन राग और आसक्ति से भरा होता है तब वह इन्द्रियों को उनके विषयो की ओर दौड़ने देता है तथा इन्द्रियों के स्वेच्छाचार के कारण मनुष्य की बुद्धि भटक जाती है। जिस मनुष्य के वश में उसका मन एवं इन्द्रिय नहीं है उसकी बुद्धि कभी स्थिर नहीं हो सकती। इन्द्रियों के वश में रखना ही इन्द्रिय सयम का आहार है तथा इन्द्रियों को उनके विषयों के आकर्षण एवं प्रलोभन से रोककर भीतर समेट लेना प्रत्याहार कहलाता है। गीता के यह सिद्धान्त श्री हनुमान के व्यक्तित्व में साकार हो गये हैं। वह अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण रखते हैं। उनके जैसा ब्रह्मचारी धरातल पर नहीं हुआ।

सन्तशिरोमणि श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जिनका सम्पूर्ण जीवन भगवान के भजन तथा सनातन धर्म के प्रचार में समर्पित था ने प्रयाग के पास झूँसी मे आश्रम की स्थापना की तथा अपने प्रवचनों की पुस्तकों के माध्यम से समाज को धर्मामृत का पान कराया। ब्रह्मचारी जी हनुमान के अनन्य उपासक थे। हनुमान जी के सम्बन्ध में अनेक कथाओं और उन पर अपने अभिमत एव मतव्यों के द्वारा हनुमत् चरित की सरल सरस एवं अनूठी व्याख्या की।

संसार में ब्रह्मचर्य ही एक ऐसी महान् शक्ति है, जिसके द्वारा मनुष्य महान्-से महान् कार्य कर सकता है, सच्चे ब्रह्मचारी के लिये कोई भी बात असम्भव नहीं। मनुष्य की शक्ति जब इन्द्रियों के सुख में व्यय होती है तो वह संसार से ऊपर नहीं उठ सकता है। हनुमान्जी ब्रह्मचारियों के अग्रगण्य हैं, उन्होने अपने ब्रह्मचर्य, शम, दम, त्याग, लितिक्षा, प्रज्ञा तथा विलक्षण बुद्धि कौशल से श्रीरामचन्द्रजी को अपने वश में कर लिया। उन्होंने सीतान्वेषण के समय

अपनी बुद्धिमत्ता का जैसा परिचय दिया इससे भगवान् राम अत्यन्त ही प्रभावित हुए और वे सदा-सदा के लिए हनुमानजी के हो गये। भगवान् ने तो यहाँ तक कह दिया हनुमान्! मैं तुम्हारे ऋण से कभी उऋण ही नहीं हो सकता। मै तो सदा तुम्हारा ऋणिया ही बना रहूँगा।

हाँ, तो ऋक्षराज जाम्बवान् के स्मरण दिलाने पर हनुमानजी को अपनी शक्ति सामर्थ्य का स्मरण हो आया, वे बोले - "आप लोग मुझसे जो कराना चाहें, वह करा सकते हैं, वह शत योजन लम्बा समुद्र तो क्या ऐसे मैं सैकडो समुद्रों को लाँघ सकता हूँ। रावण की तो बात ही क्या, मैं उसकी पूरी-की पूरी लङ्का को उखाड़कर समुद्र में डुबा सकता हूँ, रावण को मच्छर की भाँति पकड़कर मसल सकता हूँ। आप कहें तो मैं लङ्का को उखाड़कर यहीं ले आऊँ। आप कहें तो मैं रावण को मारकर सीताजी को भी साथ लेता आऊँ। आप कहे तो मैं लङ्का को रावण के पुत्र, पौत्र, समस्त परिवार को श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में लाकर रख दूँ।"

जाम्बवान्‌जी ने सोचा अब तो हनुमान्‌जी आवश्यकता से अधिक उत्तेजित हो गये, तब उनको समझाते हुए जाम्बवान् बोले - "हनुमान्! देखो, हम भगवान् के दूत हैं। दूतों को सदा मर्यादा में रहना चाहिये। दूतों के लिये युद्ध निषेध है। दूत लड़ाई - झगड़ा नहीं कर सकता। दूत की बात का राजा लोग बुरा भी नहीं मानते, उसे दण्ड का भी विधान नहीं, क्योंकि दूत जो भी कहता है अपने स्वामी के अभिप्राय को प्रकट करता है, अतः तुम न तो रावण को मारना, न लङ्का को उखाड़ना, न किसी को ताड़ना न कोई और ही उपद्रव करना। केवल तुम इतना ही मात्र करना कि सीताजी का पता लेकर ज्यों के त्यो लौट आना। सीताजी का पता मिलने पर स्वयं राघवेन्द्र स्वामी सेना सजाकर अपनी प्रिया का उद्धार करेंगे। यही उनकी कीर्ति प्रतिष्ठा के अनुरूप होगा। तुम तो अपने को श्रीरामजी का दूत ही समझना। समझ गये न मेरी बात को?"

हनुमानजी ने कहा - "बूढ़े बाबा ! आपकी बात मैं समझ गया। मैं सीताजी की सुधि लेकर शीघ्र ही लौट आऊँगा। किन्तु मुझे कोई मारे-पीटे तो भी मैं उससे आत्मरक्षार्थ लड़ाई न करूँ क्या?"

हँसकर जाम्बवान् ने कहा - "अरे भैया! अपनी आत्मरक्षा तो कर ही लेना वैसे व्यर्थ में लड़ाई मोल मत लेना।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "अच्छा, बहुत अच्छा, तो अब आप मुझे आज्ञा दीजिये।" यह कहकर हनुमान्‌जी ने बड़ों के पैर छुए, बराबर वालों से मिले, छोटे ने उन्हें प्रणाम किया और वे कूदकर एक बड़े भारी पेड़ पर चढ़ गये।

अब उन्होंने अपने शरीर को बढ़ाना आरम्भ किया। देखते - ही देखते वे पर्वताकार हो गये। इतना भारी वृक्ष उनके भार को सहन करने में समर्थ न हुआ। वह टूटकर समुद्र में गिरने लगा। हनुमान्‌जी उछलकर समुद्र में कूद पडे। उनके साथ वृक्षों की फली - फूली सैकड़ों डालियाँ समुद्र में बहने लगीं। उन डालियों को अपनी छाती से तोड़ते - फोड़ते कपिराज आगे चलने लगे। पता नहीं चलता था कि वे समुद्र में तैर रहे हैं या आकाश में उड़ रहे हैं। वायुवेग के समान वे सर्र-सर्र उड़े जा रहे थे। सब लोग उनके उस अद्‌भुत अलौकिक पुरुषार्थ को देखकर आश्चर्यचकित होकर परम विस्मय के साथ एकटक उन्हे निहार रहे थे। समुद्र के जल - जन्तु भयभीत होकर समुद्र के जल में छिप गये। पक्षियों ने आकाश में उड़ना बन्द कर दिया। हनुमान्‌जी बिना विश्राम किये निरन्तर वायुवेग के सदृश समुद्र के जल पर उड़ते ही जा रहे थे।

हिमालय का पुत्र मैनाक जो समुद्र में छिपा हुआ था, उसने कहा भी- "हनुमान् ! तनिक विश्राम करके आगे बढ़ो।"

बिना उसकी ओर देखे हनुमान् जी ने शीघ्रतापूर्वक चलते - चलते ही कहा - "मैनाक भाई धन्यवाद! धन्यवाद! इस कृपा के लिए साधुवाद! श्रीरामचन्द्रजी का कार्य जब तक मैं कर न लूं तब तक मुझे विश्राम कहाँ, आराम कहाँ। मुझे आज्ञा दो शीघ्र पहुँचना है उस पार।"

सर्पों की माता सुरसा को देवताओं ने हनुमानजी की बुद्धि की परीक्षा लेने भेजा। उसने आकर कहा - "ओ वानर! खड़ा रह मैं तुझे खाऊँगी। बडी भूखी हूँ। देवताओं ने मुझे तुम्हें ही आहार के निमित्त भेजा है।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "माँ ! मैं शीघ्रता में हूँ। लौट आऊँ तब खाना।"

उसने कहा - "बातें मत बनाओ। तुम बहुत ही हृष्ट-पुष्ट ब्रह्मचारी बलवान् हो मैं तुम्हें ही आहार करके सन्तुष्ट हूँगी।" बात को अधिक न बढ़ाकर वानर बोले - "अच्छा नहीं मानती है तो फाड़ मुख।" उसने मुख फाड़ा, ये उससे दुगुने बन गये। फिर उसने दुगुना मुख फाड़ा तो ये उससे भी दुगुने बन गये। ऐसे दुगुना - दुगुना बढ़ाते हुए जब उसने अपने मुख को सौ योजन चौडा बना लिया तो ये छोटा - सा रूप बनाकर उसके मुख में घुस गये। उसके एक प्रकार से पुत्र बन गये और हाथ जोड़कर खड़े हो गये, बोले - "माँ ! अब तो मैं तुम्हारे उदर में चला गया, अब आज्ञा दे दो।"

सुरसा इनके बुद्धि कौशल को देखकर परम प्रमुदित हुई। इन्हें भाँति - भाँति के आशीर्वाद देकर चली गयी। ये आगे बढ़ गये।

आगे चलकर एक विघ्न और आ गया राहु की माता सिंहिका जो समुद्र में ही रहती थी, वह आकाश में उड़ने वालों की समुद्र में पड़ती छाया के

द्वारा ही उन्हें खींचकर खा जाती। इनकी छाया को भी उसने खींचा। वे उसकी धूर्तता समझ गये और एक ऐसा कसकर मुक्का मारा कि वह तिड़ी हो गयी। मुक्का लगते ही परलोक सिधार गयी। हनुमान्‌जी समुद्र पार पहुँच गये। अब उन्होंने सोचा इस पर्वताकार शरीर से लङ्का में प्रवेश करना उचित नहीं। समस्त सिद्धियाँ तो सदा इनके सम्मुख समुपस्थित ही रहती थीं। उन्होंने अणिमा सिद्धि के द्वारा बहुत ही छोटा - सा रूप कर लिया।

लङ्का की अधिष्ठातृ देवी जो सदा ही लङ्का की रक्षा किया करती थी, किसी अपरिचित व्यक्ति को बिना अनुमति के भीतर प्रविष्ट ही न होने देती थी, बहुत लघु रूप होने पर भी उसने इन्हें देख लिया और गरजकर बोली- "कौन है तू जो चोर की भाँति मेरा तिरस्कार करके लङ्का में प्रवेश कर रहा है। सावधान आगे न बढ़ना। नहीं तो तुझे खा जाऊँगी।"

हनुमान्‌जी ने बात को बढ़ाया नहीं। बिना सोचे समझे कसकर जो एक मुक्का उसके मारा कि वह अचेत होकर गिर पड़ी तब उसने कहा - "कपिराज! अवश्य ही तुम राम के दूत हो, अब लङ्का का विनाश सन्निकट आ गया है। ब्रह्माजी ने मुझे पूर्व में ही बता दिया था कि जब तू बन्दर के मुष्टि प्रहार से अचेत पड़ जाय, तब समझना अब लङ्का का विनाश होगा, सो तुम प्रसन्नता से भीतर चले जाओ।" इतना सुनते ही रात्रि के समय हनुमान्‌जी ने लङ्का मे प्रवेश किया।

राम काज करने वाले ब्रह्मचारी को सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार की मातायें आकर घेरती हैं, उसे भाँति - भाँति के प्रलोभन देती है। जो इनके फन्दे में फँस जाता है वह गिर जाता है, जो इन पर विजय प्राप्त कर लेता है वह आगे बढ़ जाता है। सात्विक माया को हाथ जोड़ दे, उसका मातृभाव से केवल स्पर्श करके आगे बढ़ जाय। तामस माया हो तो उसे मारकर आगे बढ़े। राजस माया को मारे नहीं केवल मूर्च्छित करके आगे बढ जाय। यही हनुमान् जी ने किया।

अब उन्हें सीताजी के अन्वेषण की चिन्ता हुई। ये चुपके से लङ्का में घुस गये। पहिले उन्हें घुड़साल दिखाई दी। उसमें घुस गये वहाँ असंख्य घोड़े बँधे थे। उसमें हनुमान्‌जी चारों ओर घूम-घूम कर सीताजी को खोजने लगे, वहाँ न मिलने पर हस्तिशाला, गोशाला आदि में खोजने लगे, फिर सोचने लगे- "मै भी कैसा पागल हूँ, अरे, स्त्री को गोशाला, गजशाला, अश्वशाला तथा दूसरे पशुओं में खोज रहा हूँ। स्त्री तो स्त्रियों में हो सकती है। चलूँ रावण की महिषीशाला में खोजूँ।' यह सोच करके रावण के अन्तः पुर में गये। वहाँ एक

सुवर्ण मण्डित पलङ्ग पर रावण सो रहा था। उसके समीप गलीचों पर सहस्त्रो स्त्रियाँ पड़ी सो रही थीं। वे सब की सब परम सुन्दरी थीं, उनमें कुरुपा कोई भी नहीं थी। सब-की-सब सुरा पान किये हुए थी। किसी का सोते-सोते मुख फट गया था, उससे शराब की गन्ध निकल रही थी, किसी के मुख से लार गिर रही थी, किसी का वस्त्र छाती से खिसक गया था, कोई जोर-जोर के खर्राटे ले रही थी, कोई बड़बड़ा रही थी, कोई स्वप्न देख रही थी, कोई अपने तकिये का ही कसकर आलिङ्गन कर रही थी, कोई हाथों को फड़फड़ाकर अभिनय कर रही थी, कोई गाते - गाते सो गई थी उसकी छाती पर बीड़ा ऐसे पड़ी थी, मानो कोई बालक अपनी माँ का स्तन पान कर रहा हो। कोई पान खाते-खाते सो गई थी पान की पीक उसके वस्त्रों पर टपक रही थी। सोते समय सबके वस्त्र खिसक गये थे, वे अर्धनग्न अवस्था में पड़ी हुई थी, उनके सिर के बाल अस्त - व्यस्त हो रहे थे। हनुमान्जी ने कभी सीताजी को देखा तो था नहीं अतः प्रत्येक सुन्दरी स्त्री को देखते और सोचते हो - न हो यही सीता हो, फिर उससे बढ़कर सुन्दरी को देखते तो उसे सीता समझने लगते। फिर सोचने लगे - "इनमें से कोई भी सीता नहीं। सीता राम से विमुख होकर न तो इतने सुख से सो सकती हैं, न सुरा ही पान कर सकती हैं, न गा सकती हैं तब उसने रावण की बगल में एक अत्यन्त ही सुन्दरी परम गम्भीर परम प्रभावशालिनी नारी को देखा। उसे देखकर हनुमान्जी को सन्देह हुआ, हो–नहो–यही सीता है। फिर सोचने लगे - "सीता राम के वियोग में इतनी न तो प्रसन्न हो सकती है, न श्रृंङ्गार ही कर सकती हैं, न पान ही खा सकती है, यह तो रावण में पति भाव किये सो रही है। हो-न-हो यह रावण की पत्नी मन्दोदरी है तब सीता गई कहाँ। सम्पाती की बात झूठ तो हो नहीं सकती। उसने कहा था - "मैं सीता को लङ्का में बैठी देख रहा हूँ। अच्छा लङ्का तो बहुत बड़ी है। फिर खोजूँ।"

यह सोचकर वे फिर खोजने लगे। फिर कहीं पता न चला तो फिर रावण के अन्तःपुर. में आये। अबके उन अस्त-व्यस्त पड़ी स्त्रियों को देखकर उनके मन मे बड़ी घृणा हुई, वे सोचने लगे - "ब्रह्मचारी को तो स्त्रियों के चित्र भी नही देखना चाहिये। मैंने अर्धनग्न अवस्था में अचेतन पड़ी हुई इन स्त्रियों को देखा है, इससे मुझे दोष लगा। बड़ा अपराध हुआ। इसका क्या प्रायश्चित करूँ।'

फिर सोचने लगे - "मैंने स्त्रियों को देखने की दृष्टि से यहाँ प्रवेश किया नहीं। मैं तो सीता माता का अन्वेषण करने आया था। सीता माता स्त्रियों मे ही मिलेंगी, इसी भावना से मैंने रावण के अन्तःपुर में प्रवेश किया। अपना अन्तःकरण ही पुरुष का साक्षी होता है। इन स्त्रियों को देखकर मेरे मन में

किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न हुआ। पाप और पुण्य में भावना ही प्रधान होती है। जब मेरी भावना ही दूषित नहीं हुई। मेरे मन में किसी प्रकार की बुरी भावना ही नहीं उठी तो प्रायश्चित्त की आवश्यकता ही क्या है, किन्तु मै जिस काम के लिये आया था वह काम तो अभी हुआ ही नहीं। सीताजी का पता तो लगा नहीं। मुझे सब काम छोड़कर सीताजी को ही खोजना चाहिये।'' यह सोचकर मारुतिनन्दन बालब्रह्मचारी हनुमान् फिर दूसरे स्थानों में सीताजी को खोजने लगे।

सेवक धर्म सबसे कठिन है। योगी को तो अपने ही शरीर को स्थिर रखकर अपने चित्त पर विजय प्राप्त करनी होती है, किन्तु सेवक को तो अपनी इन्द्रियो को, मन तथा बुद्धि को स्वामी की मन बुद्धि में तदाकार करनी होती है। सेवक का अपना कहने को कुछ नहीं होता, अपना करने को भी कुछ नहीं रहता।

संसार मे सेवक तीन प्रकार के होते हैं, उत्तम सेवक तो वे होते हैं, जो स्वामी के नियुक्त किये हुए कार्य को तो करते ही हैं, उसके साथ अन्य दूसरे कार्यों को भी कुशलतापूर्वक करते जाते हैं, मध्यम वे होते हैं, स्वामी जितना कहे उतने ही कार्य को कुशलतापूर्वक कर आवें। अधम वे हैं, जो सामर्थ्य रहने पर भी स्वामी के कार्य को कुशलता से न करें। केवल बेगार - सी टाल दें। हमारे हनुमान्जी श्रीरामजी के सर्वोत्तम सेवक हैं। तभी तो श्रीरामचन्द्रजी ने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए यहाँ तक कह दिया कि हनुमान् जी मैं तुम्हारे उपकारों से जन्मजन्मान्तरों में भी उऋण नहीं हो सकता।

श्री हनुमानजी ने लङ्का को जलाकर वहाँ के सब भेद लेकर जानकीजी से चिन्हारी रूप में चूड़ामणि, आशिष और अनुमति लेकर पुनः जैसे आये थे वैसे ही समुद्र को पार किया। वे प्रसन्न मुद्रा में आ रहे थे। किनारे पर उनकी प्रतीक्षा में बैठे अङ्गद, जाम्बवान् तथा अन्यान्य दूसरे बानरों ने उन्हें प्रसन्नता पूर्वक आते हुए देखा। उनकी मुखाकृति देखकर ही सबको विश्वास हो गया कि हनुमान्जी कृतकार्य होकर - माता जानकी को देखकर - लौटे हैं। सभी ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया। उन्होंने अपने से बड़ों की चरण वन्दन की, बराबर वालों को हृदय से लगाकर मिले। छोटों ने उनके पैर छुए। उल्लास मे भरकर उन्होंने कहा - ''देख आया मैं भगवती जगमाता सीता को। माँ के दर्शनों से मेरा जीवन धन्य हो गया। भगवती सीता का जिन्होंने दर्शन नही किया उनका जन्म निरर्थक है।'' इतना कहकर उन्होंने आदि से अन्त तक अपना पूरा वृत्तान्त सुना दिया। सब सुनकर वानर परम प्रमुदित हुए। प्रसन्नता में भरकर वे श्रीरामचन्द्रजी के समीप चले उन्होंने सुग्रीव के उपवन को भी तोड़ा - फोड़ा फिर श्रीरामचन्द्रजी के समीप पहुँचे। प्रणाम करके उन्होंने इतना ही कहा - ''देख आया मैं सीता को''

इन शब्दों को सुनते ही श्रीरामजी प्रसन्नता के कारण अवाक् से हो गये, उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे, वाणी गद्गद् हो गयी। सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया। वे बड़े कष्ट से बोले - "हनुमान्! सचमुच तुमने मेरी प्रिया को देखा है? वह कैसी है? कहाँ रहती है? कृश तो नहीं हो गयी? उसके दिन कैसे कटते हैं? राक्षसों में वह कैसे निर्वाह करती है? राक्षस उसे कष्ट तो नहीं देते। वह मेरा स्मरण करती है क्या? उसने मेरे सम्बन्ध मे तुमसे क्या - क्या पूछा? पवन तनय! तुम मेरी प्रिया के समाचार विस्तार से सुनाओ।"

हनुमान्जी ने जब से सीताजी के दर्शन किये हैं तब से वे उनके अन्यन्त ही भक्त बन गये हैं। श्रीरामचन्द्रजी के प्रश्नों को सुनकर उन्होंने उस दिशा को प्रथम प्रणाम किया, जिस दिशा में सीताजी निवास करती हैं, फिर बोले- "प्रभो! मैंने भगवती सीता को एक शीशम के वृक्ष के नीचे मलिन बसन धारण किये हुए देखा था। वे निरन्तर रोती ही रहती है, रोते - रोते उनके दोनो कमलनयन सूज गये हैं, उनके सुन्दर काले - घुँघुराले बाल न धोने से मैले तथा चिपटकर जटाओं के सदृश बन गये हैं, वे मुख से निरन्तर आपके नामो का ही उच्चारण करती रहतीं हैं, हृदय में आपकी मनोहर मूर्ति का ही ध्यान करती रहती हैं। वे मूर्तिमान् तपस्या हैं, वे करुणा की सजीव मूर्ति सी लगती है। बिरह की साकार प्रतिमा हैं, उसके सम्पूर्ण अङ्ग अत्यन्त कृश हो गये है। वे स्वाँस - स्वाँस पर राम - नाम को रटती रहती हैं। मैं तो जगज्जननी के दर्शनों से कृतार्थ हो गया। माता ने पहिले तो मेरे ऊपर विश्वास नहीं किया, जब मैंने राम कथा सुनाई शपथ खाई, आपकी अंगूठी दिखाई तब उन्हें मेरे ऊपर विश्वास हो गया। उन्होंने रोते - रोते मुझे अपनी सम्पूर्ण कथा सुनाई। प्रभो ! मैंने माता की आज्ञा लेकर फल खाये, अशोक वाटिका को तोड़ा - फोडा। रावण के सैनिक मुझे मारने आये उनसे मैं लड़ा। रावण के पुत्र अक्षयकुमार को युद्ध मे मार गिराया। तब मेघनाद मुझे नाग पास में बाँधकर रावण की राजसभा में ले गया। उसने तो मुझे मार डालने की ही आज्ञा दे दी थी। किन्तु उसका छोटा भाई विभीषण बड़ा महात्मा है, आपका परम भक्त है, धर्मात्मा है, उसमें राक्षसपने का कोई लक्षण नहीं। उस धर्मात्मा रावणानुज ने दूत को अवध्य बताकर मुझे छोड़ देने को कहा। तब राक्षसों ने मेरी पूँछ मे आग लगाकर मुझे छोड़ दिया। मैंने समस्त लङ्का को जलाकर माता जानकी के चरणों में प्रणाम किया और उनसे जाने की आज्ञा माँगी। मेरा गमन सुनकर जगज्जननी रोने लगीं। उन्होंने बार-बार आपके चरणारविन्दों में प्रणाम कहा है, शीघ्र ही लङ्का आकर अपने को छुड़ाने की प्रार्थना की और मेरे माँगने पर चिह्नारी के रूप में यह चूड़ामणि दी है। यह कहकर हनुमान्जी ने भगवान् को माता की दी चूड़ामणि दी। श्रीराघवेन्द्र ने उस चूड़ामणि को दोनो हाथ

पसारकर बड़े ही सम्मान के साथ ग्रहण किया। उसे हृदय से लगाया और वे भाव-विभोर होकर रुदन करने लगे। उन्होंने बारम्बार उस चूड़ामणि को नेत्रों से लगाया और अश्रु बहाते हुए सुग्रीव से बोले - "कपिराज! आज इस चूड़ामणि को पाकर मुझे ऐसी प्रसन्नता हो रही है, मानों मैंने जानकी को ही पा लिया हो। वानरेन्द्र ! यह रत्न समुद्र से निकला था। देवताओं ने इसे मिथिलाधिप महाराज विदेह को दिया था। महाराज विदेह ने दहेज के रूप में अपनी प्यारी पुत्री सीता को दिया था। इस चूड़ामणि को सीता के शिरोभूषण के रूप मे मैने अनेकों बार इसका स्पर्श किया था, किन्तु हाय! आज मैं इसे सीता से विहीन स्पर्श कर रहा हूँ।" यह कहते - कहते राघवेन्द्र अचेत हो गये, सुग्रीव ने उन्हें सम्हाला और धैर्य धारण कराया। सुग्रीव ने कहा - "राघव! जब तक सीता का पता नहीं लगा था तभी तक हम चिन्तित थे। अब तो पूरा पता लग गया, हनुमान्‌जी माता को देख आये। अब क्या बात है, हम असंख्यो वानर लंका को घेर लेंगे और बात की बात में सीताजी को वहाँ से ले आवेंगे।"

इतना सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी फिर रुदन करने लगे। वे रोते - रोते कहने लगे - "हनुमान ने यह बड़ा ही दुष्कर कार्य किया। हनुमान् के अतिरिक्त देवता यक्ष, गन्धर्व आदि कोई भी इस कार्य को करने में समर्थ नहीं हो सकते। शत योजन समुद्र को हाथों से पार करने की सामर्थ्य या तो गरुड़जी में है या हनुमान्‌जी अथवा उनके पिता पवन देव में है। चौथा कोई उसे तैरकर नही जा सकता।

सीता की सुधि लाकर हनुमान् ने मुझे क्रय कर लिया, उन्होंने मुझे खरीद लिया, ऋणी बना लिया। मैं हनुमान् के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता। होना भी नहीं चाहता। उपकार का प्रत्युपकार करने का अवसर तभी आता है, जब उपकार करने वाले पर भी ऐसी विपत्ति पड़े। मैं नहीं चाहता हनुमान् जी पर कोई विपत्ति पड़े उनके उपकार मेरे ऊपर सदा बने रहें। मैं उनके ऋण से कभी उऋण हो ही नहीं सकता।"

भगवान् के वचनों को हाथ जोड़े, नीचा सिर किये अश्रु बहाते हुए हनुमान्‌जी बहुत ही संकुचित तथा लज्जित होकर सुन रहे थे। भगवान् चुप नही हुए वे कहते ही गये - "हनुमान् ने सीता का पता लगाकर मेरे प्राणों की रक्षा की है। अकेले मेरे ही प्राणों की नहीं लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, माताओं तथा समस्त वंश की रक्षा की है। काम तो उन्होंने इतना भारी किया है कि उन्हें जो भी पारितोषिक दिया जाय, वही थोड़ा है, किन्तु मेरे पास देने को कुछ नहीं है। इस समय मेरे पास आलिङ्गन है। मैं इन महात्मा को अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ।"

यह कहकर भगवान् ने हनुमान्‌जी को कसकर अपनी छाती से लगा लिया।

श्रीराघवेन्द्र का सुखद कोमल त्रिताप हर आलिङ्गन पाकर हनुमान्‌जी कृतार्थ हो गये। मानों उन्हें सर्वस्व प्राप्त हो गया।

अब सेना की तैयारियाँ हुई। सैनिक सज-बजकर बड़े उत्साह के साथ समुद्र तट पर पहुँच गये। अब चिन्ता हुई कि इस समुद्र के पार इतनी भारी सेना जाय कैसे? उसी समय विभीषणजी भगवान् की शरण में आ गये। विभीषण की अनुमति से भगवान् ने समुद्र से प्रार्थना की। समुद्र ने सेतु बनाने की सम्मति दी। वानर समुद्र पर सेतु बाँधने लगे नल और नील को मुनियों का शाप था कि तुम्हारे हाथ के फेंके पत्थर जल में नहीं डूबेंगे। समुद्र के द्वारा यह जानकर भगवान् ने नल और न नील को समुद्र पर सेतु बाँधने की आज्ञा दी। हनुमान् जी इन सबके प्रधान हुए। वे सब कार्य करने लगे। वानर बड़े उत्साह के साथ पर्वतों और वृक्षों को उखाड़कर लाते समुद्र में डालते। कार्य करते समय विनोद होता रहता है तो कार्य करने में उत्साह होता है। अतः वानरगण वानरी चञ्चलता करते वे पत्थरों को लाते बहुत ऊँचे से समुद्र में डालते जिससे समुद्र का जल बहुत उछलता, बहुत वानर भींग जाते, दूसरे उन्हें देखकर हँसते तब हनुमान्‌जी उन्हें डाँटते। कहते - "अरे भाई! तुम वानरी चञ्चलता बहुत मत करो। काम के समय बहुत खिलवाड़ उचित नहीं। सेतु बँध जाने दो। फिर तुम चाहे जितना खेल कर लेना।"

इस प्रकार हनुमान्‌जी की अध्यक्षता में समुद्र पर सेतु निर्माण होने लगा।

भगवान् सदा भक्तों के हित में ही तत्पर रहते हैं, भगवान् भक्तों में कोई भी दोष रहने नहीं देते, वे अपने निजी भक्तों की वासनाओं को किसी को पूरी कराकर, किसी को समझाकर, किसी को दरशाकर समूल नष्ट कर देते है। इसीलिए भगवान को भक्तानुग्रह कातर करते रहते हैं।

जब समुद्र के किनारे वानरी सेना पहुँच गयी और विभीषण जी भगवान् की शरण में आ गये। विभीषणजी की सम्मति से श्रीरामचन्द्रजी ने समुद्र को मनाने के लिये अनशन किया इतने पर भी जब समुद्र नहीं आया, तब श्रीरामजी ने अपना शर सन्धान किया, इस पर भयभीत होकर समुद्र प्रभु की शरण आया। उसकी सम्मति से नल-नील वानरों द्वारा समुद्र पर सेतु बाँधा जाने लगा। वानरो में बड़ा उत्साह था, परस्पर एक दूसरे से होड़ लगाने लगे। दौड़-दौड़कर कार्य करने लगे, एक दूसरे से बढ़ने का प्रयत्न करने लगे। पहिले दिन १४ योजन पुल बना। हनुमान्‌जी ने कहा - "भाई ! ऐसे कैसे काम चलेगा और परिश्रम करो।" वानरों ने और उत्साह दिखाया तो दूसरे दिन बीस योजन बँधा। हनुमान्‌जी ने कहा - "भाई! परिश्रम तो बहुत किया। फिर भी कसर रह गई तनिक - सा साहस और करो।"इस पर वानर और सवेरे उठे , तीसरे दिन इकीस योजन बँधा।

हनुमान्जी ने कहा - "बहादुरों! मार ली बाजी तनिक और परिश्रम को बढ़ा दो।" तब वानरों ने चौथे दिन बाइस योजन बनाया। पाँचवें दिन हनुमान्जी ने कहा - "चाहे जैसे हो आज सेतु को पूरा करना है" तब वानरों ने पूरी शक्ति लगा दी। पाँचवे दिन 23 योजन पुल बाँधकर सेतु के कार्य को समाप्त कर दिया।

समुद्र पर सुन्दर सेतु बना हुआ देखकर भगवान् रामचन्द्र जी को अत्यन्त ही प्रसन्नता हुई। उन्होंने सबसे कहा - "सौ योजन लम्बा और 10 योजन चौड़ा समुद्र पर सेतु बना देखकर मेरे हर्ष का ठिकाना नहीं। मेरी इच्छा है कि सर्वप्रथम सेतु के आरम्भ में मैं भगवान् शङ्कर की स्थापना करूं। आप सबकी क्या सम्मति है?"

सबने एक स्वर में कहा - "प्रभो ! शिवजी की स्थापना से बढ़कर कोई दूसरा परम पावन कार्य हो ही नहीं सकता। शिवजी की स्थापना होने से संसार का महान् उपकार होगा शिवजी के दर्शन करके प्राणी इस भवसागर को सरलता से पार कर सकेंगे। इसमें विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं।"

सबकी सम्मति समझकर भगवान् ने बहुत से ऋषि मुनियों को बुलवाया और उनसे विनय की - "महर्षियों ! मेरी इच्छा यहाँ पर एक शिवलिङ्ग स्थापित करने की है। आप में से जो महर्षि कर्मकाण्ड में निष्णात् हो, इस प्रतिष्ठा कार्य को साङ्गो-पाङ्ग पूर्ण कर सकते हों, वे मुझसे शिवजी की स्थापना करावें।"

ऋषियों ने कहा - "भगवन्! वैसे तो बहुत से ऋषि कर्मकाण्ड के पण्डित हैं, किन्तु इस प्रतिष्ठा कार्य में लंकेश्वर रावण सबसे श्रेष्ठ हैं, आप उनसे ही स्थापना कराइये।"

श्रीरामजी ने कहा - "मुनियों ! रावण से तो मेरा वैर बँध गया है, वे मेरे इस कार्य में क्यों कर आने लगे?"

ऋषियों ने कहा - "वैर बँध जाना यह दूसरा विषय है, प्रतिष्ठा करना इससे भिन्न विषय है। वैद्य का धर्म है, शत्रु, मित्र ऊँच, नीच जो भी रुग्ण पुरुष को दिखाने आवे, वैद्य को भेद-भाव छोड़कर तुरन्त उसके यहाँ जाना चाहिए, इसी प्रकार कर्मकाण्डी को प्रतिष्ठा के लिये जो भी बुलावे, यदि वह खाली हो तो उसे तुरन्त आना चाहिए। यह तो शिवजी की प्रतिष्ठा का परम पावन कार्य है, रावण शिव भक्त है वह आपके बुलाने पर अवश्य आवेगा।"

श्रीरामचन्द्र ने विभीषण की सम्मति से एक व्यक्ति को रावण के पास भेजा। शिव प्रतिष्ठा का बुलावा सुनकर रावण अपने पोथी - पत्रा तथा प्रतिष्ठा की सभी सामग्री और सीताजी को लेकर उपस्थित हुआ। श्रीरामचन्द्रजी ने उनका स्वागत - सत्कार किया और प्रतिष्ठा के लिए क्या - क्या करना चाहिये यह

पूछा।

आचार्य ने कहा 'सर्वप्रथम तो काशीजी से शिवलिङ्ग मँगानी चाहिये।

श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमान्‌जी को काशी से शिवलिङ्ग लाने की आज्ञा दी।

हनुमान्‌जी पवन वेग से काशीजी को चले। उन्हें बड़ी प्रसन्नता थी कि मेरे लाये हुए शिवजी को सेतु के आदि में स्थापना होगी। किन्तु प्रतिष्ठा का समय सन्निकट आ गया।

आचार्य ने कहा - "राम ! प्रतिष्ठा का मुहूर्त आ गया। मुहूर्त निकलना न चाहिये इसी समय शिवजी की स्थापना हो जानी चाहिए।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा - "आचार्य प्रवर ! अभी तक हनुमान्‌जी शिवलिङ्ग लेकर काशी से लौटे नहीं। अब क्या किया जाय?"

आचार्य ने कहा - "चाहे जो हो, स्थापना तो इसी समय होनी चाहिए। एक काम करें। सीताजी स्वयं एक बालुका की शिवलिङ्ग बना दें। उस बालुकामयी शिवलिङ्ग की ही स्थापना इस समय हो जानी चाहिए।"

आचार्य की आज्ञा से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने ऐसा ही किया। श्रीसीताजी ने बालुकामयी शिवलिङ्ग बनायी। राम ने विधिपूर्वक उनकी स्थापना कर दी। मुहूर्त टलने नहीं दिया।

इतने में ही काशी से शिवलिङ्ग लेकर अञ्जनीनन्दन केशरी आनन्दवर्धन पवनतनय हनुमान्‌जी आ गये। हनुमान्‌जी ने जब देखा, शिवजी की स्थापना तो हो चुकी, मेरे लाये हुए शिवजी व्यर्थ हो गये। मुझे सुयश प्राप्त न हो सका, तब उन्हें महान् दुःख हुआ। उन्होंने खिन्न मन से श्रीरामचन्द्रजी से कहा - "राघव! मैंने अपना समस्त जीवन ही आपकी सेवा में अर्पित कर दिया है। मेरे द्वारा आपकी सेवा हो सके तो मेरा जीवन धन्य हो जाय। ऐसा प्रतीत होता है, आपको मेरी सेवा स्वीकार ही नहीं है जब सेवक की सेवा स्वीकार न हो तो फिर उसका जीवन व्यर्थ ही है, अब मेरे जीवन धारण करने से लाभ ही क्या? अब मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा।"

श्रीराचन्द्रजी ने कहा - "भैया ! सेवक का काम स्वामी की आज्ञा का पालन करना मात्र ही है। उसका कुछ उपयोग है या नहीं इसका निर्णय तो स्वामी ही करेगा।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "फिर भी महाराज सभी की इच्छा होती है, हमें हमारे कार्य का श्रेय प्राप्त हो। कार्य की सफलता तो उसके सदुपयोग में ही है।"

भगवान् ने कहा - "देखो भैया! हमें हमारे कार्य का श्रेय प्राप्त हो, तो

ऐसी भावना भी देहाभिमान का सूक्ष्म रूप ही है। अस्तु, एक काम करो, तुम तो महाबलवान् हो सब शास्त्रों के पण्डित भी हो, इस शिवलिङ्ग को हटाकर अपनी लाई हुई मूर्ति को ही स्थापित कर दो मुझे इसमें कुछ भी आपत्ति न होगी।''

इतना सुनते ही हनुमान्जी ने अपनी पूँछ में शिवलिङ्ग को लपेटकर उखाड़ना चाहा, किन्तु मूर्ति टस-से-मस नहीं हुई। तब तो हनुमान्जी और भी अधिक दुखी तथा क्षुभित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी अपना समस्त प्रेम बटोरकर अत्यन्त ही मधुर वाणी में हनुमान्जी को समझाते हुए कहने लगे - 'हे कपिवर! मैं तीनो कालों की बातें जानता हूँ। यह जीव कर्मों के अधीन होकर ही जन्मता और मरता है, कर्माधीन होकर अकेला ही स्वर्ग तथा नरक को जाता है। संसारी मान प्रतिष्ठा असत्य और अशास्वत है। तुम मान प्रतिष्ठा के चक्कर में मत फँसो। सच्चिदानन्द स्वरूप स्वयं प्रकाश आत्मा में ही रमण करो। माया मोह तथा द्वन्द्वो से रहित आत्मा के सत्य स्वरूप का ही सदैव चिन्तन करते रहो।''

हनुमान्जी ने पूछा - ''तब प्रभो ! हमारा कर्तव्य क्या है? हम कौन-कौन से काम करते रहें? कौन-कौन कार्यो को करें, कौन - कौन से कार्यो को न करें?''

इस पर भगवान् ने कहा - ''देखो तुम इतने कार्यों को करो -

1- यह धर्म ही सबको धारण किये हुए है जो धर्म की रक्षा करता है, तो रक्षित धर्म उस धर्मात्मा की भी रक्षा करता है। अतः कभी भी स्वधर्म का परित्याग न करना चाहिए। निरन्तर धर्म का ही आचरण करना चाहिए।

2- दूसरों की हिंसा करना यही सबसे बड़ा पाप है, जिनकी देह आदि में ममता होती है, वे ही हिंसा करते हैं, अतः देहादि में ममता मत रखो। किसी प्राणी को कष्ट मत दो।

3- संसारी पुरुषों का सङ्ग करने से संसारी बातें ही सुनाई देती हैं, इससे संसार बन्धन दृढ़ होता है। साधु पुरुषों के यहाँ सदा भगवत् कथाएँ होती हैं, जिनसे संसार बन्धन छिन्न-भिन्न होता है अतः सदा सर्वदा साधु पुरुषों का सेवन करो।

4- ये इन्द्रियाँ ही हमें कुमार्ग की ओर ले जाती हैं संसारी विषयों में फँसा देती हैं, अतः सभी इन्द्रियों का दमन करो।

5- सफेद वस्त्र पर जैसा रङ्ग चढ़ा दो वह वैसे ही रङ्ग का दीखता है। तुम दूसरों के दोषों का चिन्तन करोगे तो वे दोष तुम्हारे मन पर भी अपना रङ्ग छोड़ ही जायेंगे। अतः दूसरों के दोषों की चर्चा से भी दूर रहो।

6- मनुष्य जिसकी सेवा पूजा करता है, उसके गुण उसमें आ ही जाते

है। श्रद्धावान् ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है, अतः श्रद्धाभक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु की अथवा शिवजी की पूजा नित्य नियम से किया करो।

7- असत्य ही हमें अधर्म की ओर ले जाता है। सत्य से बढ़कर कोई भी परम धर्म नहीं है। अतः सदा सर्वदा सत्य ही भाषण करो।

8- मनुष्य संसारी विषयों के लिये ही शोकाकुल बना रहता है मुझे यह नहीं मिला, वह नहीं मिला विषयों के चिन्तन से चित्त विषयी बन जाता है, विषयों का चिन्तन ही अशान्ति उत्पन्न करता है, अतः संसारी विषयों का चिन्तन छोड़कर सदा आत्मा और परमात्मा की एकता के सम्बन्ध में ही सोचो। उसी विषय का अनुभव करो।

इस पर हनुमान्जी ने पूछा - "प्रभो ! हमारे सामने तो इतना बड़ा संसार यह प्रत्यक्ष दीख रहा है, हमें तो यही सत्य दीखता है।"

भगवान् ने कहा - "यह जगत् तुम्हें जैसा प्रतीत हो रहा है, वैसा है नहीं। यह सब भ्रमवश ऐसा दीखता है। भ्रम के कारण कभी सर्प न होने पर भी रज्जु में सर्प का भ्रम होता है, कभी चाँदी न होने पर भी सीप में उसका भ्रम होता है। भ्रम सदा मोह के ही कारण होता है।"

हनुमान्जी ने पूछा - "प्रभो ! यह जीवन नाना योनियों में क्यो भटकता है?"

भगवान् ने कहा - "भैया! इसका मूल कारण भ्रम ही है। भ्रान्त पुरुष का विविध विषयों में राग हो जाता है। एक में राग हुआ तो दूसरे में द्वेष होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि द्वन्द्व का नाम ही संसार है। राग और द्वेष के वशीभूत होकर वे धर्म - अधर्म के चक्कर में फंसते है। इसी कारण धर्म से उच्च योनियाँ, अधर्म से नीच योनियाँ मिलती है। कभी नरक में जाता है कभी स्वर्ग में।"

हनुमान्जी ने कहा - "प्रभो ! जीवन इस शरीर से कैसे सुख का उपभोग कर सकता है?"

भगवान् ने कहा - "अल्प में सुख नहीं, पूर्ण मे ही सुख है। अनित्य में सुख नहीं नित्य में सुख है। यह देह तो अनित्य है। क्षणभंगुर है। तुम सोचो, यह शरीर तो दुःख का आलय है। अशाश्वत है, सदोष है। शरीर में परम सुगन्धित वस्तु चन्दन, अगर, केशर, कपूर तथा कस्तूरी आदि वस्तुएँ लगा लो। शरीर के संसर्ग से वे भी दुर्गन्धयुक्त बन जायेगी। सेब हैं, सन्तरे हैं, अंगूर हैं, इनमें कितनी सुगन्ध आती है। जहाँ शरीर से इनका ससर्ग हुआ दुर्गन्धयुक्त विष्टा बन जाती हैं खस, केवड़ा, गुलाब से संसिक्त सुगन्धित जल कितना मोहक होता है। किन्तु जहाँ शरीर के भीतर गया कि दुर्गन्धयुक्त मूत्र बन जाता है, कैसे

भी इत्र फुलेल लगे स्वच्छ सुन्दर धुले हुए वस्त्र हों जहाँ शरीर में पहिने नहीं कि उनमें पसीनाकी दुर्गन्धि आने लगती है। कपे! तुम सोचो, जिसके संसर्ग से अच्छी वस्तुएँ मैली बन जाती हैं, उसमें तुम सुख की कल्पना कैसे कर सकते हो? देहाध्यास ही तो बन्धन का कारण है। शरीर में सुख नहीं। शरीर का जन्म होना, बालक, युवा, वृद्ध होना, मृत्यु को प्राप्त होना, फिर जन्म लेना, ये सब शरीर के धर्म है। हम अज्ञानवश दूसरों को अपना शत्रु मित्र समझने लगते हैं। आत्मा तो एक ही है। जैसे कोई बहुरूपिया है, वह कभी स्त्री बन जाता है, कभी यात्री, कभी राज्याधिकारी। जो इसका यथार्थ रूप नहीं समझते वे भ्रम में पड़ जाते हैं। जो उसके रहस्य को जानते हैं कि यह एक ही व्यक्ति बहुत से नाम रूप रखकर मनुष्य को भ्रम में डाल रहा है, वे उसके चक्कर मे नहीं आते। वे उसे एक ही रूप में देखते हैं, उसके विभिन्न रूपों में किये हुए विभिन्न कार्य उसे एक से ही प्रतीत होते हैं। अतः कपिश्रेष्ठ ! तुम द्वैधी भाव को छोड़ दो। यही समझो सब आत्मा का ही पसारा है। जब तुम्हारा भ्रम दूर हो जायगा तब तुम्हें दुःख न होगा कि यह मेरा किया हुआ कार्य है तुम दुःख मत करो" कि मेरे लाये हुए शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा न हुई।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "प्रभो ! मेरा दुःख दूर हो गया। अब आप जैसी आज्ञा देंगे वैसा ही मैं करूँगा। इस शिवलिङ्ग का क्या करूँ?"

भगवान् ने कहा - "हमारे स्थापित श्री रामेश्वर लिङ्ग के समीप ही तुम इसकी स्थापना कर दो। ये हनुमतेश्वर के नाम से विख्यात होंगे। जो रामेश्वर धाम में आकर तुम्हारे स्थापित हनुमतेश्वर के दर्शन न करेगा, उसे यात्रा का पूर्णफल प्राप्त न होगा।"

भगवान् की ऐसी आज्ञा पाकर हनुमानजी ने अपनी लाई हुई शिवलिङ्ग की वहीं स्थापना कर दी। वह शिवलिङ्ग अभी तक श्रीरामेश्वरजी के मन्दिर मे श्रीरामेश्वरजी के बराबर में स्थापित है। यात्री उनके दर्शन करके श्रीराम प्रिय हनुमानजी की भक्ति का अनुभव करते हैं।

इस प्रकार हनुमान्‌जी द्वारा श्रीहनुमतेश्वर और श्रीरामजी द्वारा रामेश्वर की स्थापना हो जाने के अनन्तर समस्त वानरी सेना शिवजी की पूजा करके सेतु बाँध लङ्का में पहुँच गये।

स्वामी के कार्य करने में सेवक अपना परम सौभाग्य समझते हैं। जिन सेवकों को स्वामी की सेवा करने में परमानन्द की अनुभूति नहीं होती वे सेवक नहीं वेतन भोगी दास हैं। दास और सेवक में अन्तर इतना ही है कि दास तो कुछ इच्छा रखकर सेवा करता है, किन्तु सेवक को तो सेवा मिल जाय यही उसके लिये पर्याप्त है। उसे सेवा करने में ही अपूर्व सुखानुभूति होती है।

सेवक को सम्मान प्रदान करके स्वामी उसका महत्व बढ़ाते हैं, उसके द्वारा दुष्कर कार्य करके उसके यश का विस्तार करते हैं। उसके गुणों का गान करके उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं और उसके हृदय में तनिक भी अभिमान का अकुर उत्पन्न होने पर उसे जड़ मूल से उखाड़ कर फेंक देते है। स्वामी भी उस सुयोग्य हितैषी चिकित्सक के सदृश कार्य करते हैं, जो रसायन आदि औषधि देकर आतुर को स्वच्छ बनाता है, किन्तु उसके शरीर में कही मास सड़ने लगे तो उसे काटकर फेंक देता है। शरीर का मांस काटने में भी उसकी असीम अनुकम्पा छिपी रहती है। स्वामी अपने सेवक से सभी कठिन - से कठिन कार्य स्वयं करा लेते हैं और उसे कर्त्तव्य का अभिमान भी नही होने देते, यह कैसी विलक्षण बात है।''

श्रीलक्ष्मणजी द्वारा मेघनाद का वध हो गया, रावण अत्यन्त दुखी, चिन्तित और शोकाकुल हुआ। उसी समय शुक्राचार्य उसके समीप गये। उन्होंने पूछा - ''लकेश्वर ! इतने दुखी क्यों हो रहे हो?''

रावण ने कहा - ''महाराज! दुख की बात इससे बढ़कर क्या होगी कि मेरे देखते - देखते मेरी जीवितावस्था में ही मेरी नगरी में आकर ये अल्पवीर्य-जङ्गली भालु बन्दर मेरी पुरी को क्षत - विक्षत कर दें। मेरे आहार ये दो मनुष्य मेरे वीरों को परलोक पठावें। मुझे अपने पुत्र मेघनाद के बल का बड़ा अभिमान था। मैं सोचता था, जब इसने इन्द्र के सहित त्रैलोक्य को वश मे कर लिया है तो इसे कोई मार ही नहीं सकता। मुझे आशा थी, मेरा पुत्र श्रीराम पर विजय प्राप्त कर लेगा। किन्तु मेरी आशा अब निराशा में परिणित होने लगी। लक्ष्मण ने मेरे पुत्र मेघनाद को मार डाला। अब क्या होगा? मुझे तो अब ऐसा प्रतीत होने लगा है, अब राम जीता नहीं जा सकता। मेघनाद के अतिरिक्त मेरे यहाँ ऐसा कौन है जो राम को विजय कर सके?''

शुक्राचार्य ने कहा - ''लंकेश्वर ! तुम्हें पता नहीं। तुम्हारे बहुत से पुत्र समुद्र में बह गये थे। उनमें से एक पुत्र वृक्ष के कोटर में रह गया। वह पाताल मे जाकर राजा बन गया। उसका नाम अहिरावण है। वह देवी काली का अत्यन्त भक्त है। उसका बड़ा वैभव है। यदि वह चाहे तो इन दोनों भाइयो - राम लक्ष्मण को मार सकता है।''

रावण ने पूछा - ''महाराज! वह कैसे आवे?''

शुक्राचार्य ने कहा - ''तुम देवी के मन्दिर में बैठकर उसका स्मरण मात्र करो। वह स्मरण करते ही तुरन्त आ जायेगा।''

रावण ने ऐसा ही किया। स्मरण करते ही अहिरावण तुरन्त वहाँ उपस्थित हुआ। उसने रावण को प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा - ''पिताजी ! मुझे

आपने किसलिये स्मरण किया? मै आपकी क्या सेवा करूँ?"

रावण ने कहा - "भैया ! दो तपसी राजकुमारों ने मुझे बहुत दुखी कर रखा है। वह वानरी सेना लेकर लङ्का पर चढ़ आये हैं उन्होंने मेरे मुख्य - मुख्य वीरों को मार डाला है, तुम्हारे भाई मेघनाद को भी मार डाला है।"

अहिरावण ने पूछा - "उनका आपने क्या बिगाड़ा है?"

रावण ने कहा - "मैं राम की पत्नी को हर लाया हूँ।"

अहिरावण ने कहा - "यह तो आपने उचित नहीं किया। किसी की पत्नी को हर लाना तो अन्याय है। फिर रामचन्द्रजी तो स्वयं साक्षात् नारायण है।"

रावण ने कहा - "भैया ! जो होना था, सो तो हो चुका, अब उचित-अनुचित जो भी हुआ हो। तुम कुछ करो।"

अहिरावण ने कहा - "आप जो भी आज्ञा करें मैं वही करूँगा।"

रावण ने कहा - "इन दोनों भाइयों को किसी तरह हरकर ले आओ। तुम परम शक्ति हो, दोनों को काली देवी के सम्मुख बलि चढ़ा दो।"

अहिरावण ने कहा - "अच्छा, पिताजी! मैं ऐसा ही करूँगा।" यह कहकर वह अर्धरात्रि के समय वानरी सेना के मुख्य शिविर में गया। वहाँ श्रीरामचन्द्रजी को चारों ओर से घेर कर समस्त सामन्त, सैनिक, सेवक सुख से शयन कर रहे थे। द्वार पर वीरासन से बैठे हनुमान्जी पहरा दे रहे थे। अहिरावण ने विभीषण का वेष बना रखा था। वह ज्योंही शिविर में घुसने लगा, त्योंही हनुमान्जी ने कहा - "कौन है? कहाँ जा रहे हो?"

विभीषण वेषधारी अहिरावण ने कहा - "मैं विभीषण हूँ, समुद्र तट पर सन्ध्या करने गया था। मुझे एक आवश्यक कार्य लग गया था। इसी से लौटने में देरी हुई।"

इस पर हनुमान्जी कुछ न बोले। अहिरावण भीतर चला गया। देखा वहाँ लक्ष्मण सुग्रीव, अङ्गद, विभीषण, मयन्द द्विविद, नल, नील, जाम्बवान् तथा अन्यान्य मुख्य - मुख्य यूथ पति श्रीराम को चारों ओर से घेरकर शयन कर रहे हैं लक्ष्मणजी यद्यपि सो नहीं रहे थे, फिर भी वे नेत्र बन्द करके ध्यानमग्न थे। अहिरावण ने श्रीरामचन्द्रजी के मुखारबिन्द की शोभा को निहारा, वह उनके आनन की अद्भुत आभा को एकटक दृष्टि से निहारता रहा। कुछ क्षण को तो वह अपने आपको ही भूल गया। कुछ देर पश्चात् उसे स्मरण आया, अरे मै किस कार्य के लिये आया हूँ। तुरन्त उसने श्रीरामचन्द्र जी, लक्ष्मणजी को उठाया और ऊपर से-ऊपर आकाश में उड़ गया। उसने सोचा- द्वार से गया तो वह वानर फिर छेड़-छाड़ करेगा। ऊपर-ही -ऊपर जाकर वह पाताल में

चला गया। वहाँ उसने दोनों भाइयो को एक स्थान पर रखा दिया। चारों ओर सैनिकों का बहुत भारी पहरा बैठा दिया। यह सब भगवान् की लीला थी, अपने भक्त हनुमान्जी का महत्व बढ़ाना था। वे कुछ भी न बोले । प्राकृत पुरुषों की भाँति चुपचाप बैठे रहे। अहिरावण ने द्वार पर मकरध्वज बानर को बिठा रखा था कि कोई भी भीतर न आने पावे। अब उसने देवी के बलिदान की बड़ी भारी तैयारी की। पूड़ी, मालपूआ, लडडू खीर विशेष मात्रा में बनवायी। धूप, दीप पुष्प आदि की विपुल सामग्री मँगवाई और बलिदान की धूमधाम से तैयारी होने लगी।

इधर जब प्रातःकाल श्रीरामचन्द्रजी को शिविर में नहीं देखा तब सभी रोने लगे। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ हनुमान्जी के पहरे में से दोनों भाइयो को कौन उठा ले गया। जाम्बवान् ने हनुमान्जी से पूछा - "रात्रि में कोई आया तो नहीं था।"

हनुमान्जी ने कहा - "मैं तो रात्रि भर जागता रहा कोई भी अपिरिचित व्यक्ति इधर नहीं आया, हाँ, आधी रात्रि के समय विभीषणजी आये थे।"

विभीषण जी ने कहा - "मैं कब आया था, मैं तो सायंकाल से ही श्रीराम के समीप था।"

हनुमान्जी ने कहा - "सन्देह तो मुझे भी हुआ था कि यह विभीषणजी नहीं है, फिर भी मैंने इस पर विशेष ध्यान नहीं किया। अब लगता है, विभीषणजी के वेश में कोई राक्षस आया था, वही दोनों भाइयों को ले गया है।"

विभीषणजी ने ध्यान लगाकर सोचा विचारा और बोले - "यदि मेरे वेष में आया होगा तो वह निश्चय ही अहिरावण होगा। वह बड़ा बली है, पाताल का राजा है, उसने न जाने कहाँ दोनों भाइयों को छिपा रखा होगा। यह तो हम लोगों के ऊपर बड़ा भारी सङ्कट आ गया।"

हनुमान्जी ने कहा - "आप लोग चिन्ता न करें, मैं अभी पाताल जाता हूँ, जहाँ भी अहिरावण ने श्रीराम-लक्ष्मण को छिपा रखा होगा, वहीं से मैं उन्हें खोजकर लाता हूँ, आप लोग यहीं रहें।" यह कहकर हनुमान्जी बड़े वेग से आकाश मार्ग से जाने लगे। बड़ी दूर तक पाताल में नागलोक की ओर बढ़े। एक स्थान पर बैठकर वे सोचने लगे, किधर जाऊँ। उसी समय एक पेड़ पर गीध और गीधनी बैठकर बातें कर रहे थे गिद्ध की स्त्री कह रही थी - "मै गर्भिणी हूँ, बहुत दिनों से मैंने मनुष्य का मांस नहीं खाया है। मनुष्य के मास खाने की बड़ी इच्छा हो रही है, कहीं से मनुष्य का मांस लाओ।"

गीध ने कहा - "अरे, घबड़ाती क्यों है, अहिरावण आज मेरे सामने

ही रात्रि में श्रीराम-लक्ष्मण को बलिदान देने आया है। अभी उनका बलिदान होगा, तब मैं उन्हीं का मांस लाकर तुझे दूँगा।"

यह सुनकर हनुमान्‌जी को बड़ा हर्ष हुआ, वे गीध के बताये पते पर पाताल लोक में सूक्ष्म रूप से चले गये। वहाँ उन्होंने द्वार पर मकरध्वज बानर को रक्षा करते देखा। जब ये भीतर जाने लगे, तब मकरध्वज ने रोका - "यह कौन सूक्ष्म रूप से चोरी-चोरी जा रहा है, तुम मुझसे छिपकर नहीं जा सकते। मेरा नाम मकरध्वज है, मैं हनुमान्‌जी का पुत्र हूँ, मैं किसी को भी भीतर नहीं जाने दूँगा।

हनुमान्‌जी को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने यथार्थ रूप मे होकर बोले - "भैया! हनुमान् तो मैं ही हूँ। मैंने तो कभी विवाह किया नहीं तुम मेरे पुत्र कैसे हुए?"

उसने हनुमान्‌जी को प्रणाम किया और बोला - "भगवन्! जब आप लङ्का जलाकर समुद्र में स्नान करने गये थे, तब आपके शरीर में बहुत पसीना निकला था, उस पसीने को एक मछली पी गई, उसी से मेरा जन्म हुआ।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "अच्छा, तुम भले मिले। यह तो बताओ, अहिरावण श्रीराम-लक्ष्मणजी को तो नहीं लाया है?'

उसने कहा - "नाम तो मैं जानता नहीं। हाँ इतना जानता हूँ, दो अत्यन्त सुकुमार राजकुमारों को मेरे स्वामी कहीं से लाये हैं। देवी के सम्मुख उन दोनो का अभी बलिदान होने वाला है।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "अच्छा मुझे जाने दो।"

उसने कहा - "महाराज! भीतर तो मैं आपको कदापि न जाने दूँगा। यदि पिता के नाते मैं आपके साथ पक्षपात करूँगा तो मैं धर्मच्युत हो जाऊँगा। विश्वासघात का पाप लगेगा। स्वामी के प्रति कर्तव्य पालन का पातक लगेगा। इसीलिए जब तक आप मुझे युद्ध में हरा न देंगे तब तक मैं आपको भीतर नहीं जाने दूँगा।"

हनुमान्‌जी को शीघ्रता थी, अतः उन्होंने उसको एक मुक्का मारा। वह भी बड़े बाप का बेटा था, वह चूका नहीं दोनों में बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। फिर बाप-बाप ही बेटा-बेटा ही ठहरा। हनुमान्‌जी ने उसी की पूँछ से उसे कसकर द्वार पर बाँध दिया और आप भीतर चले गये।

भीतर जाकर देवी को पैर से दबाकर पाताल में पठाया और आप देवी के रूप में भयङ्कर मुख फाड़कर खड़े हो गये राक्षसों ने समझा देवी आज प्रसन्न हो गई। उनको पता नहीं यह देवी के स्थान पर देवा खड़ा है। सब लोगों ने देवी की विधवत् पूजा की। आज देवी जो भी भोग आता उसे ही प्रत्यक्ष खा

लेती। हलुआ आया चट कर गयी। मालपूए आये सब-के-सब उड़ा गयी, खीर आयी उसे सपोट गयी। तब बलिदान के लिये राम - लक्ष्मण देवी के सम्मुख लाये गये। वे बिना बोले - चाले भोले-भाले बालकों के समान देवी के सम्मुख उपस्थित हुए।

अहिरावण ने हाथ में खड्ग लेकर कहा - "अब तुम्हारा बलिदान होना है। तुम अपने रक्षक का स्मरण कर लो।" श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से कहा "भैया! विपत्ति पड़ने पर सभी लोग मेरा स्मरण करते हैं। हम पर जब-जब विपत्ति पड़ी है हमारी विपत्ति तो हनुमान्‌जी ने टाली है, अतः हम हनुमान्‌जी का ही स्मरण करें।"

लक्ष्मणजी ने कहा - "महाराज! यहाँ हनुमान्‌जी कहाँ हैं?"

भगवान् ने कहा - "हनुमान् तो सर्वत्र हैं। मुझे तो देवी जी के रूप मे ये हनुमान् ही दिखायी पड़ रहे हैं।"

भगवान् का इतना कहना था कि हनुमान्‌जी तुरन्त अपने विशाल रूप से प्रकट हो गये, श्रीराम - लक्ष्मण को उठाकर अपने कन्धो पर बिठा लिया। अहिरावण से खड्ग छीनकर उसी से अहिरावण तथा उसके परिवार वालों को मारकर चलने लगे।

द्वार पर देखा एक वानर बँधा पड़ा है। श्रीरामजी ने पूछा - "हनुमान्! यह तुम्हारे ही रूप का वानर बधा हुआ कैसे पड़ा है?"

हनुमान्‌जी ने कहा - "महाराज! यह द्वार का रक्षक था, अपने को हनुमान् का पुत्र बताता था। भीतर जाने नहीं देता था, इसीलिए मैं इसे बाँधकर यहाँ डाल गया।'

भगवान् ने कहा - "अरे, ठहरो तनिक इस बच्चे को प्यार कर लें।' यह कहकर भगवान् ने उसे बन्धन मुक्त कराया और उसे पाताल लोक का राजा बना दिया। तब हनुमान्‌जी दोनों भाइयों को लेकर आगे बढ़े।

मार्ग में हनुमान्‌जी के मन में तनिक - सा अभिमान का अंकुर उत्पन्न हो गया। वे सोचते जाते थे, मुझे पहुँचाने में तनिक भी बिलम्ब हो जाता तो आज श्रीराम-लक्ष्मण का बलिदान हो जाता। मैं उचित समय पर पहुँच गया। मैने दोनों को बचा लिया।"

भगवान् अपने भक्तों के हृदय में अभिमान को नहीं जमने देते, यही उनकी भक्त वत्सलता है। भक्त यह सोचता जाता था। भगवान् यह सोचते जाते थे कि भक्त के हृदय में तनिक भी अहं आया, रत्ती भर अभिमान का अंकुर उगा कि वह बढ़कर विशाल वृक्ष हो जायेगा। अतः इसे अभी तुरन्त ही उखाड कर फेंक देना चाहिये, जिससे यह बढ़कर विशेष अनर्थ की सृष्टि करने में समर्थ

न हो। यही विचारकर भगवान् ने उसे वहाँ उखाड़ फेंकने का निश्चय किया।

आज बलिदान होने वाला था आज ही वहाँ एक के घर में एक बच्चा उत्पन्न हुआ। उसकी माता ने बच्चे से कहा - "अरे तू बड़ा अभागी है, आज ही तू पैदा हुआ, आज ही तेरे देश के राजा को एक बानर मार गया।"

लड़के ने कहा - "कहाँ है वह बानर?'

उसकी माता ने कहा - "वह जा रहा है, उड़ता हुआ।"

राक्षसों के बच्चे कामरूप होते हैं। पैदा होते ही उड़ने लगते हैं, सब काम करने लगते हैं। वह उड़ा और उसने पैर पकड़कर हनुमान्जी को पटक दिया और भाग गया। हनुमान्जी उठकर फिर उड़ने लगे तो उसने पीछे से आकर फिर उन्हें गिरा दिया। इस प्रकार उसने कई बार किया। तब हँसकर श्रीराम ने कहा - "अरे, हनुमान्जी! आपको क्या हो गया है, एक छोटे से बच्चे को पकड़ नहीं सकते। अजी, जब आवे तब एक पस धूर डाल दो उसी में वह अन्धा हो जायेगा।" हनुमान्जी ने ऐसा ही किया। तब उस लड़के का अन्त करके हनुमान्जी आगे बढ़े। अब उनके मन में जो तनिक - सा अभिमान् आया था, वह गलकर पानी हो गया। उन्होंने समझ लिया जो कुछ होता है, श्रीराम की ही कृपा से होता है, वे ही जिसे चाहें यश दें जिसे चाहें अपयश। जिस काम में वे जिसे निमित्त बनाना चाहते हैं, उसी के अनुसार सब साधन जुट जाते हैं। सदा सर्वदा सब कार्यों में श्रीराम की ही इच्छा अनुभव करनी चाहिए अन्य सब प्राणी तो केवल निमित्त मात्र हैं।"

श्रीराम और लक्ष्मण के लौट जाने पर बानर सेना में सर्वत्र प्रसन्नता छा गयी। सब लोग हनुमान्जी की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे, उनके बल - वीर्य, साहस उत्साह और पराक्रम की सराहना करने लगे।

स्वामी का कार्य पूरा होने पर स्वामी की अपेक्षा सेवक को सबसे अधिक सन्तोष तथा सुख होता है। सेवक का कोई एक रूप नहीं होता, स्वामी को जिससे सुख हो, जिस रूप से स्वामी का कार्य सम्पन्न हो, सेवक वही रूप बना लेता है। जैसे भगवान् विष्णु के गरुड़जी दास, सखा, वाहन आसन, ध्वजा, चाँदनी, व्यजन आदि जब जैसी आवश्यकता होती है।

सेवक को सबसे अधिक सुख तब होता है, जब स्वामी कृतकार्य होकर सकुशल अपने प्रिय परिकर में आकर मिल जाते हैं। परिकर प्रभु से पृथक् नही होता, वह तो स्वामी का अभिन्न अङ्ग हैं। परिकर की पूर्णता ही प्रेम की पराकाष्ठा है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने परिकर सहित माता अञ्जनी से अनुमति लेकर पुनः पुष्पक विमान में आ बैठे और बात की बात में तीर्थराज प्रयाग

की परम पावन भूमि में पहुँच गये। त्रिवेणी मे स्नान करके भगवान् महर्षि भरद्वाजजी के आश्रम में गये। प्रभु ने मुनि की चरण वन्दना की तथा महर्षि ने अनुज तथा वैदेही सहित श्रीरामचन्द्रजी का अत्यधिक आदर किया। उसी समय भगवान् ने हनुमान्जी को बुलाया और उनसे कहने लगे - "पवनतनय! तुम अत्यधिक बुद्धिमान् हो, तुम्हें देश काल का परिज्ञान है, मेरे मनोगत भावो को तुम भली - भाँति समझते हो। आज मेरी बनवास की अवधि का अन्तिम दिवस है, यदि मैं कल सूर्योदय के पूर्व अवध न पहुँचा तो मेरा भाई भरत प्राणों का परित्याग कर देगा, तुम जाकर उसे मेरे आगमन का समाचार दो, जिससे उसे धैर्य बंध जावे और वायुनन्दन! एक बात और है, तुम देखना भरत के मन में राज्य करते-करते तनिक भी राज्य की स्पृहा हो गई हो तो उसे भी तुम समझना, मेरा भाई यदि राज्य करना चाहे तो मैं जीवन भर वन मे बिता सकता हूँ। परन्तु मेरे भाई के हृदय में राज्य की स्पृहा होना असम्भव है।"

श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर हनुमान्जी आकाश मार्ग से उड़कर अयोध्यापुरी की ओर चले। इधर भरतजी परम व्याकुलता से एक-एक दिन गिन रहे थे, राम चौदह वर्ष के लिये वन गये हैं, ये चौदह वर्ष भरतजी ने कैसे बिताये इसे वे ही जानते थे। उनका एक-एक क्षण युग के समान बीतता था। आज राम के बनवास की अवधि का अन्तिम दिन था। भरत जी बार-बार व्याकुलता के साथ दक्षिण दिशा की ओर निहार रहे थे। कल से ही उन्होंने सैकड़ों अश्वारोही सैनिक श्रृंङ्गवेरपुर से अवध तक लगा रखे थे कि श्रीराम ज्योंही गङ्गातट पर पहुँचें मुझे तुरन्त इसकी सूचना दी जाय।

उनके कान उसी ओर लगे हुए थे पत्तों की तनिक खड़खड़ाहट हो, वे चौंक पड़ते उधर ही देखने लगते। किसी अश्वारोही के अश्वों की टाप सुनाई देते ही वे उठकर खड़े हो जाते वह जब आगे चला जाता तो निराश होकर पुन. बैठ जाते। वे सोचते यदि अब तक श्रृङ्गवेरपुर ही न पहुँचे तो कल सूर्योदय तक कैसे आ सकते हैं। श्रीराम ने मुझे पापी अपराधी समझ कर त्याग तो नहीं दिया। अपराधी तो मैं हूँ ही। मेरे ही कारण तो भगवान् श्रीराघव को, सीताजी तथा लक्ष्मण को इतना कष्ट उठाना पड़ा। मैं तो अपराधों की खानि हूँ, किन्तु श्रीराम तो करुणा के सागर हैं, उनकी दयालुता के कारण ही मैं अभी तक प्राणों को रखे हुए हूँ, यदि कल सूर्योदय तक वे नहीं आये तो मैं निश्चय ही प्रज्वलित अग्नि में अपने प्राणों को विसर्जित कर दूँगा।

भरतजी इस प्रकार सोच ही रहे थे कि हनुमान्जी ब्राह्मण के वेष में उनके सम्मुख उपस्थित हुए, उन्होंने भरतजी से कहा - "जय जय श्रीसीताराम।"

अपने स्वामी का श्रुत मधुर परम प्रिय नाम सुनकर भरत जी के रोम-रोम

खिल उठे। उन्होने खड़े होकर कहा आइये। विप्रवर! आपका स्वागत है मैं आपक क्या सेवा करूँ?''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''प्रभो ! आप जिन श्रीराम का निरन्तर चिन्त करते रहते हैं, वे लङ्का से रावण को मारकर श्रीलक्ष्मण और माता वैदेही सहि आ गये है।''

''राम आ गये हैं'' यह सुनते ही भरत भौचक्के से होकर चारों ओर देख लगे। ''राम आ गये हैं, राम आ गये हैं'' इन शब्दों ने मानो भरतजी के क कुहरों में अमृत उड़ेल दिया हो। वे बोले - ''विप्रवर ! श्रीराम, सीता औ लक्ष्मण सहित सकुशल आ गये हैं? कहाँ है? वे यहाँ से कितनी दूर हैं? क्य तुमने उन्हें अपनी आँखों से देखा है वे कैसे आ रहे हैं? पैदल या किसी यान से? मैं अभी चलकर उनका स्वागत करूँगा? तुम भैया! ऐसा शुभ सम्वाद सुनाने वाले कौन हो? तुमने मेरे साथ बड़ा उपकार किया मैं तुम्हें इसके बदले मे क्या दूँ आप मुझे अपना परिचय तो दें?''

हनुमान्‌जी भरतजी की व्यग्रता देखकर उनके मुख से एक साथ इतने प्रश्न सुनकर चौंक पड़े और अत्यन्त ही विनीत भाव से बोले - ''प्रभो! मैं यथार्थ मे ब्राह्मण नहीं। मैंने तो ब्राह्मण का वेष बना लिया है। मैं वायु का पुत्र हनुमान् हूँ, मैं वानर हूँ, श्रीरामचन्द्रजी के समीप से मैं अभी आ रहा हूँ।''

श्रीरामचन्द्रजी के समीप से आ रहा हूँ इतना सुनते ही श्रीभरत जी बोले- ''अच्छा तुम हनुमान् हो? अञ्जनानन्दवर्धन हो वायुतनय हो? केशरीनन्दन हो। तुम ही तो उस दिन सञ्जीवनी बूटी ले जा रहे थे?''

हनुमानजी ने कहा - ''हाँ प्रभो! मैं वही बानर हनुमान् हूँ।''

भरतजी ने कहा - ''उस दिन तो भैया पूँछ थी?''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''हाँ प्रभो! वह मेरा यथार्थ रूप था आज बनावटी वेष बना रखा है?''

भरतजी ने कहा - ''बनावटी वेष में कहीं तुम बात भी तो बनावटी नहीं बता रहे हो?'

हनुमान्‌जी ने कहा - ''देव ! वेष भले ही बनावटी हो किन्तु बात मै यथार्थ ही कह रहा हूँ, श्रीरामचन्द्र आ गये हैं।''

भरतजी ने कहा - ''यदि आ गये हैं तो मुझे दिखाई क्यों नहीं देते। वे है कहाँ?''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''वे अभी तीर्थराज प्रयाग मे हैं।''

''प्रयाग में हैं तो कल तक कैसे आ सकेंगे प्रयागराज यहाँ से बहुत दूर

है। वे लङ्का से कैसे आये?''

हनुमान् जी ने कहा - ''प्रभो! वे लङ्का से अपनी प्रिया, भाई तथा सकल परिकर के सहित पुष्पक विमान से आये हैं पुष्पक विमान की गति मन के वेग के समान है, वह सङ्कल्प करते ही उसी क्षण पहुँचा देता है। श्रीरामचन्द्रजी के आप कल दर्शन अवश्य करेंगे। मैं श्रीरामचन्द्रजी के साथ ही लङ्का से आया हूँ।''

भरतजी ने कहा - ''अच्छा, श्रीराम ने रावण को मार दिया। श्रीराम अपने परिकर सहित सकुशल तो हैं, वे कल अवश्य आ जायेंगे न? क्या मैं कल श्रीराम के दर्शनों से तृप्त हो सकेंगे?''

हनुमान् जी ने कहा - ''श्रीराम कल अवश्य आ जायेंगे।''

अब मुझे जाने की आज्ञा दें। कल मैं श्रीराम को लेकर अवश्य ही आ जाऊँगा।''

भरतजी ने कहा - ''भैया हनुमान्! तुम मेरे बहुत प्यारे हो, तुमने मुझे इतना सुखद समाचार सुनाया है कि इससे सुन्दर सन्देश समाचार [illegible] हो ही नहीं सकता। भैया तुम श्रीरामचन्द्रजी से कहना - यदि कल सूर्योदय तक मुझे राम के दर्शन न हुए तो निश्चय ही प्रज्वलित अग्नि में जल कर अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा।''

हनुमान्जी ने कहा - ''प्रभो! आप धैर्य धारण करें मेरी बात पर विश्वास करें कल आपको सूर्योदय के समय वैदेही, लक्ष्मण और रामकिङ्करों के सहित श्रीराघवेन्द्र के अवश्य ही दर्शन होंगे। श्रीराम मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, अतः अब मुझे जाने की आज्ञा प्रदान करें।''

इतना कहकर तथा भरतजी को प्रणाम करके हनुमान्जी आकाश मार्ग से उड़कर महामुनि भरद्वाज के आश्रम प्रयाग राज में पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने भरतजी के सब समाचार सुनाये। भरतजी के समाचार सुनकर श्रीरघुनाथ रोने लगे और भरतजी के गुणों का बखान करने लगे।

भरतजी रामागमन के समाचार से अत्यन्त ही आकुलित हुए, उत्कण्ठा के कारण उन्हें रात्रि भर नींद नहीं आई। वे निरन्तर श्रीराम के ही सम्बन्ध में सोचते रहे। वे रात्रि भर श्रीरामचन्द्रजी के स्वागत के सम्बन्ध में सोचते रहे। उन्होंने अरुणोदय के पूर्व ही समस्त सैनिकों और प्रजा के लोगों को जिधर से श्रीराम आने वाले थे उधर ही खड़ा कर दिया। स्वयं श्रीराम की पादुकाओं को सिर पर रखकर रोते-रोते श्रीराम के स्वागत के लिये चले। उनके [illegible] भारी हो रहा था, श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन न होने पर [illegible] हनुमान् जी ने कहीं मेरे प्राणों को बचाने के लिये ही तो [illegible] नहीं कहा?

भरतजी ने देखा प्राचीदिशि में ज्यों ही मरीचमाली भुवन भास्कर भगवान् सूर्य की पहिली किरण फूटी त्यों ही उन्हें दक्षिण दिशा से द्वितीय सूर्य के समान पुष्पक आता हुआ दिखाई दिया।

पुष्पक विमान से श्रीरामचन्द्रजी को, सिर पर चरण पादुका रखे, अत्यन्त कृशगात भरतजी दिखाई दिये। उन्हें देखकर वे रोते-रोते हनुमान्‌जी तथा अन्यान्य अपने सेवकों से बोले - "देखो, यही मेरा भैया भरत है इसने राज्य करते हुए भी जैसी तपस्या की है, वैसी न आज तक किसी ने की है और न भविष्य मे कोई कर सकेगा।"

इतना कहते ही पुष्पक नीचे उतरा। श्रीरामचन्द्रजी दौड कर ज्यों ही भरतजी से मिलने चले त्यों ही भरत लकुटी की भाँति भूमि पर लेट गये। श्रीरामचन्द्रजी ने अपने हाथों से ही उन्हें उठाया और उनकी धूलि झाड़ी फिर सभी परस्पर प्रेम से मिले।

अब पुष्पकारूढ़ श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन कीजिए। पुष्पक को नीचे उतारकर भगवान् ने शत्रुघ्न को भी उसमें बिठा लिया। अब तो पुष्पक में स्थित सिंहासन पर श्रीसीताजी के सहित श्रीरामजी विराजमान हो गये। श्रीभरतजी ने भगवान् की चरण पादुकाओं को श्रद्धा सहित शीश पर धारण किये हुए थे, विभीषणजी चँवर डुला रहे थे। स्वयं साक्षात् श्रीहनुमान्‌जी सौ तान वाले श्वेत छत्र को भगवान् के ऊपर लगाये हुए थे, सुग्रीव व्यजन डुला रहे थे। शत्रुघ्नजी धनुष लिये हुए थे, श्री जनकनन्दिनी भगवती वैदेही तीर्थ जल वाले कमण्डलु को लिये हुए थी। अङ्गदजी खड्‌ग लिये हुए थे। ढाल को भालु पति धारण किये हुए थे। इस प्रकार रथारूढ़ राम को देखकर समस्त पुरवासी तथा जनपद वासी प्रफुल्लित तथा प्रमुदित हो रहे थे, अब भगवान् की पुष्पकारूढ़ झाँकी को कुछ काल करते रहो। आगे की कथा फिर वर्णन करेंगे।

जिस पर राम की कृपा है, उस पर सभी कृपा करते हैं, जो राम का प्रिय है वह सबका प्रिय है। जिसको राम ने अपना लिया, वह सभी का अपना हो गया। राम की ही प्रसन्नता जग की प्रसन्नता है। राम विमुख होना ही सबका अप्रिय बनना है। राम सुख के सदन हैं, आनन्द के धाम हैं, शोभा के अभिराम है। राम ऐसा कल्पतरु हैं कि उसकी सुखद शीतल छाया में सभी शोक सन्ताप शान्त हो जाते हैं।

श्रीरामचन्द्रजी राजा हो गये। सभी सुखी हुए। सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। रामराज्याभिषेक के अवसर पर सभी को उपहार बाँटे गये। श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव, अङ्गद, विभीषण, नल, नील गयन्द, जाम्बवान तथा अन्य मुख्य-मुख्य भक्तों को अपने कर कमलों द्वारा उपहार देकर सम्मानित किया। हनुमान्‌जी

को कुछ भी नहीं दिया। एक अत्यन्त बहुमूल्य मणियों का दिव्य हार श्रीसीताजी को देते हुए श्रीरामचन्द्रजी ने कहा - "देवि ! जो तुम्हें सबसे प्रिय लगे, उसे यह हार दे दो।"

जानकी ने कहा - "महाराज! आप हमारे पुत्रों में भेद - भाव डलवाना चाहते हैं क्या? माता के लिये तो सभी पुत्र बराबर हैं।"

भगवान् ने कहा - "बराबर कैसे हैं। यदि बराबर ही होते तो शास्त्रों मे सुपुत्र, कुपुत्र का भेद क्यों होता?"

माता ने कहा - "महाराज! माता के लिये पुत्र तो सब बराबर ही है। जैसे किसी भी उँगली में सुई चुभोओ पीड़ा तो बराबर ही होगी। किन्तु कार्यों को देखकर उनमें छोटी - बड़ी का भेद होता है। माता की ममता तो सभी पुत्रों पर समान ही होती है, किन्तु सद्‌गुणों के कारण भक्ति के कारण भेद-भाव हो जाता है, सो वह भेद गुणकृत है।"

भगवान् ने कहा - "यही तो मेरा अभिप्राय है। तुम जिसे सबसे अधिक गुणों में श्रेष्ठ समझती हो, जिसे अत्यन्त प्रिय भक्त मानती हो उसे ही इसे दे दो।"

जानकी जी ने कहा - "महाराज! हमारे तो ये सभी भक्त हैं, सभी गुणी है।"

श्रीरामजी को आज सभा में चौल करनी थी, अतः वे बोले - "फिर भी उन्नीस - बीस का अन्तर तो होता ही है। अब तुम सङ्कोच कर रही हो। सङ्कोच मत करो, तुम्हें जो सर्वश्रेष्ठ जँचे उसे दे दो।"

अब सीता माता क्या करतीं, बड़ी देर तक वे उस हार को हाथों मे लिये रहीं सभी बड़ी उत्सुकता से माता की ओर देख रहे थे। सबकी इच्छा उस हार को पाने की हो रही थी। हार की नहीं इस सर्वोत्तम सम्मान की इच्छा थी। सभी माता जी के श्रीमुख की ओर निहार रहे थे कि किस सौभाग्यशाली की ओर हाथ बढ़ता है। सब तो उत्सुक हो रहे थे किन्तु हमारे हनुमान्‌जी निर्विकार निस्पृह बने निर्निमेष दृष्टि से नवनीरदल शोभा सदृश नीलमणि श्रीराघव के श्रीमुख की ओर निहार रहे थे। माता जी ने हनुमान्‌जी को बुलाकर उन्हें यह हार देना चाहा। हनुमान्‌जी ने अत्यन्त ही श्रद्धाभक्ति सत्कार सहित इस उपहार को ग्रहण किया और उसे प्रेमपूर्वक पहिन लिया। हार के पहिनने से हनुमान्‌जी की बड़ी शोभा हुई। सभी सभासद प्रमुदित हुए, सभी समझते थे शास्त्रों में जो तेज, धैर्य, यशा, दक्षता, सामर्थ्य नय, विनय, पौरुष विक्रम और बुद्धि ये दस गुण हनुमान्‌जी में पूर्ण रूप से हैं और इनकी भक्ति के विषय में तो कहना ही क्या? शत्रु भी इनकी भक्ति का लोहा मानते

हो रही है।

यह देखकर सभी को महान् आश्चर्य हुआ। श्रीरामचन्द्र जी ने हनुमान्‌जी का गाढ़ा लिङ्गन किया। भगवान् का आलिङ्गन पाते ही पवनतनय स्वस्थ और निरोग हो गये।

इस प्रकार हनुमान्‌जी की महिमा प्रकट करके भगवान् ने उन्हे सर्वप्रिय बना दिया। सभी लोग समझ गये कि हनुमान् जी बाहर भीतर से राममय है। श्रीरामचन्द्रजी के ये परम प्यारे सेवक हैं, जो भी कठिन-से-कठिन सेवा होती है, हनुमान् जी को ही सौंपी जाती है और वे इसे बड़े उत्साह से करते है। हनुमान्‌जी के वाह्य प्राण ही हैं।

लक्ष्मणजी, भरत तथा शत्रुघ्नजी इनका बहुत सम्मान करते हैं, ये सबकी बात मानते हुए भी एकमात्र श्रीरामचन्द्रजी की छोटी-से-छोटी सेवा स्वयं ही करना चाहते हैं। इन्हें तनिक भी सङ्कोच नहीं होता कि यह सेवा छोटी है। सेवा में क्या छोटा बड़ा सेवा तो सेवा ही है, स्वामी को जिससे सुख मिले प्रसन्नता हो, वही सर्वोत्तम सेवा है। इसलिये स्वामी सभी सेवाओं में इन्हें निमित्त बनाते हैं।

कौशल्या आदि मातायें इनका बड़ा ध्यान रखती हैं। श्री रामचन्द्रजी के प्रसाद पा लेने के पश्चात् उनके थाल के अधिकारी ये ही माने जाते हैं। माता कौशल्या इन्हें बड़े प्रेम से अपने सामने बिठाकर प्रसाद पवाती हैं।

जगज्जननी जानकीजी के तो ये सबसे लड़ैते लाल हैं, इनका इनके ऊपर पूर्ण वात्सल्य भाव बना रहता है, वे इनकी सब बातों को मानती है। कहना चाहिए माता ने अपनी समस्त ममता इन्हीं पर उड़ेल दी है।

प्रजाजनों का तो कहना ही क्या? ये अवधपुरी के कोतवाल ही ठहरे। सबकी देख-रेख करते हैं। प्रजाजन इन्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करते है। किसी को श्रीरामचन्द्रजी तक जाने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती, सभी कार्यों को ये ही सलटा देते हैं।

राम नाम रटने वालों की तो ये सदा सर्वदा रक्षा करते रहते हैं। राम-नाम का जप वाले इन्हें प्राणों से भी प्रिय हैं। इस सम्बन्ध की एक घटना प्रसिद्ध है उसी समय से इन्होंने निश्चय कर लिया है कि राम-नाम को कोई शुचि अवस्था में अथवा अशुचि अवस्था में कैसे भी रटे उसकी रक्षा ये सर्वदा करते रहते हैं।

कोई एक महात्मा थे। उन्होंने एक भक्त से कहा - "भैया, कुछ देर राम-नाम जपा करो। मनुष्य शरीर बारम्बार नहीं मिलता है।

उसने कहा "महाराज! इच्छा तो है किन्तु यह गृहस्थी का माया जाल

ऐसा है कि हमें तनिक भी अवकाश नहीं मिलता।" यह कहकर उसने प्रातःकाल के रात्रि के १२ बजे तक अपनी समस्त दिनचर्या बता दी।

बहुत सोच-समझकर महात्मा ने कहा - "अच्छा, सायं प्रातः तुम जो बगीची जाने पर शौच जाते हो उसी समय राम- राम रटा करो।"

गृहस्थ ने कहा - "महाराज! शौच के समय तो बोलना भी नहीं चाहिए, भाषण भी उस समय निषेध है, फिर राम नाम का जप कैसे हो सकता है।"

महात्मा ने कहा - "राम-नाम मे कोई दोष नहीं, वह तो शुचि, अशुचि सभी समय में हो सकता है। तुम सौच होते समय भी राम-नाम रटा करो।"

महात्मा की बात उस गृहस्थ ने मान ली। प्रातः बगीची से लोटा लेकर वह जब सौच को जाय और जब तक लौट आवे, तब तक वह राम-नाम रटता रहता था।"

एक बार वह शौच होते समय राम-राम रट रहा था कि उधर से हनुमानजी निकले। हनुमान्‌जी को बड़ा क्रोध आया। यह मूर्ख शौचावस्था मे मेरे स्वामी का नाम रट रहा है उन्होंने उसे एक झापड़ मारा और चले गये। सायंकाल जब वे भगवान् के श्रीअङ्ग की सेवा करने लगे, उन्होंने देखा भगवान् के श्रीअङ्ग पर किसी के थप्पड़ की पाँचों ऊँगली उछली हुई है, स्थान नीला पड़ रहा है।

हनुमान्‌जी चकित हो गये, उन्होंने सम्भ्रम के सहित पूछा - "प्रभो! यह किस दुष्ट ने प्रहार किया है, आप मुझे उसका नाम बता दें, मैं उसे इसका दण्ड दूँगा?"

भगवान् ने कहा - "अरे कुछ नहीं ऐसे ही है, छोड़ो इस बात को।" किन्तु हनुमान्‌जी कब मानने वाले थे, उन्होंने कहा - "नहीं प्रभो! मुझे बताना ही पड़ेगा। मुझे उसका नाम भर बता दें।"

जब हनुमानजी ने बहुत आग्रह किया, बारम्बार मना करने पर भी न माने तो भगवान् ने कहा - "अरे भैया ! तुम नहीं मानते हो तो मैं उसका नाम बताये देता हूँ। उसका नाम हनुमान् है।"

अत्यन्त आश्चर्य के साथ भयभीत होते हुए हनुमान्‌जी बोले - "भगवन्! भला मैं कभी ऐसा दुस्साहस कर सकता हूँ।"

भगवान् ने कहा - "छोड़ो भी इस बात को, तुमने नाम पूछा था, मैंने नाम बता दिया।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "नहीं प्रभो ! मुझे बताना ही होगा। भला मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ।"

भगवान् ने हँसकर कहा - "अरे भैया! तुमने जान-बूझकर थोड़े ही किया है, अनजान में किया है, अनजान का अपराध तो क्षम्य हो जाता है।"

हनुमान् जी ने कहा - "महाराज ! मुझे स्मरण नहीं आता, मुझसे जान मे अनजान में यह अपराध कब बन गया?"

भगवान् ने कहा - "देखो भैया! वह गृहस्थ प्रेम से मेरा नाम रट रहा था, उसे और समय ही नहीं था, तुमको यह बात बुरी लगी। तुमने उसे एक झापड़ मारा, अब सोचो तुम्हारे एक झापड़ लगने से सहस्रों हाथियों के बल वाला रावण मूर्छित हो गया था, उस बेचारे की क्या दुर्दशा होती तुम्हारा थप्पड़ लगने से। अतः थप्पड़ को मैंने अपने शरीर पर झेल लिया।"

यह सुनकर हनुमान्जी लज्जित हुए। उसी दिन से उन्होंने प्रतिज्ञा की जो राम-नाम को शुचि, अशुचि किसी भी अवस्था में रटेगा, उसकी मैं रक्षा करूँगा। इसी कारण ये राम नाम के रसिक हनुमान्जी सबके प्रिय बन गये।

इनके जितने मन्दिर है उतने स्यात् इनके स्वामी श्रीराम के भी न हों। क्योंकि राम मन्दिरों में तो ये रहते ही हैं। वन, बीहड़, दुर्ग, नगर जहाँ भी भय का स्थान होता है, ये निर्भय होकर वहाँ डट जाते हैं।

भगवान् को भोलापन अत्यन्त प्रिय है, भोले व्यक्तियों से विनोद करने मे सभी को बड़ा आनन्द आता है। जिनकी दृष्टि में समता है किसी का जो बुरा सोचते ही नहीं, जो सभी की बातों पर निश्चल भाव से विश्वास कर लेते हैं, वे ही भोले-भाले कहलाते है। हनुमान्जी वैसे तो समस्त शास्त्रों में पारङ्गत है, किन्तु हैं बड़े भोले-भाले इसीलिये इनसे सब प्रसन्न रहते हैं।

एक दिन हनुमानजी का जन्म दिवस था माता कौशल्या जी के तो ये अत्यन्त लाड़ले लाल थे। इनके जन्म दिवस को माताजी बड़ी धूम-धाम से मनाती थी। गीत गवाती थीं, सबको भोजन कराती थीं। इनका जन्म दिवस मङ्गल है, इन्हे भगवान् की सेवा करने का जितना सुख मिलता है, उतना किसी काम मे सुख नहीं मिलता। सेवक सेवा करते-करते ढीठ हो ही जाता है, यह स्वाभाविक ही है। हनुमान्जी भी किसी से डरते नहीं थे। एक तो स्वयं महावीर, दूसरे राम के प्रिय सेवक, तीसरे हृदय के बड़े भोले। एक दिन हनुमान्जी भगवान् की चरण सेवा कर रहे थे। उनके जन्म - दिवस के पहिले दिन की बात है। सेवा करते-करते उन्हें बड़ा ही आनन्द आ रहा था। माता जानकीजी बारम्बार हनुमान्जी को बाहर जाने को कह रही थीं, किन्तु आधी रात्रि तक ये सेवा करते रहे बहुत कहने पर भी उठे नहीं।

तब माता जानकी ने कहा - "अरे, भैया! अब जाओ, बड़ी देर हो गयी है, सोने भी दोगे कि नहीं।"

हनुमान्जी ने कहा - "मैं तुम्हें सोने को कब मना करता हूँ, तुम आनन्द से सोओ। आज तो मैं रात्रि भर सेवा करूँगा।"

माता मन ही मन मुस्करायीं और बोलीं- "तू तो निराबानर ही है, देख रात्रि में भगवान् के पास कोई रह नहीं सकता।"

हनुमान्जी ने कहा - "जब कोई भी नहीं रह सकता तो आप क्यों रहती है?"

भगवान् मन ही मन दोनों की बातें सुनकर हँस रहे थे। जगज्जननी ने कहा - "अरे, तू तो कोरा बन्दर ही है। मेरी बात दूसरी है।"

हनुमान्जी ने कहा - "दूसरी क्यों है, आप में क्या विशेषता है?"

अब सीताजी क्या कहतीं, उन्होंने कहा - "तू यहाँ से उठ तो सही, मैं बताती हूँ विशेषता।"

हनुमान्जी उठकर खड़े हो गये। उत्तर भारत में सौभाग्यवती मातायें अपने माँग में सिन्दूर लगाती हैं। दक्षिण में सिन्दूर के स्थान पर मातायें मङ्गलसूत्र पहिनती हैं, जिसे विवाह के समय पहिनाया जाता है। उत्तर में विवाह के समय पति सिन्दूर दान करता है। सौभाग्यवतियों का सौभाग्य चिह्न सिन्दूर है। माताजी ने अपने सिन्दूर की ओर संकेत करके कहा - "मुझमें यही विशेषता है, इसी के आधार पर मैं भीतर रह सकती हूँ।"

यह सुनकर हनुमान्जी बाहर चले गये। दूसरे दिन बाजार में गये। एक पसारी से पूछा - "तुम्हारे यहाँ सिन्दूर है क्या?"

अवध वाले तो सभी हनुमान्जी को सबसे अधिक प्यार करते थे। पंसारी ने कहा - "महाराज! बोरा भरा सिन्दूर रखा है आप चाहे जितना ले जाइये।"

ये वहाँ से पूरी-की पूरी बोरी उठा लाये। एक बड़े पात्र में तैल ले आये। तैल और सिन्दूर मिलाकर उन्होंने उसे अपने सम्पूर्ण शरीर पर पोत लिया। सर्वाङ्ग में सिन्दूर पोतकर राजदरबार में पहुँचे। वहाँ भगवती सीता सहित श्रीरामचन्द्रजी सिंहासन पर विराजमान थे। आज हनुमान्जी को इस विचित्र वेष में देखकर सभी सभासद हँस पड़े। परन्तु उनसे पूछने का किसी को साहस नही हुआ। श्रीरामचन्द्रजी भी बहुत हँसे माताजी भी हँसने लगी। तब भगवान् ने पूछा - "हनुमान्जी! आज तो बड़ा विचित्र वेष बना रखा है। सम्पूर्ण शरीर मे सिन्दूर क्यों पोत रखा है?"

हनुमान्जी ने भोलेपन से कहा - "महाराज! सेवा का अधिकार पाने के लिये किया है। जब माताजी एक सिन्दूर की रेखा लगाने पर आपकी सेवा मे सदा रह सकती है तो मैंने तो एक बोरी सिन्दूर लगा लिया है अब तो

मुझे सदा सेवा में रहने का अवसर मिल ही जायेगा।''

यह सुनकर सीताजी अञ्चल से अपना मुख ढापकर हँसने लगी। श्रीरामचन्द्रजी भी हँस पड़े। हँसते-हँसते श्रीरामचन्द्र जी ने कहा - ''आज मङ्गलवार है। मङ्गलवार के दिन जो हनुमान्‌जी की प्रतिकृति को तेल और सिन्दूर का चोला चढ़ावेगा उसकी समस्त कामनायें मैं पूरी कर दिया करूँगा।'' बस उसी दिन से मूर्ति पर तैल सिन्दूर का चोला चढ़ने लगा। ऐसे हैं ये हमारे सीधे-साधे, भोले-भाले कौतूहल प्रिय सैलानी सेवक। सेवा के सम्बंध की कुतूहलपूर्ण एक कथा और भी सुन लीजिए -

राम अपने भक्तों को बड़ाई भी प्रदान करते हैं और उनमें अभिमान न आने पावे इसका भी सदा ध्यान रखते हैं। राम कृपा से कोई भी कार्य दुर्लभ नहीं है। राम काज में सदा विजय-ही-विजय है, कहीं पराजय - सी प्रतीत हो तो समझो भगवान् हमारे भीतर उदित गर्व का नाश कर रहे हैं। इसीलिए राम के काज को सुख-दुख, लाभ-अलाभ तथा जय-पराजय का विचार किये बिना ही करना चाहिए।

राम से बढ़कर उनका नाम है, स्वामी से बड़ा सेवक है, भगवान् से बडा भक्त है, भगवान् की प्रतिज्ञा से बढ़कर भक्त की प्रतिज्ञा है। भक्त की विजय पर भगवान् को परम हर्ष होता है, क्योंकि अपना भक्त अपने से बढ़कर होता है।

एक दिन भगवान् श्रीराघवेन्द्र से हनुमानजी ने कहा - ''प्रभो! बहुत दिन हो गये हैं, आपकी आज्ञा हो तो मैं अपनी माताजी के दर्शन कर आऊं।''

भगवान् ने कहा - ''भला इसके लिये भी कुछ पूछना है, अवश्य जाओ। माँजी को हमारा भी प्रणाम कहना। कब जा रहे हो?''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''राज भोग के अनन्तर ही जाने की सोच रहा हूँ।''

भगवान् ने कहा - ''अच्छी बात है, चले जाना।''

अभी हनुमानजी गये नहीं थे, जाने की तैयारी में ही थे तभी काशी का राजा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के दर्शनों को आ रहा था। मार्ग में नारदजी मिल गये। नारदजी को इधर की उधर लगाने में, दो आदमियों को परस्पर लडा देने में ही आनन्द मिलता है। नारदजी ने राजा से पूछा - ''कहाँ जा रहे हो भैया?''

राजा ने कहा - ''भगवन्! मैं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी की राजसभा में उनके दर्शनों को जा रहा हूँ।'' नारदजी ने कहा - ''बहुत सुन्दर बात है, किन्तु हमारी एक बात मानोगे?'

हाथ जोड़कर राजा ने कहा - "भगवन्! इस भूमण्डल में ऐसा कौन है, जो आपकी बात को न माने। आप तो देवता, असुर सभी के समान रूप से बन्दनीय पूजनीय तथा माननीय है। आज्ञा कीजिये मुझे क्या करना होगा?"

नारदजी ने कहा - "तुम एक काम करना। सभा में जाकर भगवान् राम को तो श्रद्धा भक्ति के साथ प्रणाम करना किन्तु उनके समीप सिंहासन पर बूढे-बूढ़े दाढ़ी वाले दुबले-पतले से जो विश्वामित्र महामुनि बैठे हों, उनको प्रणाम मत करना।"

राजा ने कहा - "क्यों भगवन्! यह तो मर्यादा के विरुद्ध है।"

नारदजी ने कहा - "क्यों का उत्तर हम पीछे देंगे। अब तो तुम हमारी बात मान लो।"

राजा ने कहा - "जैसी आपकी आज्ञा।"

यह कहकर राजा राजसभा में चला गया। वहाँ जाकर उसने भगवान् को प्रणाम किया किन्तु विश्वामित्रजी को प्रणाम किये बिना ही बैठ गया।

जिन लोगों से हम सम्मान की आशा रखते हैं, यदि वे जानबूझकर हमारा सम्मान न करें, हमारी उपेक्षा कर दें तो हमारे मन में उसके प्रति रोष होना स्वाभाविक है। विश्वामित्रजी को यह बात बहुत बुरी लगी। सबके सम्मुख सभा मे तो उन्होंने कुछ नहीं कहा। पीछे उन्होंने श्रीराम से कहा - "रामभद्र! तुम्हें लोग मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं, यदि तुम्हारी ही सभा में मर्यादा भङ्ग हो तो कैसे काम चलेगा?"

भगवान् ने कहा - "क्या बात है महाराज! आज्ञा करो कौन-सी मर्यादा भङ्ग हो गयी?"

विश्वमामित्रजी ने कहा - "आपने देखा नहीं। वह राजा आया उसने भरी सभा में आपको तो प्रणाम किया किन्तु मुझे प्रणाम नहीं किया, यह तो मेरा घोर अपमान है।"

श्रीराम ने कहा - "भगवनू! यह तो उसने भारी अपराध किया, आपका जो अपमान हुआ सो हुआ। सबसे अधिक अपमान तो मेरा हुआ। मेरे गुरू को कोई भरी सभा में प्रणाम न करके मुझे प्रणाम करे तो यह तो मेरे लिये चुनौती है।"

विश्वामित्र ने कहा - "ऐसे धृष्ट व्यक्ति को तो कठिन से कठिन दण्ड देना चाहिये।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा - "अवश्य ऐसा व्यक्ति दण्डनीय है मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज सूर्यास्त तक मैं उसका वध अवश्य कर दूँगा। उसके निमित्त एक

नही मैं 3 दाण रख देता हूँ, अब त्रिलोको में ऐसा कोई नहीं, जो उसकी रक्षा कर सके।''

यह सुनकर विश्वामित्रजी परम प्रसन्न हुए। क्षण भर में बात सर्वत्र फैल गयी। राजा ने भी सुना। वह दौड़ा-दौड़ा नारदजी के पास गया और दीन वाणी मे बोला - ''भगवन्! यह आपने क्या किया? भगवान् ने तो मेरे मारने की प्रतिज्ञा कर ली है, अब क्या हो?''

नारदजी ने कहा - ''भैया! भगवान् की प्रतिज्ञा को अन्यथा करने की किसमें सामर्थ्य है? किसी दूसरे की प्रतिज्ञा होती तो उसका कुछ प्रतिकार भी किया जा सकता था।''

राजा ने गिड़गिड़ाकर कहा - ''प्रभो! जैसे हो तैसे मेरी रक्षा करें।''

नारदजी ने कहा - ''एक उपाय है तुम अभी जाकर अञ्जना माता के चरणों में पड़ जाओ और जब तक तुम्हें अभय दान न दे दें तुम चरणो से उठना ही नहीं।''

मरता क्या न करता। राजा दौड़ा-दौड़ा अञ्जना माता के समीप गया और उनके चरणों में पड़कर रोने लगा। माता ने बहुत समझाया किन्तु वह उठा ही नहीं। बड़े गुरु का चेला ही ठहरा। तब माता ने कहा - ''तू अपनी विपत्ति की बात तो बता।''

राजा ने कहा - ''एक ने मुझे मारने की प्रतिज्ञा की है, जब तक आप मुझे अभय प्रदान न करेंगी। तीन बार प्रतिज्ञा न करेंगी, तब तक मैं बैठूँगा नहीं।''

माताजी को अपने पुत्र के बल का भरोसा था, अतः उन्होंने राजा से अभयदान की प्रतिज्ञा की। त्रिवाचा भर ली। तब राजा ने आदि से अन्त तक सब कथा सुना दी। सब सुनकर माता बोली- ''अरे भैया! यह कार्य तो बहुत कठिन है, श्रीराम की प्रतिज्ञा को कौन अन्यथा कर सकता है। फिर भी मै प्रयत्न करूँगी।''

इतने में ही हनुमान्जी भी आ गये। उन्होंने माताजी के चरणों में प्रणाम किया। माता ने अपने पुत्र को आशीर्वाद दिया और कहा - ''बेटा! मेरा एक कार्य है उसे तुम करोगे?'

हनुमान्जी ने कहा - ''माँ ! यह भी कोई कहने की बात है, आप जो भी आज्ञा देंगी उसका तत्परता से पालन करूँगा।''

माता ने कहा - ''भैया! कार्य बहुत कठिन है।''

हनुमानजी को अपने बल का भरोसा था, उन्होंने कहा - ''माँ! काम

चाहे जितना भी कठिन हो, मैं उसको अवश्य करूँगा। आपको मेरे बल, वीर्य, पराक्रम पर अविश्वास नहीं करना चाहिये।"

माता ने कहा - "मुझे तुम्हारे बल, वीर्य, पराक्रम पर अविश्वास तो नहीं है, फिर भी काम ऐसा कठिन है जब तक तुम तीन बार प्रतिज्ञा न करोगे, तब तक मैं बताऊँगी नहीं।"

हनुमान्जी ने माता की बात सुनकर तीन बार प्रतिज्ञा की। तब माताजी ने सब वृत्तान्त बताया। सुनकर हनुमान्जी ने कहा - "माँ! यह कार्य तो बहुत कठिन है, श्रीराम की प्रतिज्ञा को कौन अन्यथा कर सकता है, श्रीरामजी से लडने की किसमें सामर्थ्य है।"

हनुमान्जी ने कहा - "अच्छी बात है, मैं कोई उपाय सोचूंगा। आज सूर्यास्त तक का ही समय है, मुझे शीघ्र जाने की अनुमति दो।" यह कहकर वे उस राजा को लिये हुए तुरन्त अयोध्यापुरी पहुँच गये। उस राजा को ले जाकर सरयू में कमर बराबर जल में खड़ा कर दिया और कह दिया, 'तुम बिना रुके राम-राम रटते रहो।' वह तो बेचारा भयभीत हो रहा था, बिना विश्राम के राम-राम रटने लगा।

इधर हनुमानजी भगवान् के समीप गये। प्रणाम करके उन्होंने कहा - "प्रभो! मुझे एक वचन दें।"

भगवान् ने कहा - "हनुमान्जी! तुम्हारे लिये मेरे सम्मुख कुछ भी अदेय नही है, बोलो क्या माँगते हो।"

हनुमान्जी ने कहा - "भगवान् ! मैं यही चाहता हूँ कि जो आपका नाम निरन्तर रटता रहे, उसकी मैं सदा सर्वदा रक्षा करता रहूँ। आपके नाम जापक पर कोई प्रहार न करें।"

भगवान् ने कहा - "जो मेरा नाम ले, उसकी रक्षा करने में तुम सदा सर्वदा समर्थ होगे। यह मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं।' बस अब क्या था हनुमानजी अपनी गदा तानकर सरयू किनारे राजा के समीप खड़े हो गये और राजा से कह दिया - "एक पल भी बिना विश्राम लिये तू राम-राम रटता रह। वह राम-राम निरन्तर रटता रहा।"

इधर यह बात भी सर्वत्र फैल गयी कि जिसे मारने की प्रतिज्ञा श्रीरामचन्द्रजी ने की है, उसकी रक्षा के लिये गदा लिये हुए हनुमान्जी खडे है। समस्त नगर निवासी नर-नारी इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए झुण्ड-के झुण्ड आने लगे सर्वत्र कोलाहल होने लगा। लोग परस्पर में कहने लगे - "भक्त और भगवान् की प्रतिज्ञा में देखे किसकी विजय होती है।"

श्रीरामचन्द्रजी तो सूर्यास्त तक राजा को मारने की प्रतिज्ञा ही कर चुके

थे, इधर उन्होंने यह भी सुन लिया था कि गदा ताने उसकी रक्षा के लिये हनुमान् डटे हुए है। फिर राजा को मारने के लिये भगवान् ने अपना अमोघ वाण छोड़ ही दिया! हनुमान्जी गदा ताने हुए खड़े थे और वे राजा को सावधान करते जाते थे, देखो, क्षण भर का भी अन्तर न पड़े। तुम राम-राम रटते रहो।''

वाण आया। रामचन्द्रजी तो प्रतिज्ञा कर ही चुके थे कि जो राम-राम रटता रहेगा, उस पर कोई अस्त्र-शास्त्र काम न करेगा। उसकी रक्षा करने मे हनुमान्जी सदा सर्वदा सर्वत्र समर्थ होंगे। राजा बिना पल भर के विश्राम के राम-राम रट रहा था। बाण प्रतीक्षा कर रहा था कि यह राम कहना बन्द करे तो मैं इसके सिर को धड़ से पृथक् करूँ। किन्तु जब वह निरन्तर रटता ही रहा था तो रामबाण लौटकर श्रीराम के समीप गया। लौटकर बाण ने कह दिया - ''महाराज! उस राजा की रक्षा तो हनुमान्जी कर रहे हैं। मेरी वहाँ दाल ही नहीं गलती।''

यह सुनकर भगवान् को बड़ा रोष आया उन्होंने उससे भी तीक्ष्ण दूसरा बाण छोड़ा। तब हनुमान्जी ने उस राजा से कहा - ''देखो, अब तुम सीताराम-सीताराम रटो।' अब नाम में दुगनी सामर्थ्य हो गयी, बाण इसी की प्रतीक्षा करता रहा, यह नाम रटना बन्द करे तो मैं मारूँ। हनुमान्जी गदा लिये हुए बाण को रोके खड़े थे। जब बाण का कुछ भी वश न चला तो वह लौटकर चला गया। दूसरे बाण को भी लौटा देखकर श्रीराघव को बड़ा क्रोध आया, उन्होंने तीसरा बाण उठाया और क्रोध में भरकर बोले - ''अभी सरयू तट पर जाता हूँ, उस राजा को भी मारूँगा और हनुमान् को भी मार डालूँगा।'' यह कहकर वे सर-सन्धान करते हुए सरयू तट की ओर चले। अबके हनुमान्जी ने सोचा रामजी अपने नाम का तो शील करते है। देखें मेरे नाम का उन्हे कुछ शील सङ्कोच है या नहीं। अतः उस राजा से कहा - ''अबके तुम रटो जय सियाराम जय-जय हनुमान्। जय सियाराम जय-जय हनुमान्।' अब नाम मे सीता, राम और हनुमान् तीन होने से तिगुनी शक्ति बढ़ गई। श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्जी को मारने को चले। यह सुनकर वसिष्ठजी को बड़ी चिन्ता हुई, उन्होने सोचा श्रीरामजी अपनी प्रतिज्ञा के बड़े पक्के हैं, जो कह देते हैं, उसे करते ही हैं। हनुमान्जी को मार देंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा। यह सोचकर वे दौड़े-दौड़े हनुमान्जी के पास गये और बोले - ''अरे भाई! तुम भी क्या नित्य नया बखेड़ा किया करते हो। छोड़ो इस राजा को श्रीराम को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने दो। एक राजा मर ही गया तो क्या होगा। उसने विश्वामित्रजी का अपमान करके घोर अपराध किया है। उसे मारने की भगवान् ने प्रतिज्ञा कर ली है। अब सूर्यास्त होने ही वाला है। इससे राघव को और भी अधिक क्रोध आ रहा है।''

इस पर हनुमान्‌जी ने कहा - "गुरुजी! आप कैसी बात कर रहे हैं, श्रीराम ने उसे मारने की प्रतिज्ञा की है और मेरी प्रतिज्ञा है कि जो राम-राम रटेगा उसकी मैं प्राणों का प्रण लगाकर रक्षा करूँगा। इसीलिए मैं अपनी प्रतिज्ञा पर डटा हुआ हूँ, श्रीरामजी मुझे मारना चाहें तो मार सकते हैं।"

इधर राम-राम रटते-रटते राजा का कण्ठ सूख गया था। तब हनुमान्‌जी एक रूप से उसके कण्ठ में घुसकर स्वयं ही निरन्तर राम-नाम जपने लगे। सब लोग एकत्रित हो गये विश्वामित्रजी भी देखने आ गये कि राजा के साथ रामजी हनुमान्‌जी को कैसे मारते हैं। तब वशिष्ठजी ने राजा से कहा - "अरे तू शीघ्रता से विश्वामित्रजी के चरणों में गिर जा। जब तक वे तुझे अभयदान न दें, तब तक तू उठना नहीं।"

वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर राजा "जय सियाराम जय - जय हनुमान् जय सियाराम जय-जय हनुमान्" रटता हुआ विश्वामित्र के चरणों में गिर गया। उसे कीर्तन करते हुए देखकर उन्हें दया आ गयी। उन्होंने राजा को अभयदान दिया। विश्वामित्रजी ने श्रीराम से कहा - "राघव! अब प्रायश्चित हो गया। आप इसे क्षमा करें और हनुमान्‌जी को अभयदान दें।"

गुरु की आज्ञा पाकर श्रीराम ने बाण नहीं छोड़ा। राजा को क्षमा कर दिया। हनुमान्‌जी की विजय हो गई। सब लोग जोर से पुकारने लगे - "हनुमान् की हुँ" वाह प्यारे।

यह बात अञ्जना माता ने जब सुनी तो बड़ी प्रसन्न हुई। तुरन्त श्रीरामचन्द्रजी के दर्शनों के लिये अयोध्या आई। अञ्जना माता को देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने उठकर उन्हें प्रणाम किया। कुशल मङ्गल पूछी और हँसते हुए कहा - "माँ! तुम्हारा पुत्र महावीर है। उसके समान बली संसार में कोई नहीं है। देखो उसने मुझको जीत लिया।"

यह सुनकर माँ के मन में कुछ-कुछ अभिमान हुआ। ऊपर से उन्होंने कहा- "राघव! आप तो सदा विजयी हो, आपको कौन जीत सकता है।" यह कहकर माता भीतर महलों में चलीं गयीं। कौशल्या माता ने अञ्जनी माता का बहुत स्वागत सत्कार किया। उसी समय अगस्त मुनि की माता भी आ गई। अब तीनों माताओं में बातें होने लगीं।

विवाह योग्य कुमारी लड़कियाँ परस्पर में बात करती हैं तो अपने भावी दूल्हा की बातें करती हैं। मैं कैसा वर चाहती हूँ। मुझे ऐसा वर मिले, वैसा वर मिले इत्यादि। विवाहिता मातायें परस्पर में अपने पति के सम्बन्ध में बातें करती हैं। वे वैसे हैं, एक दिन उन्होंने मुझे ऐसा कहा तो मैंने भी नहला पर दहला जड़ दिया, उनकी अमुक पसन्द है। अमुक रङ्ग के वस्त्र अच्छे लगते है

इत्यादि-इत्यादि।

बूढ़ी मातायें जब परस्पर में मिलती हैं तो अपने पुत्रों के बल, वीर्य, विद्या का बखान करती हैं। मेरे लड़के ने अमुक सभा जीत ली, अमुक पुरुषार्थ का काम किया। पुत्रों की प्रशंसा सुनकर उन्हें सुख होता है। ये तीनों मातायें बूढ़ी थीं। अतः इनमें भी पुत्रों के ही सम्बन्ध में बातें होने लगीं। पहिले कौशल्याजी ने ही आरम्भ किया - "मेरा राम वैसे बड़ा भोला भोला है, किन्तु उसके बल, वीर्य का क्या ठिकाना, देखो न, सौ योजन समुद्र पर पुल बँधवाना कोई साधारण काम नहीं है। समुद्र पर पुल बाँधकर सेना को रावण की लङ्कापुरी मे ले जाना कितने भारी पुरुषार्थ का काम है।"

अब अञ्जनी माँ से नहीं रहा गया। वे बोलीं - "जब समुद्र की ही बात है तो रामजी तो पुल पर होकर ही लङ्का पार पहुँचे। मेरा हनुमान् तो समुद्र पर छलांग मारकर ही बात-की बात में पार हो गया।"

तब अगस्त्यजी की माँ ने कहा - "पुरुषार्थ यदि समुद्र से ही आंका जाता तो मेरा बेटा तो सम्पूर्ण समुद्र को एक चुल्लू में ही पी गया था। इससे तो वही बड़ा हुआ।" इस पर कौशल्याजी ने कहा - "बड़ा तो मेरा राम ही है जिसने रावण जैसे महाबली को मार दिया।"

इस पर अञ्जना माँ बोली - "उस राम को भी मेरे बेटे ने परास्त कर दिया। इस पर अगस्त्य जी की माँ ने कहा - "राम को अस्त्र-शस्त्र तो सब अगस्त्य ने ही दिये थे।"

इस प्रकार तीनों माताओ में विवाद चल ही रहा था कि श्रीरामचन्द्रजी वहाँ आ पहुँचे और हँसकर बोले - "आज तीनों माताओं में क्या वाद-विवाद हो रहा है।"

कौशल्या माता ने कहा - "हम लोगों में एक बात पर वाद-विवाद हो रहा है, तुम इसका निर्णय कर दो कौन बड़ा है। श्रीरामचन्द्रजी पर तो सभी को विश्वास था कि वे पक्षपात नहीं करेंगे। अतः तीनों ने श्रीरामचन्द्रजी को पञ्च मान लिया।"

तीनों की बात सुनकर श्रीराम ने कहा - "देखो माताओ! न मैं बडा, न हनुमान्जी बड़े और न अगस्त्यजी की बड़े हैं। वास्तव में तो सबसे बडा मेरा नाम है। जिसमें भी बड़प्पन आता है राम के नाम के प्रभाव से ही। हनुमान्जी की जो विजय हुई है वह राम के नाम के ही कारण हुई है।" इस बात से तीनों माताओं को सन्तोष हो गया।

श्रीहनुमान्जी वास्तव में तो एकादशवें रुद्र ही हैं, इनमें और भगवान् रुद्ररूप में कोई अन्तर नहीं, किन्तु ये रुद्ररूप को त्यागकर सदा दास भाव मे

सौम्यरूप से ही अवस्थित रहते हैं, कभी-कभी यह अपना रूद्ररूप भी दिखलाते है, वह भक्तों की प्रसन्नता के लिये ही ऐसा करते हैं।

एक बार शनिदेव ने कहा - "हनुमान्‌जी! मैं तुम्हारे ऊपर आऊँगा।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "हमसे क्यों उलझता है भैया! इतना संसार पडा है।"

शनि ने कहा - "मैं सब पर आता हूँ तुम पर भी आऊँगा।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "किस अङ्ग पर आवेगा।"

शनि ने कहा - "सिर से आऊँगा।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "तो मेरे सिर पर चढ़ जा।"

शनैश्चर हनुमान्‌जी के सिर पर चढ़ गया। उन्होंने एक बड़ा भारी पहाड़ का शिखर उठाकर अपने सिर पर दे मारा शनैश्चर पिच गया। उसने कहा- "महाराज! जब आप स्वयं ही सिर पर पहाड़ मारते हो तो आपके सिर पर आकर मैं क्या करूँगा। आप तो स्वयं रुद्र स्वरूप हैं।"

एक बार सीताजी को हनुमान्‌जी ने अपना रुद्ररूप दिखाया था। सीता जी ने श्रीरामजी से कहा - "मैं हनुमान्‌जी को एक दिन निमन्त्रण देना चाहती हूँ।"

श्रीरामजी ने कहा - "प्रिये! तुम निमन्त्रण-फिमन्त्रण के चक्कर में मत पडो, मङ्गल या शनि को कुछ लड्डू खिला दो। इसी से ये सन्तुष्ट हो जायेंगे।"

सीता जी ने कहा - "नहीं महाराज! मैं तो इन्हें भर पेट खिलाना चाहती हूँ।"

भगवान् ने कहा - "तुम इनका पेट भर ही नहीं सकती।"

सीता जी ने कहा - "आप कैसी बातें कर रहे हैं। मेरे पास सहस्रों दास-दासी सेवक हैं। हनुमान्‌जी चाहे जितना खायें।"

भगवान् ने कहा - "अच्छी बात है, जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो।" सीताजी ने हनुमान्‌जी का निमन्त्रण दिया। अब क्या था, उन्होंने रुद्ररूप रखकर भोजन करना आरम्भ किया। जो भी आता उसे स्वाहा कर जाते। लड्डुओं के टोकरे-के-टोकरे एक साथ गटक जाते। थार-के-थार खीर को सपोट जाते। खाने लगे सो खाते ही गये। अब तो सीता माता घबरा गयीं। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण किया। श्रीरामचन्द्रजी ने प्रत्यक्ष देखा हनुमान्‌जी रुद्ररूप से भोजन कर रहे हैं, उन्होंने उनके सिर पर पीछे से "ॐ नमः शिवाय" लिख दिया। अर्थात् विनती की महाराज अब तृप्त हो जाओ। बस हनुमान्‌जी तृप्त हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण भी जानते थे, हनुमान्जी रुद्ररूप से अर्जुन के रथ पर विराजमान हैं, वे जब पाण्डव सेना की पराजय देखते तब एक हाँक मारते। इनकी हाँक मात्र से ही कौरवों की सेना योजनों पीछे उड़ जाती।

एक बार कर्ण ने अर्जुन के रथ को तनिक हटा दिया तब भगवान् कर्ण की प्रशंसा करते हुए बोले - "धन्य-धन्य सूर्यनन्दन! तुमने अद्भुत कार्य किया, कर्ण के अतिरिक्त कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता।"

इस पर अर्जुन ने कहा - "भगवन् ! मैं इतना पुरुषार्थ करता हूँ कर्ण के रथ को कितनी बार फेंक दिया, आपने मेरी कभी प्रशंसा नहीं की। इसने मेरे रथ को तनिक सा हटा दिया तो आपने प्रशंसा के पुल बाँध दिये। यह क्या बात है?"

इस पर भगवान् बोले - "अर्जुन! तू समझता नहीं। अरे तू कर्ण के रथ को उठाकर फेंक देता है इसमें क्या पुरुषार्थ। तुझे पता नहीं तेरे रथ पर रुद्रावतार साक्षात् हनुमान्जी विराजमान् हैं इसी से तेरा रथ सुरक्षित है, नहीं तो अब तक दिव्य बाणों से कब का जलकर भस्म हो गया होता। जिस पर रुद्ररूप हनुमान्जी विराजमान् हों, उस रथ को सरका भी देना महान् पुरुष.र्थ का काम है।" यह सुनकर अर्जुन का भ्रम दूर हुआ।

एक बार भीम को भी हनुमान्जी ने अपना रौद्ररूप दिखाया था। द्रौपदी को कहीं से एक शतदल कमल का पुष्प मिल गया। उन्होंने भीम से आग्रह किया - "ऐसे और भी कमल के पुष्प मुझे ला दो।" भीमजी तो द्रौपदी की प्रसन्नता के लिये सब कुछ कार्य करने को उद्यत रहते थे। गन्धमादन की ओर से जिधर से वह पुष्प आया था। उधर ही अकेले चल दिये। चलते-चलते वे ऐसे स्थान पर पहुँच गये, जहाँ से आगे मनुष्य जा ही नहीं सकता। हनुमान्जी ने सोचा- "यह भीम अपने बल के अभिमान् में मानेगा नहीं, वहाँ जायगा और विपत्ति में फँस जायेगा। यह मेरा छोटा भाई है, इसे किसी प्रकार आगे जाने से रोकना चाहिए यह सोचकर वे एक साधारण बूढ़े रोगी वानर का वेष बनाकर मार्ग में रोककर लेट गये। भीमजी ने जब देखा कि एक बूढ़ा वानर मेरा मार्ग रोके पड़ा है तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। डाँटकर बोले - "अरे बन्दर! मार्ग रोके क्यों पड़ा है मेरे मार्ग को छोड़ दे।"

बन्दर ने दीनता के साथ कहा - "अरे भैया! कहाँ जाओगे। आगे मार्ग है ही नहीं। इससे आगे मनुष्यों का प्रवेश नहीं।"

भीमजी ने डाँटकर कहा - "तुझसे मार्ग कौन पूछता है। मार्ग हो न हो तू यहां से हट जा।"

हनुमान् ने कहा - "भैया! तुम देखते नहीं, एक तो मैं बूढ़ा दूसरे रोगग्रस्त

हूँ मुझसे उठा-बैठा नहीं जाता यदि आप को जाना ही है तो मेरी पूँछ को लाँघकर चले जाओ।"

भीमसेन ने कहा - "अरे, भाई! तू समझता तो है नहीं वानर ही ठहरा। अन्तर्यामी भगवान् सभी देहों में निवास करते हैं। अतः यथाशक्ति किसी भी जीवन को लाँघकर नहीं जाना चाहिये।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "तब तो आप इतने भारी बलवान है, मेरी पूँछ को उठाकर एक ओर रखकर निकल जाइये।" यह सुनकर भीमसेन बल के अभिमान में भरकर बायें हाथ से पूँछ को उठाने लगे, किन्तु वह उठी नहीं। तब उन्होंने दोनों हाथ लगाये। पूरी शक्ति लगा दी किन्तु पूँछ टस-से-मस भी नहीं हुई। वे मुख से रक्त उगलने लगे।

अब तो भीमजी को अपने बल का अभिमान था, वह चकनाचूर हो गया। वे हाथ जोड़कर बोले - "आप साधारण वानर तो प्रतीत होते नहीं। आप देवता यक्ष, किन्नर आदि भी प्रतीत नहीं, होते इतना बल तो आज तक मैंने किसी में देखा ही नहीं।"

तब हँसकर हनुमान्‌जी बोले - "मैं न देवता हूँ, न यक्ष गन्धर्व आदि ही। मैं तुम्हारा बड़ा भाई पवनतनय हनुमान् हूँ।"

हनुमान्‌जी का नाम सुनते ही भीमजी उनके चरणों में पड़ गये और बोले- "मै सोच रहा था कि इतना बल श्रीहनुमान् जी को छोड़कर और किसमें हो सकता है। मैं चिरकाल से आपके दर्शनों के लिये लालायित था। आपने दर्शन देकर मुझे कृतार्थ कर दिया।"

हनुमान्‌जी ने अत्यन्त ही स्नेहपूर्वक कहा - "भीम ! मैंने सब सुन रखा है। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने तुम्हें बहुत दुःख दिया है। दुर्योधन की दुष्टता के कारण तुम सब भाई बन-वन भटकते फिरते हो। आज जब तुमको मैंने ऐसा अमानुषिक कार्य करते देखा तो भ्रातृ स्नेहवश मैंने ऐसा कार्य किया।"

भीम ने कहा - "महाराज! आप मार्ग में क्यों लेट गये थे?"

हनुमान्‌जी ने कहा - "अरे, भैया! न लेटता तो तुम मानने वाले थोड़े ही थे, मना करने पर तुम युद्ध करने को तत्पर हो जाते, तुम भी पवन पुत्र मै भी पवन पुत्र! भाई भाइयों में युद्ध हो यह उचित नहीं। इसीलिए मैं मार्ग में लेट गया था।"

भीम ने कहा - "भगवान्! मुझे एक शङ्का और है। मैंने सुना है आप शतयोजन चौड़े समुद्र को लाँघ गये थे, सो इस छोटे रूप से कैसे लाँघे होंगे?"

हँसकर हनुमान्‌जी ने कहा - "देखो भैया भीम! मेरे युगानुरूप रूप होते

है। सत्ययुग में मेरा और रूप होता है, त्रेता में पृथक् द्वापर में भिन्न और कलियुग में मैं और ही रूप से रहता हूँ। समुद्र लाँघने वाला मेरा दूसरा रूप था।''

भीम ने कहा - ''महाराज! आपका मैं वही रूप देखना चाहता हूँ। जिस रूप से आपने समुद्र पार किया था।''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''भैया! वह मेरा अति रौद्र रूप है, उसे देखकर तुम क्या करोगे?''

भीम ने कहा - ''नहीं, महाराज! उसे देखने की मेरे मन में बड़ी अभिलाषा है। आपकी कृपा हो जाय तो मैं उस रूप के दर्शन कर लूँ।''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''वह मेरा बड़ा भयङ्कर रूद्र रूप है, तुम देख न सकोगे भयभीत हो जाओगे।''

भीम ने कहा - ''नहीं भगवान्। मैं भयभीत नहीं हूँगा। आप मुझे उसे अवश्य दिखा दें।''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''अच्छी बात है, तुम नहीं मानते हो तो लो देखो।'' यह कहकर हनुमान्‌जी कूदकर एक विशाल पहाड़ की चोटी पर जा बैठे। अब उन्होंने बढ़ना प्रारम्भ किया बढ़ते ही गये, बढ़ते ही गये। मानों पूरे आकाश मण्डल को वे ढक लेंगे। उनके ऐसे भयङ्कर रूप को देखकर भीम थर-थर काँपने लगा। उसने आँखे मींच लीं और बोला - ''बस, महाराज! देख लिया मैने आपका रूप अब इस लीला का संवरण कीजिये।'' यह सुनकर हनुमान्‌जी हँस पडे और फिर अपने उसी रूप में हो गये।

कुछ स्वस्थ होने पर भीम ने कहा - ''भगवान्! आपके इस रूप को देखकर मुझे एक और शङ्का हो गई।''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''वह कौन-सी शङ्का है?''

भीम बोले - ''शङ्का यही है कि जब आपका ऐसा रूप है तब तो आप अकेले ही रावण को मार सकते थे। फिर रामचन्द्रजी ने समुद्र पर पुल बाँधना इतने भालु बन्दर को एकत्रित करना, इतना दिनों तक युद्ध करना, मृत सञ्जीवनी बूटी मँगाना आदि लीलायें क्यों की?''

इस पर हनुमानजी ने कहा - ''भीम! तुम यथार्थ कहते हो। एक रावण की बात ही क्या, मैं ऐसे सहस्त्र रावणों को मारने में समर्थ हूँ। मैं रावण को अकेला ही वहाँ जाकर मसल सकता था। मैं लङ्कापुरी को उखाड़कर समुद्र मे फेक सकता था। मेरे लिये कोई कार्य असम्भव नहीं। फिर हे भीम! राम चरित की रचना कैसे होती। श्रीरामजी के यश का विस्तार कैसे हो रामायण रूपी

भवसेतु कैसे बनता। जिसके द्वारा असंख्यों प्राणी भवसागर से पार हुए हैं, हो रहे हैं और अनादि काल तक होते रहेंगे। मैं तो भैया! केवल रामचरित के सहारे ही जी रहा हूँ। रामचरित न होता तो मैं एक क्षण भी जीवित न रहता।''

भीम ने कहा - ''प्रभो ! आप सत्य कहते हैं, मेरी शङ्का का समाधान हो गया।''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''भीम! इस दुष्ट दुर्योधन पर मुझे बड़ा क्रोध आ रहा है, इसने अन्याय से जूये में छलकर तुम्हें बनवास दे दिया है। तुम कहो तो अभी मैं जाकर हस्तिनापुर पर पहाड़ो की वर्षा कर आऊँ समस्त धृतराष्ट्र के पुत्रो को मार आऊँ उनके अन्याय, अधर्म, अत्याचार और छल कपट का उन्हें प्रतिफल चखा आऊँ?''

यह सुनकर भीम ने हनुमान्‌जी के पैर पकड़ लिये और बोले - ''प्रभो! आप उन धृतराष्ट्र के पुत्रों पर क्रोध न करें। भगवन्! मक्खी मारने के लिए भुसुण्डी का प्रयोग नहीं किया जाता। आपके प्रहार को सहन करने की सामर्थ्य किसमें है? आप हमें ही आशीर्वाद दें। आप मेरे मस्तक पर अपना कर कमल रख दें। आपके आशीर्वाद से युद्ध में धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों को मैं ही मारूँगा।''

हनुमान्‌जी ने कहा - ''मैं आशीर्वाद देता हूँ। तुम धृतराष्ट्र के सौ पुत्र को मारने में समर्थ होगे। मैं अर्जुन की रथ की ध्वजा में वैठकर तुम लोगों की सहायता करूँगा। अर्जुन ने बहुत दिन तक मेरी आराधना की है, उसको भी मैंने यही वर दिया कि मैं सदा सर्वदा तुम्हारे रथ पर तुम्हारी पताका मे बैठकर तुम्हारी सहायता करूँगा। सो तुम लोग किसी बात की चिन्ता मत करना युद्ध में तुम लोगों की विजय अवश्य होगी और तुम इन दुष्ट कौरवों को मारकर इस अखण्ड भूमण्डल के राजा बनोगे।''

इतना सुनकर भीम अपने भाई के चरणों में पड़ गये। हनुमान्‌जी ने उन्हें उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और अनेकों आशीर्वाद देकर उन्हें विदा किया और बता भी दिया तुम्हें यदि पुष्प लाने ही है तो इस मार्ग से चले जाओ।''

हनुमान्‌जी के बताये मार्ग से जाकर भीमसेन ने बहुत से पुष्प तोड़े और उन्हें वे लेकर उस स्थान में लौटे जहाँ पर उनके भाई थे। जब भीमसेन ने सब समाचार सुनाया तो सुनकर धर्मराज बड़े प्रसन्न हुए कि तुम्हें केशरीनन्दन वायुपुत्र हनुमान्‌जी के दर्शन हो गये। भीम को डाँटा भी बहुत कि तुम बिना हमसे पूछे ऐसे साहस के कामों के लिये अकेले ही चले जाते हो। आगे से ऐसा मत करना।

इस प्रकार हमारे इन राम कथा रसिक हनुमान्‌जी के अनेक रूप है,

जिनका वर्णन यहाँ विस्तार से नहीं हो सकता।

भक्तों का भी कभी-कभी पराभव - सा होता हुआ दिखायी देता है, वास्तव मे भगवत् भक्तों का तो कभी पराभव होता ही नहीं, उनके पराभव से भगवान् उनके अन्तः करण को और भी अधिक विशुद्ध बनाते हैं। बात यह है कि समस्त अनर्थ का मूल कारण है अभिमान। भक्त के हृदय में जहाँ तनिक भी अभिमान हुआ भगवान् उसके मेटने का तुरन्त उपाय करते हैं। ऐसा न हो कि भक्त के हृदय में अभिमान जड़ जमा ले। जैसे गौ अपने बच्चे के शरीर के मल को जीभ से चाट-चाटकर उसे स्वच्छ निर्मल बना देती है, ऐसे ही भगवान् भी अपने भक्तों के हृदय में उठे अभिमान को पराभव नाटक दिखाकर उसे निराभिमान बना देते हैं। अतः भक्त का जहाँ भी कहीं अपमान या पराभव-सा दिखाई दे, तहाँ समझना चाहिये भगवान् उसके भीतर के अत्यन्त सूक्ष्म अभिमान को जड़ मूल से नाश करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं। वे ही अवधकुलमण्डन राम, द्वारका में श्रीकृष्ण रूप में अवतीर्ण हो गये हैं। वे ही जनकनन्दिनी, विदर्भ दुलारी बन गयी है। हनुमानजी यह सब जानते हुए भी उन्हें सीताराम रूप में ही देखना चाहते हैं। उनके नयनों में तो सरल सौम्य श्रीसीताराम की सुहावनी मूर्ति ही समा गयी है, भगवान् को भी सब पता है, फिर भी भक्तों को दिखाने के लिये, अपने निजजनों के अभिमान को मिटाने के लिये वे नये-नये कौतुक रचा करते हैं।

सत्यभामाजी बड़ी तुनुक मिजाजी थीं। उन्हें अपने रूप का बड़ा अभिमान था। श्रीकृष्णजी भी उसकी सब बातें सह लेते थे। इससे वे अपने को सर्वश्रेष्ठा कृष्ण प्रेयसी मानने लगीं। जब भगवान् ने स्वर्ग से कल्पवृक्ष को लाकर उसके आँगने में लगा दिया, तब से उनका अभिमान और भी बढ़ गया। भगवान् को उनका अभिमान चूर्ण करना था।

इधर चक्र सुदर्शनजी को भी अपने पराक्रम का बड़ा अभिमान हो गया था कि मैंने इन्द्र के वज्र को भी परास्त कर दिया, महामुनि दुर्वासा के छक्के छुड़ा दिये। लोकालोक पर्वत के तम को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। भगवान् को जब भी कठिनाई होती है मुझे बुलाते हैं। सुदर्शन की इस अहंकृति को भी मिटाना था।

उन्हीं दिनों गरुड़जी को भी अभिमान हो गया था कि मेरे समान बली, शीघ्र उड़ने वाला दूसरा कोई नहीं है। युद्ध में मैंने भगवान् को भी सन्तुष्ट कर दिया है इसीलिए तो भगवान् ने अपने से भी ऊँचे स्थान पर ध्वजा मे मुझे स्थान दिया है। भगवान् गरुड़ध्वज कहलाते हैं। मैं भगवान् का, दास, सखा,

आसन, वाहन, ध्वज, चाँदनी, व्यजन तथा सब कुछ हूँ। संसार में मेरे बराबर कौन है।

भगवान् को इन तीनों का ही गर्व श्रीहनुमान्जी द्वारा खर्व कराना था। अतः उन्होंने मन से हनुमान्जी का आह्वान किया। भगवान् की इच्छा समझकर हनुमान्जी बन्दर के रूप से द्वारका में आये। और सुन्दर राजकीय उपवन मे आकर फल खाने लगे, वृक्षों की डालियों को वानरी प्रकृति के अनुसार तोडने लगे। रक्षको ने बहुत रोका किन्तु माने ही नहीं, उन्हें घुड़कने लगे। बात भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तक पहुँची। भगवान् ने गरुड़ को बुलाया और कहा - "गरुड़! सुना है कोई बड़ा उपद्रवी वानर द्वारका के उपवन में आ गया है, बड़ा भारी उपद्रव कर रहा है। तुम बहुत से सैनिक ले जाकर उसे जैसे-हो-तैसे मेरे पास पकड लाओ।"

यह सुनकर गरुड़जी तो चकित रह गये, बोले - "महाराज! चीटी के लिये कहीं भुसुण्डी छोड़ी जाती है। एक छोटा सा बन्दर ही तो है, मैं अभी उसे पकड़कर आपके सम्मुख उपस्थित करता हूँ। उसके लिये सैनिकों की क्या आवश्यकता?"

भगवान् ने कहा - "अच्छी बात है पकड़ में आ जाय तो तुम ही उसे पकड़ लाओ।"

भगवान् की आज्ञा पाकर गरुड़जी गये। देखा हनुमानजी फल खा रहे है डालियाँ तोड़ रहे हैं। उन्हें ऐसा करते देखकर डाँटकर गरुड़जी बोले - "अरे, बन्दर ! क्या कर रहा है?"

हनुमान्जी कुछ बोले ही नहीं तब गरुड़जी ने कहा - "बहरा है क्या? सुनता नहीं मैं क्या कह रहा हूँ।"

हनुमान्जी ने हँसकर कहा - "इतनी बड़ी-बड़ी चमकीली आँखों के रहते भी तुम्हें दीखता नहीं है कि मैं फल खा रहा हूँ।"

गरुड़ ने कहा - "क्यों फल खा रहा है?"

हनुमान्जी ने कहा - "भूख लग रही है, पेट भरने को फल खा रहा हूँ।"

गरुड़ जी ने कहा - "तेरे बाप का वन है क्या?"

हनुमान्जी ने कहा - "बाप के तुम्हारे होगा। मेरे तो सब स्वामी के ही वन हैं, हमें तो स्वतन्त्रता है जहाँ चाहें वहाँ फल खायें।"

गरुड़जी ने कहा - "आया है बड़ा फल खाने वाला। जिनका यह बाग है वे द्वारकानाथ तुझे बुला रहे हैं।"

हनुमान्‌जी बोले - "द्वारकानाथ तुम्हारे स्वामी होंगे। मेरे तो स्वामी अयोध्या नाथ हैं मैं तो श्रीसीतानाथ का सेवक हूँ।"

गरुड़जी ने कहा - "तभी तो कहता हूँ तू वानर ही ठहरा। अरे, अयोध्यानाथ और द्वारकानाथ कोई दो-दो हैं क्या? दोनों एक ही रूप हैं। दोनों ही साक्षात् श्रीमन्नारायण के स्वरूप हैं।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "होंगे एक ही मैं कब दो कहता हूँ, किन्तु मेरा तो आग्रह श्रीसीतारामजी की छवि में ही है। मेरे नेत्रों में तो उन्हीं की बाँकी झाँकी बसी है।"

गरुड़जी ने कहा - "अच्छा चल उन्हीं से कहना।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "मैं तो अवधकुल मण्डन कौशल्या नन्दवर्धन जानकीजीवन श्रीरामचन्द्रजी के अतिरिक्त किसी दूसरे की आज्ञा नहीं मानता। मै नहीं चलूंगा।"

गरुड़जी ने कहा - "चलेगा कैसे नहीं, मैं तुझे पकड़कर बलपूर्वक ले चलूगा।"

हनुमान्‌जी ने कहा - "तुम में सामर्थ्य हो तो ले चलो। देखें तुम्हारा बल पराक्रम? बल पराक्रम की चुनौती देने पर गरुड़जी को क्रोध आ गया। वे हनुमान्‌जी से भिड़ गये। हनुमान्‌जी भी खेल करते रहे। जब गरुड़जी अपनी पूरी शक्ति से लड़ने लगे तब हनुमान्‌जी ने उन्हें पूँछ में कसकर जो धीरे से फेका तो समुद्र में जाकर गिर पड़े। गरुड़जी को फेंककर हनुमान्‌जी मलयाचल पर चले गये।

गरुड़जी समुद्र में गिरने से मूर्छित हो गये। मूर्छा भङ्ग होने पर वे उदास मन से भगवान् के समीप गये। भगवान् ने कहा - गरुड़जी समुद्र स्नान करके आये हो क्या?"

गरुड़जी ने लजाते हुए कहा - "महाराज! आपका वह वानर तो बड़ा ढीठ है, वह आया ही नहीं। मैंने बहुत कहा उसने तो मुझे पूँछ में लपेट कर समुद्र में फेंक दिया।

यह सुनकर भगवान् हँसने लगे और बोले - "अरे गरुड़ जी! तुम एक वानर को भी पकड़ कर नहीं ला सके। कोई बात नहीं। वह साधारण वानर नहीं था। पवनतनय हनुमान् था। वह बल में आपसे बहुत बढ़-चढ़कर है।"

गरुड़जी ने कहा - "महाराज! यह बात तो मुझे उससे लड़ने पर ही मालूम हो गई, किन्तु वह मेरे समान वेग से उड़ नहीं सकता। मैं पक्षी ठहरा वह पशु ही है।"

भगवान् ने कहा - "अच्छा, जाओ इस समय वह मलयाचल पर है, उसे बुला लाओ। मेरा नाम मत लेना, तुम्हें श्री सीतारामजी बुला रहे हैं।"

यह सुनकर गरुड़जी क्षण भर में मलयाचल पर पहुँच गये और बोले "हनुमान्! चलो तुम्हें श्रीसीतारामजी शीघ्र ही बुला रहे हैं।"

हनुमान् जी ने कहा - "आप पधारें मैं अभी आता हूँ।"

खीझकर गरुड़जी ने कहा - "देखो, हनुमान्! मुझे तुम्हारी यही बात तो अच्छी नहीं लगती। तुम शाखामृग, में आकाश में उड़ने वाले पक्षियों का राजा। तुम मेरे बराबर कैसे चल सकते हो। महाराज ने अविलम्ब शीघ्र से - शीघ्र तुम्हें बुलाया है।'

हनुमान्जी ने हँसकर कहा - "आप चलो भी तो मैं आपसे पहिले पहूँचूगा।"

गरुड़जी बोले - "अरे हनुमान्! तुम्हें तो भाई अपने बल का बड़ा अभिमान है। बली तुम हो यह मैं भी मान गया हूँ, किन्तु मेरे समान तुम उड़ थोडे ही सकते हो। आओ मेरी पीठ पर बैठो मैं तुम्हें पल भर में अवधकुलमण्डन श्रीरघुनाथ जी के समीप पहुँचाता हूँ।" यह कहकर वे बलपूर्वक हनुमान् जी को अपनी पीठ पर बैठाने की चेष्टा करने लगे।

हनुमान्जी ने कहा - "देखो, गरुड़जी! हाथापाही मत करो। बात दूर से ही करो। तुम सोचो सही। जिस आसन पर मेरे स्वामी विराजते हैं उस पर मै कभी बैठ सकता हूँ। तुम चलो भी तो सही।"

गरुड़जी अपनी हठ पर अड़ गये - "नहीं मैं तो तुम्हें लेकर ही चलूँगा।" अब हनुमान्जी से नहीं रहा गया। पूंछ में लपेटकर उन्हें जो फेंका तो वे ठीक द्वारकाजी के द्वार पर ही जाकर गिरे।

इधर भगवान् ने चक्र सुदर्शन को आज्ञा दी - "तुम द्वारका के मुख्य द्वार पर डट जाओ, जो भी कोई आवे उसे भीतर मत आने दो।' सुदर्शन अभिमानपूर्वक छाती फुलाकर मुख्य द्वार पर खड़े हो गये।

हनुमान्जी आये और भीतर घुसने लगे तो सुदर्शन ने कहा - "खबरदार। भीतर घुसे तो। आज किसी को भीतर जाने की आज्ञा नहीं।"

हनुमान्जी ने कहा - "भैया! बड़ा आवश्यक कार्य है, भगवान् ने मुझे तुरन्त बुलाया है। मुझे जाने दो।"

सुदर्शन ने कहा - "मुझे भी भगवान् की आज्ञा है, मैं किसी भी प्रकार तुम्हे भीतर न जाने दूँगा।"

हनुमान्जी ने अधिक विवाद बढ़ाना उचित न समझा और उसे पकड़कर

मुख में रखकर पुरी के भीतर चले।

इधर भगवान् ने सत्यभामाजी से कहा - "हनुमान् आ रहा है, वह मेरे सीताराम रूप का ही उपासक है, तनिक रुक्मिणीजी को भेजो वे सीताजी बनकर मेरे समीप बैठ जायँ।'

सत्यभामाजी ने तुनुककर कहा - "क्यों महाराज! मैं सुन्दर नहीं क्या? सीताजी मुझसे भी अधिक सुन्दर थीं? तनिक रूप ही तो बदलना है मैं ही बैठी जाती हूँ।"

भगवान् को तो उनके अभिमान को ही मिटाना था। बोले - "अच्छा बैठ जाओ।" सीताजी का रूप बनाकर वे बैठ गयीं। उसी समय हनुमान्जी ने आकर राम रूप श्रीकृष्णचन्द्र जी के चरणों में प्रणाम किया। सीता बनी हुई सत्यभामा की ओर देखा भी नहीं।

भगवान् कहा - "अरे भैया! हनुमान् ! तुम आ गये? मैंने तुम्हें लेने को गरुड़ को भेजा था। वे अभी तक नहीं आये?"

तब देखते हैं कि हाँपते हुए गरुड़जी भी वहाँ आ पहुँचे। अपने से पहिले हनुमान्जी को प्रभु के सम्मुख देखकर वे बड़े लज्जित हुए। तब हनुमान्जी भगवान् से बोले - "महाराज! किसी सीधे-सादे पक्षी को पालते। यह तो आपने बड़ा ढीठ पक्षी पाल रखा है। जब देखो तब हाथा पाहीं करने को तैयार हो जाता है। इसे अपने वेग बड़ा अभिमान है। मैंने तो इसे पुरी के समीप फेंक दिया था, नहीं अब तक भी न आता।" यह सुनकर गरूड़जी का अभिमान चकनाचूर हो गया।

भगवान् ने पूछा-"तुम्हें द्वार पर किसी ने रोका तो नहीं।"

हनुमान् जी बोले -"महाराज! जैसे नागनाथ वैसे ही साँपनाथ। आपके इस सुदर्शन की मैंने बहुत अनुनय-विनय की। जब यह न माना तो मैं इसे अपने मुख में रखकर आपके समीप ले आया अब इससे आप पूछिये।" यह कहकर हनुमानजी ने मुख में से निकाल कर चक्र को प्रभु के सम्मुख रख दिया। इससे सुदर्शन चक्र का भी अभिमान जाता रहा।

फिर हनुमान्जी बोले-"महाराज! आज माताजी कहाँ गयी हैं। यह किस दासी को आपने सम्मान प्रदान कर रखा है।"

यह सुनकर सत्यभामाजी भी लज्जित हुई। उनको जो अपने सौन्दर्य का बड़ा गर्व था वह भी चकनाचूर हो गया।

तीनों के गर्व को खर्व कराकर हनुमान्जी भगवान् को प्रणाम करके मलयाचल पर चले गये।

इसी प्रकार अर्जुन को भी एक बार अपने धनुष-बाणों का बड़ा अभिमान हो गया था। उन्होंने भगवान् से कहा-"प्रभो! लंका जाने के लिए सेतु बाँधने का इतना अधिक प्रयास क्यों किया गया। इतने वानर इकट्ठे किये, वृक्ष पहाड़ लाये और जाने क्या-क्या किया। बाणों का पुल नहीं बाँध लिया।"

भगवान् को तो उनके गर्व को खर्व कराना था अतः बोले-"तुम बाणो से थोड़ा सेतु बाँधकर दिखाओ तो सही।" भगवान् की आज्ञा से अर्जुन ने समुद्र पर बाणों से कुछ दूर सेतु बाँधा और हनुमानजी से कहा-"हनुमान्! तनिक देखो तो सही, सेतु कैसा बाँधा है?"

हनुमान्जी जब उस पर दो पैर चले तो पुल चर्रमर्र करके तचरमराने लगा। भगवान् ने कहा-"पवनतनय! तुरन्त उतर आओ नहीं तो पुल टूट जायगा।" हनुमानजी तुरन्त उतर आये तब भगवान् ने अपनी पीठ दिखाई उसमें रक्त बह रहा था। वे अर्जुन से बोले-"पार्थ तुम्हारे बनाये हुए सेतु को मैंने पीठ लगाकर साध लिया था। नहीं हनुमान्जी के बोझ से यह टूटकर समुद्र के भीतर चला जाता। न जाने ऐसे कितने वानर उस पुल से उतरे थे।" यह देखकर अर्जुन का अभिमान चकनाचूर हो गया। इस प्रकार भगवान् ने अपने भक्त हनुमान् के गर्व के निमित्त हनुमान द्वारा कितने व्यक्तियों के अभिमान का नाश कराया है और कराते रहते है।"

प्राणी आहार बिना जीवित नहीं रह सकता। जिसका जो आहार है, वह उसे ही पाकर प्रसन्न रहेगा। आहार तो प्रधान वस्तु ही है, किन्तु जिन्हें किसी वस्तु का व्यसन भी लग जाता है तो उस व्यसन के बिना भी प्रायः नहीं रह सकता। जैसे मीन जल के बिना जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार यथार्थ भगवत् भक्त भगवान् की कथा तथा कीर्तन के बिना जीवित रह नहीं सकता। श्री हनुमानजी सच्चे रामभक्त हैं। वे कथा कीर्तन के बिना रह नहीं सकते।

भगवान् धर्म की संस्थापना के लिये अवनि पर अवतरित होते हैं, वे साधु पुरुषों के परित्राण के निमित्त तथा दुष्टों के दमन के लिये देह धारण करते है। जब भू का भार हलका हो जाता है तो अपने तेज को अपने जीवन में स्थापित करके तिरोहित हो जाते हैं। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी स्वधाम पधारने लगे, तब उन्होंने उद्धवजी से कहा-"उद्धव! तुम मुझसे गुणों में तनिक भी कम नही हो, तुम यहीं पृथ्वी पर रहकर मेरे भक्तों का कल्याण करते रहो।" यही बात भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने अपने परम प्रेमास्पद मारूतनन्दन हनुमान्जी से कही थी। भगवान् का श्री पवनकुमार के प्रति कितना अनुराग है, वे अपने को उनका कितना आभारी मानते हैं यह बात शब्दों में कही नहीं जा सकती।

भगवान् ने एक दिन कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा था- "हनुमान्! संसार

मे जब तक मेरी कथा रहेगी।, तब तक तुम्हारी कीर्ति विद्यमान रहेगी और तुम्हारा शरीर भी जीवित रहेगा। तुमने मेरे बड़े-बड़े उपकार किया है।''

हनुमान्‌जी ने कहा-''प्रभो! मैं क्या उपकार करने में समर्थ हूँ। आप अपनी शक्ति से जो कराते हैं, वही मैं करता हूँ।''

इस पर भगवान् ने कहा ''हनुमानजी!'' तुम्हारे मेरे ऊपर कितने उपकार हैं, इसकी गणना नहीं की जा सकती। यदि मैं तुम्हारे एक-एक उपकार के लिये अपने प्राणों को भी दे दूँ तो भी बहुत से उपकारो के लिये मैं तुम्हारा ऋणी ही बना रहूँगा। तुम्हारें समस्त उपकारों का प्रत्युपकार कर ही नहीं सकता और करना भी नहीं चाहता। उपकारों का प्रत्युपकार तो तभी हो सकता है, जब तुम पर मेरी भाँति आपत्तियाँ पड़े, मैं नहीं चाहता तुम पर विपत्तियाँ पडे। मै तो सदा सर्वदा तुम्हारा ऋणी ही बना रहना चाहता हूँ। इसलिए तुम सदा इस भूतल पर ही विराजमान रहो, तुम जब भी मेरा स्मरण करोगे तभी मै उपस्थित हो जाऊँगा।''

हनुमान जी ने कहा-''प्रभो! सेवककी कोई अपनी इच्छा नहीं होती, उसका अपना निजी कोई कर्तव्य भी नहीं होता, स्वामी उसे जिस कार्य में नियुक्त कर दे, वही उसका कर्तव्य है। इसलिये मैं आपकी आज्ञा से भूतल पर रहूँगा, किन्तु मुझे वर दें कि आपकी जहाँ-जहाँ भी कथा हो, आपके नामोंका जहाँ भी कीर्तन हो वहाँ-वहाँ उतने ही रूपों से उपस्थित रह सकूँ।''

भगवान् ने कहा-''ऐसा ही होगा। कितने भी स्थानों पर मेरी कथा क्यो न होती हो, उतने ही स्थानों पर तुम वहां विद्यमान रहोगे। इसलिये रामकथा मे सबसे पहिले हनुमान्‌जी को आसन दिया जाता है। हनुमानजी किस रूप में आते हैं, इसको कोई नहीं जानता। किन्तु वे आते अवश्य हैं और अपने भक्तों की मनोकामनायें पूर्ण भी करते हैं, क्योंकि भगवान तो उनके अधीन ही ठहरे। इसलिये जिसे भगवान् के दर्शन करने हों, उन्हें हनुमान्‌जी का आश्रय लेना चाहिये। गोस्वामी तुलसीदासजी को कहते हैं हनुमान्‌जी ने ही भगवान् के दर्शन कराये थे।

ऐसी कथा प्रचलित है कि तुलसीदासजी जब चित्रकूट में रहते थे तब जङ्गल में शौच जाते और शौच का जो जल शेष रह जाता, उसे एक शमा-छोंकरा के वृक्ष के ऊपर डाल आते। उस शमी के वृक्ष पर एक प्रेत रहता था। प्रेतों का आहार ऐसा ही अशुद्ध निकृष्ट होता है, उस जल से उसकी आत्मा तृप्त होने लगी। एक दिन उसने प्रकट होकर तुलसीदासजी से कहा- ''मैं आप पर बहुत प्रसन्न हूँ। आप मुझसे कुछ माँग लें मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?

तुलसीदास ने कहा- ''मुझे किसी संसारी वस्तु की तो आवश्यकता है नहीं,

यदि करा सकते हो तो मुझे भगवान के दर्शन करा दो।"

प्रेत ने कहा- "महाराज! हममें इतनी ही सामर्थ्य होती तो इस अधम योनि में निवास क्यों करते। मैं भगवान् के दर्शन तो करा नहीं सकता, एक उपाय बता सकता हूँ।"

तुलसीदासजी ने कहा- "अच्छा" उपाय ही बताओ।" प्रेत ने कहा-"देखो, हनुमानजी का नियम है कि जहाँ-जहाँ राम कथा होती है, वहाँ-वहाँ किसी न किसी रूप से हनुमानजी अवश्य श्रवण करने आते हैं। अमुक स्थान पर जो नित्य कथा होती है, उसमें हनुमानजी कुष्टी के रूप से आते हैं, आप उनके चरण पकड़ लें वे बहुत मना करेंगे, किन्तु आप छोड़ें नहीं। वे आपको भगवान् के दर्शन करा सकते हैं।"

यह सुनकर तुलसीदासजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे कथा में गये उन्होंने सबसे पृथक् दूर एक कुष्टी को बैठे देखा, उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे और वह चुपचाप बैठे कथा सुन रहा था, तुलसीदासजी उसे देखते ही रहे, ज्यो ही कथा समाप्त हुई उन्होंने जाकर उस कुष्टी के पैर पकड़ लिये। उसने बहुतेरा कहा-"भाया! तुम मुझे क्यों कष्ट देते हो, मेरे ऊपर क्यों अपराध चढ़ाते हो, मैं तो कुष्टी हूँ, मुझे मत छुओं, मेरे पैरो को मत छुओं।" किन्तु गोस्वामीजी माने ही नहीं। अन्त में उन्होंने भगवान् के दर्शन कराने का वचन दिया और कई बार दर्शन कराये। एक बार दर्शन हुए तब पहिचाने नहीं। एक दिन मन्दाकिनी के तट पर तुलसीदासजी चन्दन घिस रहे थे, भगवान बालक रूप मे आकर उनसे चन्दन माँग-माँगकर लगा रहे थे, फिर भी गोस्वामीजी उन्हें पहिचान नहीं रहे थे। तब हनुमानजी ने तोता बनकर यह दोहा पढ़ा।

"चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुबीर।।"

इस प्रकार जहाँ-जहाँ भी भक्तों पर कोई विपदा पड़ती है, स्मरण मात्र से हनुमान्जी वहाँ पहुँचकर भक्तों की विपति को हरते हैं और उनकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। राम कथा के रामनाम कीर्तन के जितने प्रेमी ये हैं, उतने कोई नहीं, इनके चित्र को चाहे पृथ्वी पर अंकित कर लो, पत्थर की, धातु की कैसी भी मूर्ति बना लो, उसी में प्रकट हो जाते हैं। जिन्हें हनुमानजी को प्रसन्न करना हो, वह इन्हें विधिवत् आसन देकर राम कथा कहना आरम्भ कर दे। हनुमान्जी उसकी समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण कर देंगे। उसे किसी प्रकार की कमी न रहेगी ये इस लोक की सम्पत्ति और विभूति बढा देते हैं, भूत, प्रेत, पिशाच तथा अन्य अपग्रहो से रक्षा भी करते हैं और परलोक

मे भी सहायता करते हैं, भगवान् का साक्षात्कार करा देते हैं, ऐसे प्रत्यक्ष देव की पूजा कौन न करेगा? जैसे ये प्रत्यक्ष देव हैं, प्रभु प्रेमी अनन्य सेवक है, वैसे ही ये अध्यात्म तत्त्व-वेत्ता भी है। ऐसे राम भक्त, सकल अमङ्गल नाशक करूणा-वरूणालय श्रीमारुतिनन्दन हनुमान्जी के पादपद्मों में हम पुनः-पुनः प्रणाम करते हैं।

भक्त में और भगवान् में, दास में और स्वामी में,सखा में और मित्र मे, पिता में और पुत्र में, कान्त में और कान्ता में वास्तविक कोई भेद नही होता। रस का आस्वादन करनेके लिमित्त दो हो जाते हैं। जहाँ द्वैधी भाव है, एक दूसरे को अपने से पृथक समझता है, वहाँ रस, की उपलब्धि नहीं होती। रस तो जब दो एक हो जाते हैं तभी मिलता है, रस कोई दूसरा नहीं वही परमात्मा रस रूप है। मोह ही बन्धन है, मोह का क्षय ही मोक्ष है। भक्त तो सदा मुक्त है, उसे कभी बन्धन होता ही नहीं। फिर व्यवहार में भक्त भगवान् से तत्त्व की जिज्ञासा करता है, मोक्ष का मार्ग पूछता है, अपने लिये नही, अ'ना तो वह मुक्त ही है, उसका प्रश्न जन कल्याण के लिये है, लोक संग्रह के निमित्त है, श्रीहनुमान्जी ने भी लोक कल्याणार्थ अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजी से मुक्ति का मार्ग पूछा था। अध्यात्म तत्त्व का रहस्य जानना चाहा था।

हनुमान्जी ने भगवान् से पूछा-"प्रभो! मुझे मुक्ति का वर्णन करें, जिससे मैं मुक्त हो जाऊँ? मुझे तत्त्व का उपदेश करें।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-"तत्त्वज्ञान के लिये वेदान्त शास्त्र का आश्रय लो।"

हनुमान-"वेदान्त किसे कहते हैं?"

श्रीराम- "जैसे तिलों में तेल अवस्थित है वैसे ही वेदों में साररूप से वेदान्त अवस्थित है।"

इस पर हनुमान्जी ने वेद, उपनिषद् तथा वेदों की संख्या और उनके नाम पूछे। भगवान् ने उनके नाम तथा संख्या बता दीं। फिर हनुमान ने मुक्त होने के विभिन्न मुनियों के मत बताकर मुक्ति के प्रकार की जिज्ञासा की।

इस पर श्रीराम ने कहा-"सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य चार प्रकार की मुक्ति है।"

हनुमान्- "सालोक्य मुक्ति क्या है?"

श्रीराम- "मेरे लोक में ही जो रहें, अन्यत्र कहीं भी जिसे न जाना पडे, वह मेरे नाम की संकीर्तननादि भक्ति साधनों से प्राप्त होती है।"

हनुमान् -"सारूप्य किसे कहते हैं?"

श्रीराम- "मेरे समान रूप को प्राप्त हो जाना। यह मुक्ति काशी क्षेत्र मे

तारक मन्त्र के श्रवण करते हुए मरने आदि से होती है।"

हनुमान्- "सामीप्य मुक्ति क्या है?"

श्रीराम- "मेरे समीप ही वास मिलने को सामीप्य मुक्ति कहते है, जो सदाचार में निरत होकर मेरे रूप का निरन्तर ध्यान करते रहते हैं उन्हें यह मुक्ति प्राप्त होती है।"

हनुमान्-"सायुज्य मुक्ति क्या है?"

श्री राम-"गुरूपदिष्ट मार्ग से जो एकमात्र मेरा ही ध्यान करते हैं, वे भ्रमर कीट न्याय से ही रूप को प्राप्त कर लेते हैं उसी राज्य को सायुज्य मुक्ति कहते हैं। यह मेरी सम्यक् ध्यानोपासना से प्राप्त होती है। मुक्तिके साधन उपनिषदों में बताया गया है। अतः उपनिषदों के स्वाध्याय से मुक्ति मिलती है।"

इस पर हनुमान् जी उपनिषदों की संख्या तथा कौन-सी उपनिषद किस वेद की है। यह प्रश्न किया। तब भगवान् ने १०८ उपनिषदों के नाम गिनाये। किस वेद की कौन-सी उपनिषद् है यह भी बता दिया। तदन्तर उपनिषदों की महिमा और उनके अधिकारियों का भी उल्लेख किया। फिर किसे सुनाना चाहिये यह बताया और यह भी समझाया कि कौन-सी उपनिषद् किस वेद की है।

हनुमान् जी ने पूछा - "कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है।"

श्री राम - "साधन चतुष्टय सम्पन्न पुरूष को ही ज्ञान के द्वारा कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है।"

हनुमान् - "जीवनमुक्ति और विदेह किसे कहते हैं, इनके होने के प्रमाण, इनकी सिद्धि और उस सिद्धि का प्रयोजन क्या है?"

श्रीराम - "संसारी ज्ञान ही बन्धन है और तत्व का ज्ञान ही जीवनमुक्ति है। प्रारब्ध रूप उपाधि नष्ट होने को ही विदेह मुक्ति बताया है। इनके होने मे वेद उपनिषदें ही प्रमाण हैं। आनन्द की प्राप्ति पुरूषार्थ से होती है। समस्त वासनाओं का नाश होना ही जीवन्मुक्ति का स्वरूप है।"

हनुमान् जी ने पूछा - "भगवान्! पुरूषार्थ क्या है?"

श्रीराम - "पुरूषार्थ दो प्रकार के होते है, एक शास्त्र विरूद्ध दूसरा शास्त्रानुकूल पुरूषार्थ बन्धन को हेतु है, शास्त्रानुकूल पुरूषार्थ शनैः - शनैः हमें परमार्थ की ओर ले जाता है। पहिले अशुभ वासनाओं को हटाकर शुभ वासनाओं का त्याग करके निर्वासना मन को बनाना चाहिये। वासनायुक्त है वही बद्ध है और जो वासना से रहित हो गया वही मुक्त है।"

हनुमान् - "भगवान्! वासना का स्वरूप क्या है?"

श्री राम - "चार परिचित पदार्थों की जो चित्त निरन्तर चिन्तन करता रहता है वे ही वासनायें हैं। उन्हीं के कारण जन्म मरण होता है। भावना के कारण ही प्राणो में स्पन्दन होता है, उस स्पन्दन से ही वासनायें उत्पन्न होती रहती है। इसी से बार - बार जन्मना मरना पड़ता है। इसीलिये सर्व प्रथम अशुभ वासनाओं को त्यागकर फिर शुभ वासनाओं को भी त्याग दे फिर चित्त को वश में करें।"

हनुमान्-"चित्त को वश में करने के साधन क्या हैं?"

श्रीराम- "अध्यात्मविद्या, साधुसंङ्ग, वासना त्याग और प्राण निषेध ये चार चित्त को वश में करने के उपाय हैं। चञ्चल चित्त ही हमें संसार में घुमाता है। चित्त जहाँ चञ्चलता छोड़कर एकाग्र हुआ, वहीं ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है। ज्ञान से मुक्ति लाभ होता है। चित्त एकाग्र होता है ध्यान से । इसलिए चिदानन्द स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये। चिरकाल तक ध्यान का अभ्यास होने पर अहंकार विलुप्त हो जाता है तथा मनोवृत्ति ब्रह्माकार में प्रवाहित होने लगती है। उसी वृत्ति को सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। जब चित्त की समग्र वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं उसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। जब तक वासनाओं का क्षय नहीं होता तब तक परमानन्द की प्राप्ति असम्भव है। मलिन वासनायें हमे संसार के आवागमन में फँसाती है। शुद्ध वासनायें जन्म-मृत्यु से छुड़ातीं है। इसलिये निर्वासना हुए बिना ब्रह्मानन्द की प्राप्ति असम्भव है। समस्त वासनाओं का भण्डार यह महान् अपवित्र शरीर ही है। विषयों में जो भोगवासना है, पहिले इसे छोड़कर मोक्ष की वासना करनी चाहिये। अन्त में मोक्ष की वासना को भी छोड़कर पूर्ण रूप से मेरे ही सत् स्वरूप में समाहित हो जाओ। तुम अपने को शुद्ध स्वरूप अनुभव करो। ऐसा करते-करते तुम देह रहते ही जीवन्मुक्त हो जाओगे। अन्त में देह पात होने पर जीवन्मुक्त पद का भी परित्याग करके विदेह मुक्ति की अवस्था में पहुँच जाओगे। यही विष्णु का परम पद है। यह पद निष्काम उपासक को प्राप्त होता है। यह अध्यात्म विद्या का परम रहस्यमय तत्व है। इसी को मुक्तिकोपनिषद् या महा उपनिषद् कहते हैं।

हनुमान्जी को श्रीराम से यह मुक्तितत्व प्राप्त हुआ। सनकादि महर्षियों ने रामरहस्योपनिषद् तथा रामोपनिषद् आदि में इसी तत्व को समझाया है। हनुमान्जी तो तत्व वेत्ताओं के अग्रणी हैं। इनकी कृपा से न जाने कितने जीवों का उद्धार हुआ है, हो रहा है और अन्तकाल तक होता रहेगा। हनुमान्जी की कृपा से ही राम भक्ति की प्राप्ति हो सकती है। अतः परम तत्व की प्राप्ति की जिनको इच्छा हो उन्हें हनुमान्जी की शरण में जाना चाहिये। हनुमान्जी का चरित्र महान् है। पुराणों में इसका विस्तारसे वर्णन है। हमने तो यहाँ बहुत

ही सक्षेप मे उसका वर्णन किया है. श्रीपवनतनय के पावन पादपद्मो मे पुन पुन प्रणाम है, वे हमें अपनी अहैतुकी भक्ति प्रदान करें ।

-इतिशम्-

चंडी कार्यालय, अलोपीबाग के कल्याण मन्दिर से प्रकाशित "श्री हनुमत-साधना सुधा" में श्री बलराम दुबे ने श्री हनुमान के कृतित्व और व्यक्तित्व की योग के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक व्याख्या की है।

श्री हनुमान जी श्री माता जी के प्राण हैं। उनकी अजर-अमर "प्राण"-शक्ति हैं। व्यक्ति की "कुण्डलिनी"-शक्ति है, जो हृदय के "अनाहत"-चक्र मे स्थापित हो जाती है और अधोगत चक्रों में कभी उतरती ही नहीं- श्री रामकृष्ण परमहंस की तरह।

इसीलिए श्री रामावतार-काल में श्रीमन्नारायण की शक्ति श्री माँ जानकी ने अपने परम प्रिय सु-पात्र- ज्ञानियों में अग्र-गण्य, शक्ति के स्रोत और भक्ति के क्षीर-सागर श्री हनुमान जी को सदा-सदा केलिए अजर-अमर बनाकर मानवता के कल्याण के लिए, निरन्तर जलते हुए प्रकाश-स्तम्भ के रूप में स्थापित कर दिया था-

"अजर-अमर गुण-निधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघु-नायक छोहूँ।।"

हर तरह से उन्हें सिद्ध एवं शक्ति-सम्पन्न बनाकर ही रावण के प्रिय उपवन मे "सिद्धि फल" खाने के लिए भेजा-

"रघुपति चरण हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु।"

भेजने के पूर्व ही श्री माँ श्री हनुमान् जी को अजर-अमर बना देती है। "श्री राम-नाम" एवं "रघुपति'-चरणों को हृदय मे धारण कर प्रवेश करने की दीक्षा "कवच"-रूप मे प्रदान करती है। फिर भी, जब उन्हें श्री हनुमान् जी के लंका में घेर लिए जाने का समाचार प्राप्त होता हैं, तो आतुर हो उठती है। श्री अग्नि-देव को उनके लुप्त देवत्व का ध्यान कराती हैं। अपनी सेवा की याद कराती हैं। स्वयं श्री रघुनाथ जी की सौगन्ध देकर श्री हनुमान जी को बचा लेती हैं। अप्रत्यक्ष रूप से मुक्त-केशी सीता स्वयं खड़ी होकर क्रोधाग्नि से लका को जलाती हैं, पर अपने कृत्य को प्रकट नहीं होने देतीं। योग-माया शारदाम्बा की तरह जिन्होंने प्रकट होकर श्री विष्णु भगवान् को "मधु-कैटभ-बध" के लिए प्रस्तुत ही नही किया था अपितु स्वयं "विष्णु" चेतना बनकर असम्भव को सम्भव कर दिखाया था।

भजनानदी दिव्य भक्तों केलिए तो श्री मां का दरबार सदा के लिए खुला

रहता है। ऐसे भक्तों के लिए क्या-दिन क्या रात, क्या शैय्या क्या शौच, क्या योग- क्या आसन, श्री अम्बिका जी की गोद में बैठे हुए अबोध बालक - रूपी भक्त को क्या शर्म- क्या लाज लज्जा, श्री हनुमत के हृदय - सिंहासन पर सदा विराजमान श्री राम-जानकी चाहे तो कोई कभी भी फाड़कर देख ले कि वे वहाँ हैं या नहीं। सच्चा विश्वास ही सत्य की आधार शिला है।

माँ जानकी तो श्रीराम को छोड़कर पहले ही निज धाम चली गयी थी। जब त्रेता-युग के समापन का समय आया, श्री राम साकेत-धाम जाने की तैयारी मे लग गए। उन्होंने श्री हनुमान जी को माँ जानकी की आज्ञा के अनुसार पृथ्वी पर रहकर ही सत्य की रक्षा का भार संभालने को कहा। श्री हनुमान जी को कितना कष्ट हुआ होगा- कौन कर सकता है, इसकी कल्पना, उन्होने स्पष्ट कहा- "प्रभो! जब से मां जानकी गई हैं, मेरे वाम अंगों की पीड़ा बढ़ती ही जा रही है। आप लोगो के श्री-सानिध्य में लंका-दाह में दग्ध हुई देह की पीडा तो प्रतीत ही नहीं हुई, अब इसे कैसे झेल पाऊंगा।"

श्री राम उन्हें अपने प्रिय धाम चित्रकूट में ले गये। श्री हनुमान को धारा की पहाड़ी पर निवास करने का आदेश दिया। उन्होंने एक तीसरे पर्वत के हृदय को भेद कर अमृत की धारा बहा दी, जो किसी अज्ञात स्रोत से निकलकर श्रीहनुमान् जी के वाम अंग को स्पर्श कर शीतलता प्रदान करती हुई शिव की पार्वतेय-जटाओं मे प्रकट होकर लुप्त हो जाती है।

श्रीराम - जानकी के साकेत-वास के बाद तो उनकी सम्मिलित शक्ति श्री हनुमान् जी के रूप में ही व्याप्त हो गई, जो उर्ध्व-गामी प्राण-वायु को स्वय धारण कर साधक को प्रकाश-पथ पर उठाते हैं- कभी गुरू रूप में ज्ञान देते हुए, कभी हृदय में इष्ट-देवता का साक्षात्कार दिलाते हुए, तो कभी ऐहिक, दैविक एवं भौतिक तापों को मलयानिल की स्पर्श-शीलता देते हुए। जब कभी श्री हनुमत-कृपा-प्राप्त साधक इष्ट का ध्यान करते हैं, स्वयं श्री हनुमान जी उसे स्थिरता प्रदान करते हैं। अपने साथ होने का एहसास देते हैं। श्री माता की राजसी एवं सात्विक सत्ता का साक्षात्कार श्री हनुमत-कृपा से ही सम्भव है। सर्व विद्या वारिधि, अतुलित बल-धाम श्री हनुमान जी ऐश्वर्य की खान है। स्वय श्री मा उन्हें आशीर्वाद दिया है-

"तमाह जानकी प्रेत्ता, यत्र कुत्रादि मा ते।
स्थितं त्वामनु-यास्यन्ति, भोगाः सर्वे ममाज्ञया।।"

अर्थात् हे हनुमान्! आप जहाँ रहेंगे, वहाँ मेरी आज्ञा से समस्त भोग उपस्थित रहेंगे।

जहाँ श्री हनुमान जी रहेंगे वहीं श्री माता का परम वैष्णवी स्वरूप भी

प्रकट होगा- उनकी सेवा अन्य कौन करेगा। ''श्री अगस्त्य संहिता' के अनुसार श्री हनुमान जी का अवतरण मंगलवार कृष्णा चतुर्दशी को मेष-लग्न में हुआ था। अवतरण का समय सन्ध्या-काल बताया गया है। उसी लग्न और कृष्णा चतुर्दशी युक्त मंगलवार को मध्य रात्रि में श्री विष्णु-भगवान् की तपस्या से प्रसन्न होकर सौराष्ट्र मे ''हरिद्रा-सरोवर के तट पर, दानवों का तूफान शांत करने के लिए श्री विष्णु-शक्ति- माता बगलामुखी का अवतरण हुआ था, जो स्तम्भिनी, सिद्ध-विद्या, ब्रह्मास्त्र हैं। इसी ब्रह्मास्त्र को श्री अगस्त्य मुनि ने भगवान् राम को दिया था, जिससे श्री राम ने रावण का वध किया था। श्री हनुमान् की ''स्तम्भिनी-शक्ति' आसुरी-सेना के बल एवं चाल को कीलित करती है, कुम्भकर्ण-मेघनाद के ''कृत्या' अभिचारों को नष्ट करती है और इस तरह श्री राम के लिए वह अवसर उत्पन्न करती है, जब वे अमर प्राण रावण पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर उसे समाप्त कर देते हैं।

श्री हनुमान् जी श्री राम के निज अंश हैं, पुत्र-रत्न-प्राप्ति के लिए जब राजा दशरथ जी ''पुत्रेष्टि-यज्ञ' का विधिवत आयोजन करते है, तब अग्नि देवता प्रकट होकर ''यज्ञ''-प्रसाद देते हैं। माता कौशल्या ने उस प्रसाद को आपस में तीन पटरानियों में बाँट लिया। जो अंश माता कैकेई को प्राप्त हुआ, वह उनके हाथ से गिर गया, जिसे एक चील ले उड़ी। दैवी संयोग से वह पुत्र हेतु सूर्य-देव को अर्घ्य देने के लिए खड़ी माता अञ्जनी की अञ्जुरी में गिरा। माता ने उसे ग्रहण कर लिया। जिस प्रसाद के अंश से माता कौशल्या से श्री राम, सुमित्रा से श्री लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी तथा कैकेई से श्री भरत जी अवतरित हुए। आध्यात्मिक दृष्टि - कोण से अगर देखें तो जो अंश माता कैकेई के हाथ से गिरा, उसे पवन की ''विमर्श-शक्ति' चील के रूप में ले उड़ी। वह प्रसाद पवन-देव की प्रकाश शक्ति अञ्जना माता को मिला, जो अग्नि-स्वरूपा शुद्ध-विद्या हैं। उनसे परम सात्विक पुरुष रूप श्री हनुमान जी का अवतरण हुआ। इस प्रकार एक ओर जहाँ तपस्विनी माता अञ्जना एवं तपस्वी केशरी के प्रांगण में शुद्ध विद्या का सात्विक रूप प्रकट हुआ, वहीं राजा दशरथ के राज-महल में ''राज-योग'' की परम सिद्धि पुरुषोत्तम राम हुए।

श्रीराम के बिना श्री पवन-पुत्र अधूरे हैं। श्री हनुमान के बिना श्री राम जी अधूरे हैं। यह अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध ''श्री पंच-मुखी हनुमत् कवचम्'' में स्पष्ट हुआ है, जिसके ऋषि श्री रामचन्द्र हैं तथा देवता श्री हनुमान् जी। श्री हनुमान की कृपा से ही श्री राम की प्रियता प्राप्त होती है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखे, तो श्री वशिष्ठ जी एवं श्री विश्वामित्र जी की कृपा से श्री राम को ''राज योग'' की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि राज-राजेश्वरी जानकी के रूप में ''धनुर्यज्ञ'' के उपरान्त प्राप्त हो गई थी। ''शुद्ध-ब्रह्म-ज्ञान'' की तलाश-यात्रा प्रारम्भ हुई, तो

श्री राम ने राज-गद्दी त्याग दी। बटुक की तरह वन में निकल पड़े, पर "राज-योग" के संस्कार साथ थे। अन्त में राज-राजेश्वरी का साथ छूट गया। अगर माता सीता साथ रहतीं, तो श्री राम की तलाश कभी पूरी नहीं होती। मध्य जंगल में सीता माता खो जाती हैं। पत्तों - पत्तों से सीता माता का पता पूछते हुए श्री राम भटकते हैं।

पूर्ण ब्रह्म ज्ञान की तलाश में निकले हुए वीर-सिद्ध को उस अवस्था में पाकर निजांश श्री हनुमान् जी द्रवित हो उठते हैं। बटुक के रूप मे, सिर पर "ऊर्ध्व पुण्ड' लगाए सामने आ खड़े होते हैं। प्रकट रूप से श्री राम का परिचय पूछते हैं। श्री राम का मस्तक नत हो जाता है। श्री हनुमान "प्राणेश्वर" की गरिमा पर गद्गद हो उठते हैं। जन्म-जन्मान्तर का परिचय अश्रुओं की बरसात मे बहने लगता है। श्री हनुमान् से मिलते ही श्री राम की तलाश पूरी हो जाती है, जैसे अग्नि वायु में विलीन हो जाती है और वायु आकाश में।

श्री हनुमान् जी "वायु"-पुत्र हैं। "अनाहत"-चक्र में "वायु" का स्थान है। "स्पर्श" उसका गुण है। "स्पर्श" अर्थात मिलन। तभी प्रत्येक अवसर पर ब्रह्माग्नि-स्वरूप राम अन्तस् की ज्वाला को शान्त करने के लिए, नन्दन-कानन की मलय समीरण सुरभि-स्वरूप पवन-पुत्र के पावन-स्पर्श से शीतलता प्राप्त करते है। बार बार प्रगाढ़ आलिंगन बद्ध हो जाते हैं। समस्त "अग्नि"-तत्त्व का "वायु"-तत्त्व में समाहन साकार हो उठता है।

उधर देखिए। "पवन"-पुत्र होने के उपरान्त भी श्री हनुमान् जी की शक्ति कीलित हो गई थी। सम्भवतः "प्रकाश'-शक्ति पर "विमर्श"-रूपी बली के उच्छिष्ट प्रसाद का प्रभाव था। श्री हनुमान् जी बलि के भय से गुरु-भ्राता श्री सूर्य पुत्र सुग्रीव के साथ एक जंगल से दूसरे जंगल, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की ओट मे भाग रहे हैं। चील का तामसी संस्कार सम्भवतः सूक्ष्म रूप से चिपक गया था और श्री राम से मिलते ही नष्ट हो गया। "पवन"-प्राण की शक्ति मुक्त हो उठी। जब श्री राम का बल आ मिला, तब श्री हनुमान् जी ने पर्वत को पाँवों से दबाया, वह पाताल में धंस गया। पाँव आगे बढ़ाया, तो धरती, छोटी पड गई। छलांग लगाई, तो सागर "गो-खुर" बन गया। पवन की "प्रकाश"-शक्ति को रावण ने मापने की कोशिश की, तो सोने की लंका जलकर राख बन गई। श्री राम और हनुमान् की इस आध्यात्मिक अभिन्नता को माता सीता ने देखते ही पहचान लिया था। उन्हें अजर अमर बनाकर तीसरे दिक्-पाल "यम" के "दण्ड" को सदा-सदा के लिए खण्डित कर दिया।

श्री हनुमानजी के रूप में स्वयं नन्दी ही शिव रूपी राम से आ मिले थे। पवन की गति स्तम्भित कर देने वाले श्री गरूड़ ही श्री विष्णु से आ मिले थे। जिन्होंने सूकर के रूप में पृथ्वी के गर्भ से वेद को ढूँढ निकाला था,

उस वाराह भगवान् की शक्ति के साथ श्री हनुमान् जी का अवतरण हुआ था। लंका में बन्दी सीता माता हों, या पाताल के गर्भ में छिपा दिये गये श्रीराम और लक्ष्मण उन्हें ढूँढ़ निकालना श्री वाराह-रूप-रामदूत हनुमान् जी के लिए मात्र एक खेल था। युद्ध करते हुए हनुमान को श्री राम ने नृसिंह बताकर सम्बोधित किया- "देखो विभीषण। हनुमान मेरे नृसिंहावतार का स्वरूप धारण किए हुए शोभायमान् हैं।"

"ल"-कार अर्थात् 'लँट' को तन्त्र की सांकेतिक भाषा में "धरा बीज" कहा जाता है। यह "पृथ्वी-तत्त्व" के स्थूल तम स्वरूप को दर्शाता है। "अँ" को "इन्द्र"-बीज भी कहा गया है। व्यष्टि-स्तर पर, "कुण्डलिनी जागरण का अमोघ एकाक्षर मन्त्र "लँ" है। मन्त्र के रूप में "अँ"-कार का प्रयोग "पृथ्वी-तत्त्व" की स्थूलता एवं समग्रता को दर्शाने के लिए प्रतीक के रूप में किया जाता है। अन्य मातृकाओं के साथ जोड़कर मन्त्रों की व्यापकता को दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए, आकाश-स्वरूप "ह" के साथ "पृथ्वी-बीज" लँ का जोड़कर ई-कार के साथ समन्वित कर यदि इन्दु-बीज से अभिमण्डित करें, तो श्री बगलामुखी माता का एकाक्षर बीज मन्त्र "ल्हीं" बनता है, जो समस्त आपदाओं का निवारण करने वाला सिद्ध स्तम्भ - बीज एवं अमोघ ब्रह्मास्त्र-स्वरूप है।

माता बगलामुखी जी के समान ही हनुमान जी परम वैष्णवी शक्ति है। "आगत्स्य-संहिता" के अनुसार श्री हनुमान जी का जन्म भौमवार को कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन मेष लग्न में हुआ था। यथा-

"ऊर्जे कृष्ण-चतुर्दश्यां, भौमे स्वात्यां कपीश्वरः।
मेष लग्नेऽञ्जना-गर्भात् प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः॥"

इसी तिथि को "मकार-लग्न" में माता बगलामुखी का अर्ध-रात्रि में अवतरण हुआ था। "ल्हीं' माता बगलामुखी का बीज है। देवताओं में देवाधिदेव का बीज-मन्त्र "लं" है। इन्द्र को जीत लेनेवाला मेघनाद "इन्द्र-जीत" के रूप में विख्यात हुआ। इन्द्र तो स्वयं हनुमान जी के अमित बल-विक्रम से अवगत हो चुके थे क्योंकि बाल्य-काल में ही उगते हुए सूर्य को फल समझ कर निगल लेने वाले श्री हनुमान् जी ने इन्द्र के वज्र का प्रहार अपनी हनु पर सहज ही झेल लिया था। राम - रावण - संग्राम के बीच मेघनाद को श्री हनुमान जी द्वारा इतनी बार आहत किया गया कि वह उनके नाम मात्र से ही डरने लगा था।

"कुण्डलीनी-तन्त्र-विज्ञान" में प्रथम चक्र - मूलाधार चक्र" है। यह मेरू-दण्ड के निचले भाग के गुदा के ऊपर है। सर्पिणी-रूप में परि-कल्पित

''कुण्डलिनी शक्ति' प्रत्येक व्यक्ति के इसी ''मूलाधार चक्र' में ''स्वयम्भू-लिंग को साढ़े तीन कुण्डलों मे घेरकर स्वाभाविक निद्रा में पड़ी रहती है। निद्रा की यह अवस्था वस्तुतः ''योग-निद्रा'' है, जिसके प्रभाव में ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी चिर काल तक निद्रित - निस्पन्दित पड़े रहते है। इसी तथ्य को ''श्री दुर्गा-शसशती'' के प्रथम अध्याय में ''मधु-कैटभ-बध'' प्रसंग के रूप में दर्शाया गया है।

श्री हनुमान जी ही ऐसे एक देवता हैं, जो अहिंसक अहर्निश जगे रहते हैं। ''ब्रह्म- द्वारा'' रूपी दरबार के आप सतत जाग्रत प्रहरी हैं। यहाँ तक कि मायावी ''अहि-रावण'' भी स्वयं को इनकी दृष्टि से छिपा नहीं सकता, भले ही वह छल पूर्वक साधु ''विभीषण'' के वेश में प्रवेश क्यों न पा लें।

श्री हनुमान जी नित्य चैतन्य-शक्ति हैं। पवन-पुत्र अर्थात् ''पावन प्राण' अर्थात् स्वयं प्राण वायु होने के कारण व्यक्ति की आत्म शक्ति हैं जो सक्रिय होकर राम रूपी परमात्म-तत्व के साथ एकात्मकता स्थापित करते हैं। परमात्मा से विलग होकर महावियोग के अवस्था में व्यक्ति जन्म-जन्मान्तर तक भटकता रहता है। कुण्डलिनी शक्ति माया में संस्कार और मोह की ग्रन्थियों के कटने के बाद उस महा-वियोग की व्याकुलता को अनुभव करती हुई, परमात्म -तत्व से मिलन की अभिसार - यात्रा पर चलने के लिए, सर्पिणी की तरह फुत्कार कर असीम ऊर्जा के साथ ऊर्ध्व रेत होती है।

काम, क्रोध, मद, मोह, रूपी महा-गज पृथ्वी के स्थल तत्व की द्योतक है, जो कुण्डलिनी - शक्ति को ऊपर उठाने से रोकता है। व्यक्ति अपने स्वरूप को भुलाकर निष्क्रिय पड़ा रहता है। गुरू रूप श्री जाम्बवन्त जी श्री हनुमान जी की इसी सुषुप्त शक्ति को जगाते हैं। निज स्वरूप की चेतना आते ही हनुमान जी जब पर्वत को पांव से दबाकर ऊपर छलांग लगाते हैं, जब पर्वतराज पाताल मे समा जाता है और सातों समुद्र गोखुर के समान छोटा सा गड्ढा बन जाता है।

समुद्र - लवंन करते हुए श्री हनुमान जी का ध्यान करने से ''जल'' तत्व प्रधान क्षेत्र ''स्वाधिष्ठान'' चक्र जाग्रत होता है। सम्मार्ग की बाधाएँ दूर होती है। जल तत्व के देवता ''वरूण'' जो पाश ''राग'' अर्थात् ''मोह'' का स्वरूप है। यह समस्त प्राणियों को अपने अवगुण्ठन में बांधे रहता है। जब यह ''पाश'' कटता है, तब भव सागर गाय के छोटे से खुर से बने हुए गड्ढे अर्थात् गोखुर मे रूप में परिवर्तित हो जाता है। ''समुद्र-लंघन'' के बाद ही श्री हनुमान जी को ''चिद् अग्नि-कुण्ड-सम्भ्रभुता'' जगज्जननी सीता माता के दर्शन प्राप्त हुए थे।

''नाभि क्षेत्र में विद्यमान महत्वपूर्ण ''मणिपुर'' चक्र है, जो अग्नि तत्व-

प्रधान है। ज्ञानेन्द्रियों में रूप और कर्मेन्द्रियो में "नेत्र" हाँ की विशेषताएँ है। इष्ट के दर्शन होते ही और दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।

पृथ्वी - तत्व प्रधान "मूलाधार" चक्र, जल-तत्व-प्रधान "स्वाधिष्ठान चक्र" के ऊपर अग्नि - तत्व - प्रधान एक चक्र में विमर्श के ठोस और तरल दोष जलते हैं। मन, बुद्धि यहाँ की तपाग्नि में तप्त होकर चित् - शक्ति में परिवर्तित होते हैं, जहाँ सद् - गुणों का हवन किया जाता है। उस दिव्य यज्ञ - शाला में "र" बीज - धारक अग्नि - देव प्रकट होकर देवत्व का सृजन करते है। उन्हीं की कृपा से दशरथ जी के यहाँ राम - लक्ष्मण - भरत शत्रुघ्न जी अवतार लेते हैं ।

कहते हैं कि श्री माता अंजना स्वयं अग्नि देवी हैं, जिनका संस्कार वायु - तत्व से हुआ। उनके घर्षण से श्री हनुमान जी अवतरित हुए जो जड़ चेतन की प्राण वायु के रूप में अजर - अमर होकर प्रतिष्ठित हुए।

पञ्च - तत्वात्मक सृष्टि के निर्माण में सर्व - प्रथम आकाश बना, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से जड़ चेतन सृष्टि, जो पञ्च - तत्वों से निर्मित हुई। इस प्रकार पवन पुत्र होने के कारण अग्नि - देवता की तरह श्री हनुमान् जी भी पवन पुत्र से उत्पन्न हुए। श्री अग्नि देव और श्री हनुमान् जी आकाश - पौत्र से उत्पन्न होने के कारण सहोदर भ्राता हुए। यही कारण है कि लंका के अग्निकांड में कनक - महल तो जल कर राख हो गए, किन्तु हनुमान् जी का बल और तेज कुन्दन के तरह सदा-सदा के लिए निखर उठा।

लंका - प्रवेश करने के पूर्व ही श्री हनुमान् जी ने द्वार - पालिका लंकिनी को अपनी वीरता की पहचान दिलाकर अभिभूत कर लिया था। इस चक्र की देवी का नाम "लाकिनी" है। आइए, श्री हनुमान् जी से प्रार्थना करें कि वे "श्री लाकिनी" - रूप लंकिनी को स्वयं हमारा परिचय दिलाएं। उनकी कृपा के बिना तो सुई भी इस छेद से नहीं निकल सकती — मसा भी लंका में नहीं जा सकता ।

लंका के अन्दर प्रवेश मिला, जहाँ "विमर्श" की नगरी का रत्न पीठ है। असुर - राज ने स्वर्ग को धरती पर उतार दिया था। प्रकाश - मय श्री मद्-नगर श्री राज - राजेश्वरी का चैतन्य निवास - स्थान है। लंका भण्डासुर की शुल्यक नगरी है, जहाँ सब कुछ होते हुए भी अन्धकार है। इसी निशा में हनुमान् जी निशा - साधना करते हुए श्री लंका - भ्रमण करते हैं।

मेरु दण्ड पर हृदय - स्थल - स्थित "अनाहत" चक्र पवन का क्षेत्र है। स्पर्श इसका गुण और इष्ट मिलन का यह दिव्य क्षेत्र है। 'कठोपनिषद्' में

वर्णित अंगष्ठ - मात्र के प्राण - पुरूष यहीं निवास करते है।

हृदय के छवि मन्दिर में आत्मा परमात्मा तत्व का स्नेहिल स्पर्श पाती है। इष्ट - मिलन का कोहवर है - "अनाहत" चक्र, पवन का स्थान, जिनके प्राण पुत्र श्री हनुमान् जी हैं। प्राण - वायु के क्षेत्र हैं यह ! स्वयं हनुमान् जी प्राण वायु के रूप में निवास करते हैं और इष्ट के दर्शन कराते हैं। प्राण वायु की यही सार्थक साधना है ।

लंका मूलाधार में स्वयम्भू लिंग का जो जड़मयस्वरूप था, वह यहाँ बाण - लिंग के रूप के स्पन्दित होता है।

लंका - रूपी पाप - नगरी को जलाने के पश्चात् श्री हनुमान् जी जब श्री राम से मिलते हैं, तब श्री राम के प्रगाढ़ आलिंगन में युग युगान्तर समाहित हो जाते हैं। राम कथा का आनन्द भुलाकर शिव जी समाधिस्थ हो जाते है, जब जगजननी पार्वती ने स्मरण दिलाया, कथा आगे बढ़ी।

श्री शेषावतार लक्ष्मण जी को कदाचित् कपि के व्यापक परम ब्रह्म-स्वरूप का आभास नहीं था। वे अकेले रावण पुत्र के साथ युद्ध करने चले गए। शक्ति-बाण के लगते ही प्राण की शक्ति चली गई। शेषावतार को मुर्च्छित देखकर उन्हें बल - पूर्वक उठाकर ले जाना चाहा, पर उठा न सका। उन्हीं लक्ष्मण जी को बाहों मे उठाकर हनुमान् जी शिविर में ले जाते हैं और प्राण - वायु को सञ्जीवनी शक्ति से प्राण - दान देते हैं। हिमालय पर्वत से रातों रात संजीवनी बूटी लाकर श्री लक्ष्मण जी को जीवन दान देना एक कथा हो सकती है, किन्तु हनुमान् जी प्राण - शक्ति की सञ्जीवनी - शक्ति हैं, यह तो चिर सत्य है।

हनुमान् जी स्वयं प्राणों का कवच हैं, रक्षा - सूत्र हैं। उनके स्मरण, चिन्तन एव ध्यान से प्राणों पर आए संकट स्वयं तिरोहित हो जाते हैं। "अनाहत" चक्र स्पन्दित होता है। इष्ट के स्नेहिल स्पर्श आध्यात्मिक जीवन के उत्सर्ग एव एक अद्‌भुत आनन्द की प्राप्ति हेतु आइए "अनाहत" चक्र को जगाएँ।

मेरू - दण्ड - स्थित आकाश - तत्वात्मक "विशुद्ध चक्र" सदा शिव का स्थान है। शिव स्वरूप आकाश - तत्व - द्योतक" है इसका बीज - मन्त्र है। "श्वेत गज - राज" इस बीज के वादक है। शब्द इसका गुण है।

जो आकाश - स्वरूप - ब्रम्हा हैं, वे चिदानन्द परमब्रह्म अर्द्ध नारीश्वर यहाँ चक्रेश्वरी "साकिनी" के साथ विद्यमान है, जिसका भेदन सिर्फ वही कर सकता है, जिसने देह - भाव से रहित विदेह, अवधेतश्वर या परमहंस की स्थिति प्राप्त कर ली है। पञ्च - भूत शरीर का अस्तित्व सिर्फ "विशुद्ध" चक्र क्षेत्र तक ही आता है। इसके बाद प्रणव - निरालम्ब - तत्वातीत भावातीत

अवस्था की यात्रा प्रारम्भ होती है।

"अनाहत" चक्र के मोहावरण का प्रभाव कम नहीं हुआ कि अहंकार के बादल उमड़ - घुमड़ कर चिदाकरण को विमर्श के बदलते हुए रंगों से पोतने लग जाते हैं। सुरेश्वर बनने के प्रयास में साधक असुरेश्वर बनकर दशानन रावण की तरह दिग् - दिगान्तर को दम्भ - नाद से गुञ्जित करने लगते हैं। स्वय परम ब्रम्हा परमेश्वर को राम के रूप में अवतरित होकर उसका शिरेच्छेदन करना पड़ता है।

नाद - रूपी नन्दीश्वर पर आकाश - रूपी शिव विराजमान होते हैं। श्री हनुमान् जी एकादश रूद्र के रूप में नन्दी के अवतार हैं और नर - रूप में श्री राम रूपी परमात्म - तत्व के वाहक हैं। "हँ" ॐ हँ हनुमते नमः" उनका बीज मन्त्र ही नहीं उनके समन्वित होकर "ह - हकार" आकाश - तत्व द्योतक विशुद्ध चक्र का बीज हुआ, जिसके नर वाहन श्री हनुमान् जी का ध्यान करें, जो निरालम्ब की यात्रा अपने कंधों पर बिठाकर सहज ही पार लगाते हैं।

भृ - कुटि - मध्य तीर्थराज "प्रयाग" - स्वरूप "आज्ञा" चक्र है, जिसके दो दलीय पद्म - पटलों पर "हँ - क्षवर्ण" द्वय अंकित है। ये श्री पादुका द्वय के प्रतीक हैं। इन पर प्रणव - स्वरूप रुप सत्यदेव विराजमान हैं। इनके अंग मे हिम धवल इतर लिंग शोभायमान हो रहा है। पूर्ण विकसित कैलाश शिखर की तरह विद्यमान ज्योतिर्मनि हो इतर लिंग के दुग्ध - धवल हिमाभ क्षेत्र अलोकित हो रहा है।

"मूलाधार" से अलग अलग नाड़ियों के रूप में चलकर, यहाँ इड़ा - पिंगला और सुषुम्ना परस्पर मिलकर संगम द्वीप का निर्माण करती हैं। यहा "गुरू" का स्थान है। यही शैवों का "कैलाश" एवं वैष्णवों का परम "वैष्णव-धाम" है।

जिसने परम तत्व को अपने स्वरूप में आत्म - सात कर लिया है, वही इस स्थान तक पहुँच सकता है। इसके बाद तो "प्रणव' का सोपान भी गिर जाता है। चाँद - सितारों की दूरियाँ सिमट जाती हैं।

इस निरालम्ब की यात्रा से सुग्रीव, अंगद, विभीषण सहित राम सेना अवश्य- पहुँच कर भी वहाँ से आदर सहित विदा ले लेती है। साधना के अंतिम सोपानों पर तो मात्र श्री हनुमान् जी चढ़ पाते हैं और इष्ट के साथ एक हो जाते हैं। स्वयं श्री राम - लक्ष्मण अपने "साकेत-धाम" में निवास करने के लिए लौट जाते हैं किन्तु अजर अमर श्री हनुमान् जी अमिलाभ गुरू रूप में हवा में "प्राण" - वायु की तरह व्याप्त होकर प्रत्येक साधक का मार्ग - दर्शन करते रहते हैं।

आइए, दिव्य - तम "आज्ञा" चक्र में स्थान पाने के लिए श्री हनुमान् जी का सहारा माँगे। उनका ध्यान कर, प्रार्थना करें एवं उनका स्नेहिल आशीर्वाद लें।

"प्रणव' ॐ - कार का ही दूसरा रूप स्वास्तिक है, जिसकी दोनों ऊपरी भुजाओं को श्री हनुमान् जी के दो हाथ मानें। उनमें से एक में संजीवनी बूटी, तो दूसरे में "गदा" है। "स्वास्तिक" की नीचे की दो भुजाओं का ध्यान करें, मानों वे समुद्र - मंथन के लिए उड़ान भरने वाले हैं।

धरती आकाश से दूर, निरालम्ब अन्तरिक्ष के पार, जहाँ अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की दूरियाँ सिमट जाएँ, इस दिव्य "सहस्रार" का वर्णन कौन करें; जो "सुमेरू - श्रृंग" है, सुधा - सागर मध्यस्थ मणिद्वीप है जो कदम्ब - वन-पद्मावती - नन्दन - वन है, उस "दिव्य - धाम" का वर्णन कौन करें;

जहाँ कामेश्वर के अंग में, भगवती ललिताम्बा पञ्च देवताओं के पलक पर सदाशिव का सिंहासन बिछाकर शोभायमान हो रही है।

दस दिगपालों में प्रथम दिग्पाल - देवाधि देवेन्द्र "ल" रूप धरा - बीज-धारक, पृथ्वी - तत्व प्रेरणा है। नन्दन - कानन की सुगन्धि एवं सोम - तत्व के वे एक मात्र अधिकारी है। चार वपद्य - दल वाले "मूलाधार" - चक्र में, ऐरावत पर सवार "ल" - रूप इन्द्र के अंगों में सृष्टि रचियता ब्रह्माजी एवं चक्र-देवी डाकिनी शोभायमान हैं। यहाँ स्वयंभू- लिंग को साढ़े तीन कुण्डलो मे घेरकर "कुण्डलिनी "सुषुप्तावस्था में, मुँह में पूँछ डालकर सुख पूर्वक सो रही हैं।

उक्त आनन्द - मयी निद्रा देवी "कुण्डलिनी' अंग में ब्रम्हा एवं विष्णु के कई युग गुजर जाएगें। व्यक्ति विमर्ष रूप "वृत्रासुर" के तमस् साम्राज्य में व्याप्त निविड़ अन्धकार में, जन्म - जन्मान्तर तक भटकता रह जाएगा तभी "देवासुर-सग्राम" प्रारम्भ होता है देवरि वृत्रासुर का वध करने के लिए देवेन्द्र गजराज ऐरावत पर सवार होते हैं और मन्त्र - मय "ल' रूप वज्र हाथ में धारण करते हैं, जिसकी कौंध मात्र से वृत्रासुर सपरिवार मारा जाता है। अखिल ब्रम्हाण्ड में चिन्मय प्रकाश की दिव्यता आलोकित हो उठती है।

विमर्श - रूप वृत्रासुर, जिसने हमारी दसों इन्द्रियों के द्वारों को बन्द कर हृदय में अपना साम्राज्य स्थापित कर रखा था, मारा जाता है। इन्द्रियों के दसो द्वार खुल जाते हैं। हृदय - देश में "इष्ट' का एक छत्र साम्राज्य स्थापित हो जाता है।

हजारों उदित सूर्य की नवल लालिमा वाले श्री इन्द्र - प्राण हनुमान् हाथ मे गदा लिए हुए हैं। देखिए, श्री तुलसीदास जी द्वारा वर्णित अपूर्व -

उक्त "लंगूल" की मार से "मेघनाद", जो वज्र-सहित इन्द्र को समस्त दिक्-पालों के साथ जीत लेनेवाला "इन्द्रजीत" कहा जाता है, भय से काप उठता है। इन्द्र के मद को चूर्ण करने वाला मेघनाद है, श्री हनुमान के हुं-कार को सुन कर थर्रा उठता है।

आकाश से वायु, वायु से अग्नि की उत्पत्ति हुई अर्थात् अग्नि आकाश के पौत्र हुए। वेदों में प्रथम वेद- "ऋग्वेद" इन्हीं अग्निदेव की स्तुति के साथ प्रारम्भ होता है। ऋग्वेदीय "श्री-सूक्त" की प्रथम ऋचा भी इन्हीं जातवेदा अग्निदेव की बन्दना से प्रारम्भ होती है। जात वेदा अग्निदेव पुरोहित-देव गुरू माने जाते है- "स्वाहा" एवं "स्वधा" के रूप में देवताओं एवं पितृ-देवों का भरण पोषण करते हैं। प्रकट रूप में अन्न-मय कोष का यही पोषण करते हैं। श्री विष्णु के रूप में भरण-पोषण करते हैं, रूद्र के रूप में संहार करने वाले तारक ब्रह्मा भी यही हैं।

"क्षिति जल पावक गगन समीरा।"

पञ्च-भूतात्मक शरीर के "मणिपुर-चक्र' अर्थात् नाभि-स्थल में पावक अर्थात अग्निदेव का निवास है। दस कमल-दलों-वाला "मणिपुर-चक्र" दस मस्तको वाले रावण रूपी विमर्श तत्व का प्रतिनिधित्व करता है, तो "रँ" बीज - मन्त्र-धारी परम ब्रह्म "आकाश" रूप राम के स्वरूप को भी प्रकाशित करता है। यह "रूप" का क्षेत्र है। "मणिपुर-चक्र" में स्थित रूद्राग्नि-देव की कृपा से ही स्थूल एवं सूक्ष्म दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। इस रूप में ये जगत के द्रष्टा ही है। इनकी प्रसन्नता प्राप्त कर ही श्री राम - भक्त हनुमान् जी ने पाप की स्वर्ण नगरी लंका को जलाया था।

जो स्वयं परम प्रकाश-रूप हैं, सूर्य-वंशी हैं, अग्नि-बीज अर्थात राम है और जो जड़ सृष्टि के रचयिता है, उन यज्ञ-स्वरूप पुरूषोत्तम राम के अभिन्न अग श्री हनुमान जी को लंका की पापाग्नि प्रभावित नहीं कर सकती ।

भौतिक जगत् के स्थल भाव, जो बन्धन के कारण है, वही जल कर सूक्ष्म बनते है और गन्ध - दीप के रूप में इष्ट को अर्पित होते है। काम, क्रोध, लोभ आदि अवगुण जलकर सूक्ष्म रूप में गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि से आरती की परात को सजाते है। यही कुण्डलीनी जागरण का रहस्य भी है। श्री हनुमत कृपा से पाप की लंका जलने पर "मणिपुर धाम" के प्रकाश में इष्ट का रूप झलकता है और साक्षात्कार प्राप्त होता है। दिव्य भाव के साधक श्री हनुमान जी की कृपा से ही इष्ट के प्रकाश को हृदय में धारण कर ऊर्ध्व गामी अभिसार यात्रा में अग्रसर होकर लक्ष्य - सायुज्य प्राप्त करते हैं।

श्री यम देव मृत्यु - देवता हैं, जिनके चौदह नाम हैं : १. यम, २.

धर्मराज, ३. मृत्यु, ४. अन्धकार, ५. अन्तक, ६. वैवस्वत, ७. काल, ८. सर्वभूति-क्षय, ९. औदुम्बर, १०. दध्न, ११. नील, १२. परमेष्ठि, १३. वृकोदर, १४. चित्र या चित्रगुप्त। श्री यम देवता सूर्य पुत्र है। उग्र ग्रह शनि देवता के भ्राता है। आपके हाथ में दण्ड शोभायमान रहता है, जिसके डर से अर्थात् मृत्यु दण्ड से चराचर जगत कापता रहता है। महा-भय के देवता! आपको नमस्कार। आप नर्क के अधिष्ठाता हैं और स्वर्ग-द्वार की कुञ्जी आपके ही कर-कमलों में है। प्रसन्न हो आप जीव को ब्रह्म-ज्ञान से अभिभूत करते है और "मोक्ष" प्रदान करते है।

ऋषि वाजश्रवा ने यज्ञ का आयोजन किया और अपना सर्वस्व दान दे दिया। उनके पुत्र ने बूढ़ी गायों को भी दान में दिए जाने पर शंका व्यक्त की। पिता को पुत्र के बाल हठ पर क्रोध आया और उन्होंने उसे यमराज जी को दान में दे दिया। बालक नचिकेता आपके द्वार पर तीन दिनों एवं तीन रातों तक भूखा प्यासा बैठा रहा। हर प्रलोभन देकर आपने उसे वापस मृत्यु लोक भेजना चाहा, पर बालक नहीं माना। वह शिष्य धन्य है, जिसने मृत्यु के मुख में समा कर भी ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा की। हे गुरू! आप धन्य हैं। सुयोग्य पात्र बालक अबोध नचिकेता को प्रसन्न होकर आपने ब्रह्म ज्ञान ही नहीं अपितु समस्त जगत के कल्याण के लिए दिव्याग्नि को भी प्रदान किया हम ज्ञान के जिज्ञासु पुत्र, आपको बार बार प्रणाम कर रहे हैं।

जन्म लेते ही यम का दण्ड सिर पर लटकने लगता है। जीव मृत्यु के भय से सदा पीड़ित रहता है। उस पीड़ा को आपके सिवा और कौन मिटा सकता है क्योंकि यम की क्या बिसात, आपने तो यम के पिता सूर्य के रथ के साथ साथ चलतेहुए उनसे ज्ञान प्राप्त किया था। आपने ही नर रूप में लीला करते हुए नारायण को भी यम के बन्धन से बार-बार छुड़ाया।

"रावण युद्ध अजान कियो, तब नाग के पाश सबै सिर डारो"- उस मृत्यु के पाश को काटने के लिए आप श्री गरूड़ जी को पकड़ लाए। अहिरावण की काल कोठरी में मृत्यु - पाश से बंधे हुए श्री राम एवं श्री लक्ष्मण को मुक्त करा लाए। बार बार नारायण को नर की सत्ता का श्री भगवान को भक्त की सत्ता का बोध कराया। स्वयं राम को अपनी महा-काल सत्ता का बोध कराने वाले हनुमान जी! आपका वह रूप मेरे ध्यान में सदा बना रहे।

भक्त बालक नचिकेता को उसके पिता ने क्रोध के आवेश मे जीवित ही यम को दान में दे दिया था। मृत्यु - लोक पहुँच कर भी नचिकेता ने समस्त प्रलोभनों को ठुकरा दिया यम से दिव्य "अग्नि-ज्ञान" के साथ ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया था। तीसरे दिक्पाल यम के दण्ड से मुक्ति पाने के लिए तथा नचिकेता की तरह मृत्यु देव से "ब्रह्म-ज्ञान" प्राप्त करने के लिए हे हनुमान् जी! हम

आपकी वन्दना करते हैं।

जो नैर्ऋत दिशा के देवता हैं वे हमारी रक्षा करें। नर-स्कन्ध पर सवार नैर्ऋत देव के हाथों में खड्ग शोभयमान हो रहा है। वे दिक्-पालों में श्री विष्णु के समान पराक्रमी है। "क्ष" इनका बीज मन्त्र है। इक्यावन मणि-मन्त्र मातृकाओं में अन्तिम मातृका-मन्त्र जिसका स्पष्ट उच्चारण न कर "मन्त्र मालिका को फेर लिया जाता है। आठ दिशाओं की अधिष्ठात्री अष्ट - मातृकाओ में नैर्ऋत दिशा श्री वैष्णवी देवी का स्थान है। श्री दुर्गा देवी कवच में भी नैर्ऋत कोण में रक्षा करने वाली देवी को "खड्ग - धारिणी" कहा गया है। स्कन्धद्वय की रक्षा करनेवाली देवी को भी "खड्गिनी" नाम से सम्बोधित किया गया है।

"श्री दुर्गा सप्तशती" के पञ्चम अध्याय, श्लोक में उन्हें राक्षसों की राज्य-लक्ष्मी "नैर्ऋत देवी" के रूप में सम्बोधित किया गया है। असुरेश्वर रावण के राज महल में राज्य - लक्ष्मियों के मध्य इष्ट - माता जानकी की खोज करते हुए श्री हनुमान् जी का मन हिमालय की तरफ अडिग है- लक्ष्य पर केन्द्रित है। मन्दोदरी आदि सर्वांग सुन्दरी असुर - पत्नियों के मध्य भ्रमण करते हुए भी एक निष्ठ भक्त हनुमान् जी का अटूट - ध्यान राम काज के प्रति लगा कर विमर्श की शक्तियों द्वारा चुरा ली गई आत्म शक्ति-रूपिणी सीता को खोज निकालता है। ऐसा ही भक्त अहिरावण द्वारा हर लिये गये इष्ट श्री राम-लक्ष्मण जी को पाताल के गर्भ से भी, अन्धकार के कपाट को खड्ग से चीर कर, निकाल लाता है। अन्धकार की आसुरी शक्ति अहिरावण, ओज राम और लक्ष्मण को जीवित ही आसुरी देवी को बलि-रूप में चढ़ाने का दुराग्रह करता है, श्री हनुमान जी द्वारा खड्ग से काट दिया जाता है।

"व" वरुण देवता का बीज - मन्त्र है, जो सागर के देवता है। पृथ्वी-तत्व - द्योतक चार - दलीय कमल - चक्र "मूलाधार - चक्र के ऊपर तथा अग्नि - तत्व द्योतक दस दलीय "मणिपुर - चक्र" के नीचे जल - तत्व द्योतक छः कमल - दलों वाला "स्वाधिष्ठान चक्र" का क्षेत्र है। यहां का बीज - मन्त्र "वं" है, जो श्री वरूण देवता का स्वरूप है इनका वाहन मकर है और आयुध पाश। छः दलीय श्वेत कमल के प्रत्येक पटल पर क्रमशः "बं, भं, मं, यं, रं, लं" अंकित है। "स्वाधिष्ठान चक्र" क्षीर सागर - स्वरूप है जहां श्री लक्ष्मी जी के साथ श्री विष्णु जी निवास करते हैं। समुद्र - मन्थन के बाद अमृत - कलश के साथ श्री लक्ष्मी जी अवतरित हुई थी। वे श्री विष्णु जी की पत्नी के रूप में प्राप्त हुई। इस रसमय क्षेत्र में इतना आकर्षण है कि इसे कोई पार नहीं कर सकता। श्री वरुण के हाथों में आयुध के रूप में "पाश" विद्यमान है। "पाश" राग अर्थात् मोह, ममता, प्रेम का प्रतीक है, जिससे समस्त सृष्टि बँधी हुई है। जीव का आधार होते हुए भी यह सबसे अधिक सशक्त बन्धन

है इसे खोलकर मुक्त होना अत्यन्त कठिन है।

पृथ्वी - तत्व - द्योतक "गज" जब जल-तत्व-द्योतक "मकर" के क्षेत्र मे उतरता है, वरुण के "पाश" में फँस जाता है। ग्रह के द्वारा पकड़े जाने पर हाथी-रूपी साधक इस क्षेत्र के अधिष्ठाता श्री विष्णु जी की पुकार लगाता है भक्त की पुकार पर द्रवित होकर श्री विष्णु ग्रह रूपी पाश को खोलते है अर्थात् उसे मारकर साधक को पाश-मुक्त करते हैं।

श्री हनुमान जी जब समुद्र के ऊपर छलाँग लगाते हैं, श्री वरुण अपना पाश फेकने में चूकते नहीं।" सुरसा नाम अहिन्ह की माता" - वरुण - पाश के रूप में ही तो आती हैं, जिन्हें श्री हनुमान् जी अपने बल एवं विवेक से पराजित कर उनका आशीष पाते हैं-

"राम-काज सब करिहहु, तुम बल-बुद्धि-निधान।
आशिष देइ गई सो, हरषि चले हनुमान्॥"

दूसरे पाश के रूप में जल में रहने वाली राक्षसी आती है, जो ऊपर की उड़ान भरने वालों को अर्थात् "स्वाधिष्ठान चक्र" से ऊपर उठने वालों को निगल लेती है। श्री हनुमान जी ने तत्काल उसका वध कर दिया। देव - तत्त्व का तीसरा "पाश" प्रलोभन के रूप में आता है। मैनाक गिरि सागर में वक्ष पर उभर कर आते हैं, यह कहने के लिए कि "हे हनुमान् जी! पल भर ही सही, मुझ पर विश्राम कर लीजिए।" देवताओं द्वारा भेजे गये प्रलोभन को ठुकराते हुए श्री हनुमान् जी कहते हैं - "राम काज किए बिना, मोहि कहाँ विश्राम।"

नाभि-स्थित अग्नि-तत्त्व-द्योतक दस-दलीय कमल-पुष्प-वत् "मणिपुर चक्र" के ऊपर तथा कण्ठ-स्थित आकाश-तत्त्व-द्योतक सोलह-दलीय पद्मवाले "विशुद्ध चक्र" के नीचे हृदय - देश में बारह-दलीय "अनाहत चक्र" है। यह वायु देवता का स्थान है, जिनका बीज-मन्त्र "यं" है। वह वाहन मृग के ऊपर सवार वायु देवता के हाथों में अंकुश आयुध के रूप में शोभयमान् हो रहा है। इनके अंकुश के भय से प्राण-जगत् अनुशासित रहता है। जल, थल एवं अग्नि को उच्छ्वास जिव्हाओं से सोख लेने की क्षमता रखने वाले प्राण - देवता के हाथ में सुशोभित क्रोध रूपी अंकुश से सब डरते हैं।

"अनाहत चक्र" का स्थान हृदय-क्षेत्र है, जहाँ प्राण - वायु का निवास है। प्राण वायु की साधना ही कुण्डलीनि - साधना है। इस चक्र के जागृत होने पर कठोपनिषद - वर्णित "प्राण-पुरुष" हृदय में जन्म लेते हैं। यही इष्ट - मिलन का स्थान है। श्री हनुमान जी ने इसे ही फाड़कर सीता माता को अपने इष्ट देवता श्री राम सीता के दर्शन कराए थे। श्री हनुमान् जी के हृदय

का ध्यान करने से इष्ट - देवता का साक्षात्कार सहज ही सुलभ हो सकता है।

अञ्जनी माता के गर्भ से अवतरित आयोनिज श्री हनुमान जी इन्हीं वायु देवता के प्राण - पुत्र है। जिस पुत्रेष्टि - यज्ञ के अंश से श्री राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न जी अवतरित हुए थे, उसी के एक अविभाजित अंश से श्री हनुमान् जी की उत्पत्ति हुई थी। श्री राम के अंश से पैदा होने वाले श्री हनुमान् जी रामांश कहे जाते हैं। पवन - पुत्र - होने के कारण ये रूद्र प्राण - वायु भी कहे जाते हैं - इष्ट का साक्षात्कार प्राप्त होता है। इनकी कृपा के बिना तो श्री राम भी अपनी प्राण शक्ति सीता माता की खोज में साधारण मानवों की तरह वन - वन विरहाग्नि के दवानल में जलते हुए घूम रहे थे।

पञ्चम दिक्-पाल श्री वरुण देवता हैं। "वं" - रूप क्षीर - सागर अर्थात् "स्वाधिष्ठान चक्र" का जब मन्थन होता है, तब अन्य रत्नों के साथ श्री लक्ष्मी जी एवं चन्द्रमा जी भी प्रकट होती है। समुद्र - मन्थन की प्राण - उपलब्धि रत्न - कलश लिए श्री लक्ष्मी जी श्री विष्णु भगवान् को प्राप्त होती हैं। सोलह कलाओं वाले चन्द्रा के प्यार से बहन श्री लक्ष्मी का रत्न - कलश सदा अमृत से परिपूर्ण रहता है। श्री माता लक्ष्मी इसी अमृत - कलश से सृष्टि को सिंचित करती हैं। श्री माँ क्षीर - सागर में ही पति देवता के साथ निवास करने लगी, चन्द्रमा प्रकट होते ही छिटक कर आकाश में अवस्थित हो गए। अमिय - कला से युक्त सोम हलाहल विष के प्रकोप से दग्ध शिव-कण्ठ को अमृत से तृप्त करते हैं।

आज भी मान्यता है कि पृथ्वी का ही अंश टूट कर चन्द्रमा के रूप में अलग हो गया। चन्द्रमा के ऊपर सृष्टि का कोई चिन्ह विद्यमान नहीं है। कितने कृतज्ञ है - पुत्र चन्द्रमा। स्वयं शुष्क, वीरान और विजन होते हुए भी, माता धरित्री को सूर्य - देव के प्रकोप से बचाने के लिए "छाता" - वितान के रूप में तन गये हैं।

श्री चन्द्र - देव अश्व पर सवार है। साथ में गदा धारण करते हैं। कहीं कहीं इनके स्थान पर कुबेर जी को भी सप्तम् दिक्-पाल के रूप में दर्शाया जाता है। कुबेर जी धन के देवता हैं। अष्ट - सिद्धियों, नवनिधियों के स्वामी है तथा इनकी रखवाली करते हैं श्री लक्ष्मी इनके नियन्त्रण में रहती हैं, इनके बिना किसी को प्राप्त नहीं होतीं।

श्री मां लक्ष्मी जी की कृपा प्राप्त करने के लिए उन सोम देवता एवं यक्ष-पति कुबेर देवता को तथा श्री हनुमान जी को जो "श्री-दरबार" के द्वार

पाल हैं, प्रणाम! जिन्हें स्वयं माता जानकी ने निहाल कर दिया था- "तमाह जानकी प्रतेता, यत्र कुत्रापि मारूते! स्थितं त्वामनुयास्यन्ति, भोगाः सर्वे ममाज्ञया॥" हे पुत्र पवन-सुत हनुमान्! तुम जहाँ भी रहोगे, वहाँ सभी भोग मेरी आज्ञा से उपलब्ध रहेंगे।

स्वयं आकाश ही जिनका नन्दी वाहन है, जिसकी घन-गम्भीर वृषभ-नाद-ध्वनि धरती पर सृष्टि - बीज के रूप में अंकुरित होती है, उस ऊकार - नाद - स्वरूप नन्दी पर विराजमान शिव - पार्वती जगत् में निर्माण की नवल चेतना भर दें।

जो साधक स्वयं को शव मानकर शक्ति को अपने से विलग कर, उसे परम -सत्ता को समर्पित कर देता है, वही रूद्र - प्राण हनुमान जी की अनुकम्पा का पात्र बनता है। वही नन्दी के रूप में शिव शक्ति का वहन करता है, श्री हनुमत् - रूप में श्री राम - जानकी की युगल - मूर्ति हृदय में धारण कर रामत्व का सृजन करता है।

वेद ही जिनके चार मुख हैं। इच्छा, क्रिया, ज्ञान, भक्ति-शक्ति-ज्ञान की धारा ही जिनका स्वरूप है, उन जगत् के नियन्ता, सृष्टि के रचयिता को मै प्रणाम करता हूं।

सत्य की स्थापना के लिए आपने अपने मस्तक की आहुति दी। अर्द्धांगिनी पत्नी की सर्वत्र वन्दना हो, अतः आपने अपनी वन्दना सुनने के लोभ का सम्वरण कर लिया। जिनकी वन्दना में जगत्-वन्दनीय हाथों में वीणा लेकर चिर-वैरागिनी हो गई, उन सरस्वती नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ।

अग्रज होकर भी जगत् के नियन्ता होकर भी आपने अपने अनुज श्री विष्णु की वन्दन की, अपने पुत्र श्री नारद जी से श्रीमन्ननारायण की सत्ता स्थापित कराई, पत्नी माँ सरस्वती से उनकी महिमा का प्रचार-प्रसार कराया- हे भक्ति और ज्ञान के स्रष्टा, वक्ता तथा प्रोक्ता! आपको बारम्बार प्रणाम है।

जिनके चारों मुख से वेद- वाणियों का सृजन और प्रसार होता रहता है, जिन्हें श्री माता सरस्वती वीणा के तारों से कृत करती रहती हैं तथा पुत्र श्री नारद जी जिसे प्रचारित एवं प्रसारित करते रहते हैं, जिन ज्ञानेश्वर ब्रह्मा जी के ज्ञान, भक्ति और शक्ति-मण्डल से निरन्तर स्रवित होने वाले अमृत-तत्व से ऐहिक-दैहिक-भौतिक तापों का हरण होता रहताहै- ज्ञान, भक्ति और शक्ति की गंगा, यमुना और सरस्वती प्रवाहित होती रहती है, उन सपत्नीक ब्रह्मा जी को मैं प्रणाम करता हूं। पत्नी माँ शारदा के साथ हंस पर विराजमान चतुर्मुख श्री ब्रह्मा जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

सुर - असुर - शुभ - अशुभ सभी आपको समान रूप से प्रिय हैं क्योंकि आपने सबका समान प्रेम एवं सम-भाव के साथ सृजन किया है। मात्र नाम लेने से ही आप प्रसन्न होकर आयोग्यतम्, आसन्न - यहां तक कि दानवों को भी मुँह मांगा वरदान दे देते हैं। दान देने में तो आप भोले शंकर से भी अधिक तत्परता दिखाते हैं। मैं आपको पुत्र एवं परिवार के साथ प्रणाम करता हूं।

हे, ब्रह्मा जी! आप नारद-मय जगत् के साक्षी देवता है। आपके साक्ष्य मे नाद-विन्दु का स्मरण करता हुआ समस्त मन्त्र -बीजो को प्रणाम करता हुआ अपने मन्त्र-स्वरूप का तत्वतः ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। हे नाद-देवता, हे मन्त्र देवता, हे प्रणव देवता! आप मेरा कल्याण करें।

शिव के सेवक स्वयं राम स्वरूप नन्दीश्वर जी है। शिव के शाश्वत द्वार-पाल श्री नन्दी जी से रावण द्वेष रखता था क्योंकि वे उसके समय - असमय आवागमन पर रोक लगाते थे। एक बार तो उसने नन्दी वीर सहित कैलाश पर्वत को झकझोर कर भुज - बल से हिला दिया था। दस मस्तकों की बलि चढाकर उसने दस रूद्रों की संहारक शक्ति को कीलित कर दिया था। शिव-पार्वती के एकान्त में विघ्न डालने वाले महा - दम्भी असुर राजा को दण्डित करने के लिए एकादस रूद्र नन्दी जी ने वानर - रूप धारण कर श्री हनुमान् जी के रूप में अवतार लिया।

राम - रावण युद्ध के समय बार बार पराजित होने पर जब रावण ने श्री हनुमत् - स्वरूप का ध्यान किया तो उसे एकादस रूद्र के अवतरण का आभास हो गया। उसे अपनी मृत्यु अब अवश्यम्भावी प्रतीत होने लगी। वह भय से थर्रा उठा।

तत्वतः देखा जाय, तो ज्ञानाग्नि रूप श्री राम के साथ पृथ्वी - तत्व - वाहक शेषावतार श्री लक्ष्मण जी, जल - धवल शत्रुघ्न जी तथा आकाश की तरह गम्भीर एवं अयोध्या - रूपी धरती से दूर रहकर भी उसका भरण पोषण करने वाले आकाश - रूप श्री भरत जी अवतरित हुए।

चौथा तत्व पवन देवता के प्राण वायु श्री हनुमान् जी हैं, जिन्हें साधक की ऊर्ध्व - गामिनी प्राण - वायु के रूप में रूद्र - प्राण के अलंकरण से विभूषित किया गया है।

मानस मर्मज्ञ श्री राम किंकर उपाध्याय ने अपने प्रवचनों में श्री हनुमान् के व्यक्तित्व का तात्विक और आध्यात्मिक व्याख्या की है। श्री ———— के अनुसार श्री हनुमान् जी के प्रारम्भिक चरित्र में बड़े अनोखे संकेत प्राप्त होते हैं। पहला

तो यह है कि जब उनका जन्म हुआ तो दूसरे ही दिन उन्होंने सूर्य को फल समझकर मुख में डाल लिया और भी ऐसी अन्य विलक्षण गाथाएं हैं, जो बडे तत्व की हैं। साधारणतया जो परम्पराएँ प्रचलित हैं, उनके अनुसार हनुमत् जयन्ती - महाराष्ट्र आदि प्रान्तो में चैत्र पूर्णिमा को तथा उत्तर भारत में बहुधा कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को दीपावली के एक दिन पहले मनायी जाती है। "वायुपुराण" में मुख्य रूप से कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को श्री हनुमान् जी के जन्म का वर्णन किया गया है और उनकी संगति सूर्यग्रहण से ली गयी है। उसी के संकेत गोस्वामी जी ने "विनय पत्रिका" में किया है। कहा जाता है कि जिस समय हनुमान् जी सूर्य को फल समझकर उसकी ओर चले, उसी समय ग्रहण लगने वाला था और इसके पहले कि राहु के द्वारा सूर्य ग्रस्त हो, श्री हनुमान् जी ने सूर्य का ग्रास कर लिया। तब राहु इन्द्र के पास जाकर आश्चर्य प्रकट करता है कि प्रकृति की परम्परा कैसे परिवर्तित हो गयी, नियम कैसे बदल गया? सूर्य ग्रहण तो मेरे द्वारा होना चाहिए था। उसके स्थान पर एक नवीन व्यक्ति के द्वारा वह कैसे सम्पन्न हुआ? और तब इन्द्र अपने ऐरावत पर आरूढ़ होकर आते हैं और हनुमान् जी पर व्रज का प्रहार करते हैं। उस प्रहार से हनुमान् जी की क्षणभर की मूर्च्छा से पवन देवता क्रुद्ध होते हैं और वे भयभीत हो पवन देवता से प्रार्थना करते हैं कि वे कृपा करके अपनी दिव्य वायु के द्वारा जीवन का संचार करे कोई देवता उन्हें अजर होने का आर्शीवाद देता है, तो कोई अमर होने का और कोई उन्हें अस्त्र - शस्त्र के प्रहार से अप्रभावित रहने का। उसके पश्चात् श्री हनुमान् जी चैतन्य हो उठते हैं।

अब इस कथा के तात्विक पक्ष पर विचार करें। गोस्वामी जी "विनय पत्रिका" में इसका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि हनुमान् जी को अत्यन्त भूख लगी हुई थी, इसीलिए उन्होनें सूर्य को फल समझकर अपने मुख में ले लिया था। इसका तात्पर्य क्या हैं? एक ओर तो हम यह मानते हैं कि श्री हनुमान् जी साक्षात् शंकर के अवतार है और दूसरी ओर उनकी ऐसी अल्पज्ञता और अनभिज्ञता की कल्पना करते हैं कि वे एक फल और सूर्य में भेद नहीं कर पाते। यह बड़ी अटपटी सी बात प्रतीत होती है। पर कथा के पीछे जो तत्व हैं, वह यह है कि हनुमान जी भूखें हैं। हनुमान जी का यह परिचय तब और भी सार्थक हो जाता हैं, जब वे अशोक वाटिका में जगजननी सीता जी से वार्तालाप करने के बाद कहते हैः-

"सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा"

"माँ" मैं अतिशय भूखा हूँ। वे केवल भूखे नहीं, अति भूखे भी नहीं अपितु अतिशय भूखे हैं साथ ही वे यह भी कहते हैं कि सामने वृक्ष में बड़े सुन्दर

फल लगे हुए हैं और यदि आप आज्ञा दे तो उन फलों के द्वारा मैं अपनी क्षुधा का निवारण करूँ। अन्त में माँ का आदेश पाकर हनुमान जी उन फलो के द्वारा अपनी क्षुधा को शान्त करते हैं। हनुमान जी ने अतिशय भूखा कहकर यह जो परिचय दिया, इसका तात्पर्य यह नहीं था कि उन्हें इस यात्रा में खाने योग्य फल या अन्य कोई वस्तुएँ प्राप्त न हुई हों। वे जब समुद्र पार कर लंका के एक शिखर पर खड़े थे। वहाँ तो फलों की भरमार थी। वे उन फलों को खाकर अपनी क्षुधा को शान्त कर सकते थे। पर उन्होंने उन फलों के द्वारा अपनी भूख नहीं मिटायी और आद्यशक्ति श्री जानकी जी से कहा कि मैं अतिशय भूखा हूँ। हनुमान जी के ये शब्द एक दूसरी दिशा की ओर संकेत करते हैं। यह कि एक व्यक्ति के जीवन में जो भूख होती है, उसका तात्पर्य क्या अकेले शरीर की भूख से होता है।

पूर्ण स्वस्थता के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति के शरीर, मन और बुद्धि तीनों में भूख हो। हमारी बुद्धि में सृष्टि के सत्य को जानने की भूख होती हैं और मन में शांति उपलब्ध कराने की । तात्पर्य यह है कि शरीर, मन और बुध्दि की भूख मनुष्य में नैसर्गिक हैं। अतः इन तीनों प्रकार की भूख का उचित रीति से समाधान होना चाहिए। हनुमान जी के पीछे पवन नन्दन का जो परिचय है, उसका महत्व भौतिक उतना नहीं, जितना कि आध्यात्मिक है। पवन की एक सबसे बड़ी विशेषता है और इन्द्र उसे भूल जाता है। वह केवल सूर्य का महत्व इसलिए समझ पाया कि सूर्य कुछ घंटे दिखाई पड़ता हैं और कुछ घंटे नहीं, संसार में उसी वस्तु का महत्व बढ़ता है, जो थोड़ा अप्राप्य हो, दुर्लभ हो। सुलभ वस्तु का कोई दाम होता ही नहीं, संसार में पवन से बढ़कर सुलभ और कौन होगा? वह तो चौबीसो घंटे हर क्षण बहता ही रहता है। पर सूर्य भगवान कभी प्रकट होते हैं, कुछ घंटों के लिए दिखायी पड़ते हैं, तो रात्रि भर नहीं दिखायी पड़ते। व्यक्ति व्यग्र होकर सूर्य के उगने की प्रतीक्षा करता है और इस प्रकार सूर्य व्यक्ति को अपनी महिमा से अवगत करा देता है। पृथ्वी और जल के द्वारा भी तथा अग्नि के द्वारा भी, पर सेवा की जो समग्रता पवन में है वैसी किसी में नहीं। पवन देवता चौबीसो घंटे अनवरत् प्रतिक्षण सेवा करते हुए भी अपनी सेवा का कोई मूल्य चाहते होते, तो उसका यही उपाय था कि वे भी अपना एक समय बना लेते और अपना आराम थोड़ा बढ़ा लेते। जब इन्द्र ने हनुमान जी पर वज्र का प्रहार किया था तो पवन देवता ने ऐसा ही किया भी था और यह चेतावनी दे दी थी कि हनुमान की उपेक्षा न करो पवन की उपेक्षा न करो हमेशा याद रखो कि सुलभता का अर्थ मूल्य की कमी नहीं है। सुलभता का अर्थ यह नहीं है

कि वायु सुलभ है और हीरा दुर्लभ क्योंकि हीरे के बिना जीवन चल भी सकता है, पर वायु के बिना वह नहीं चल सकता। पवन देवता निरन्तर सेवा करते हुए भी अपना मूल्य नहीं लेते। जिस प्रकार हम अग्नि या जल को अपने सामने देखते हैं, उसी प्रकार पवन को नहीं, वास्तव में सेवा धर्म के जो सच्चा एव समग्र रूप है, वह पवन में ही हैं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है। सेवा धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म और इसी की पूर्णता सम्पादित करने के लिए हनुमान जी का आविर्भाव हुआ था।

हनुमान जी की सेवा उनके बाल्यकाल से ही प्रारम्भ हो गयी थी। सूर्य को निगल लेना उनकी सेवा का प्रारम्भ था। पर जो बेचारे सेवा का प्रारम्भिक और सीधा-साधा अर्थ नहीं जानते हैं, वे भला इस सेवा को कैसे समझते? उनकी दृष्टि में मिठाई खिलाना या इसी प्रकार के अन्य कार्य ही सेवा के चौखटे मे बैठते। पर विचारणीय है कि आवश्यकता पड़ने पर किसी के अंग को काट देना सेवा है या नहीं? यदि कोई व्यक्ति किसी की बाँह काट ले, तो उसे अलग से फीस चुकाई जायेगी। डाक्टर को हम इसलिए पुरस्कृत करते हैं कि उसने शरीर की रक्षा के लिए ही अंग को काटा। हनुमान जी की सेवा इसी श्रेणी की है। हनुमान जी की इस सच्ची भूख को न पहचानने के कारण ही इन्द्र उस पर वज्र प्रहार करता है। फलस्वरूप जब पवन देवता अपना अवरोध कर देते हैं, तो इन्द्र को बोध होता है कि हमने जिस पर प्रहार किया, वह यदि मृत हो जाय, तब तो संसार की ही मृत्यु हो जायेगी। याद रखे, ईश्वर की सत्ता, भगवत् प्रेम, भगवत् सेवा ये सब एक ही वस्तु हैं, जिसकी हमे प्रत्यक्ष रूप से आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। ऐसा लगता है कि इसके बिना भी समाज का काम चल सकता है। लेकिन पवन देवता ने इस न दिखायी देने वाले महत्व को उजागर कर दिया और यह दिखला दिया कि यदि हनुमान की मृत्यु होगी तो सारे संसार की मृत्यु हो जायेगी। तब सारे देवता अपनी त्रुटि को समझते हैं और हनुमान जी को आशीर्वाद देते हैं यह कहते हुए कि मेरे शस्त्र का प्रभाव तुम पर नहीं पड़ेगा।

इससे हनुमान जी का अहंकार बढ़ता नहीं। भले ही इन्द्र के वज्र प्रहार से हनुमान जी क्षणभर के लिए मुर्छित हो गये थे, पर जब इन्द्रजीत ने हनुमान जी पर ब्रम्हास्त्र का प्रयोग किया, तब तो हनुमान जी को मूर्छित होने की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि उन्हें देवताओं से ऐसा आशीर्वाद मिल चुका था कि किसी भी अस्त्र-शस्त्र का प्रभाव उन पर नहीं पड़ेगा। परन्तु फिर भी हनुमान जी इन्द्रजीत द्वारा प्रयुक्त ब्रम्हास्त्र का प्रभाव अपने ऊपर स्वीकार कर लेते है। यही हनुमान जी के चरित्र का वैशिष्टय है वे नित्भीमानी हैं। उन्हें लगा कि

भले ही ब्रम्ह के आशीर्वाद से मैं ब्रम्हास्त्र के प्रभाव से मुक्त रहूंगा, पर यदि मै ब्रम्हास्त्र से मुर्छित नहीं हुआ तो ब्रम्हा की मर्यादा नष्ट हो जायेगी। ब्रम्ह का आशीर्वाद स्वीकार करने का मतलब यह नहीं की हम उनकी मर्यादा और महिमा को ही नष्ट कर दें। ऐसा सोचकर हनुमान जी निर्णय करते हैं कि हमें फिर से एक बार मुर्छा का अभिनय करना है। एक बार बाल्यावस्था में मूर्छा का अभिनय किया था, और अशोक वाटिका में उन्होंने दूसरी बार मूर्छा का अभिनय किया, उनके इस मूर्छित होने में भी एक विशेषता थी। भक्त का विनाश नहीं हुआ करता। उलटे जो उसे गिराने की चेष्टा करता है उसी को संकट झेलना पड़ता है। तो हनुमान जी के गिरने के फलस्वरूप उन्हें गिराने वाले इन्द्र और देवताओं पर ही संकट आया। अशोक वाटिका में भी ऐसी ही बात घटी। मेघनाद द्वारा प्रयुक्त ब्रम्हास्त्र को स्वीकार कर हनुमान जी गिरने लगे, तो मेघनाद बड़ा प्रसन्न हुआ, वह मन ही मन बोला, चलो बन्दर आखिर में मैने तुम्हें गिराया ही। पर बाद में मेघनाद ने देखा कि बन्दर का गिरना तो बड़ा मंहगा पड़ा, हुआ यह की जब हनुमान जी गिरने लगे तो उन्होंने देख लिया कि मेघनाद की सेना किधर खड़ी है और वे जान-बूझकर उधर ही गिर पड़े। परिणाम क्या हुआ?

"परतिहुँ बार कटकु संघारा।"

हनुमान जी का संकेत यह था कि जब कोई दुर्गुणी व्यक्ति भक्त को गिराने का संकल्प करता है, तो भले ही भक्त गिरता हुआ दिखायी दे पर विनाश तो दुर्गुणों का ही होता है, भक्त को कोई आघात् या चोट नहीं लगती, क्योंकि वह वस्तुत ईश्वर की शक्ति से अनुप्राणित होता है।

इस प्रकार हनुमान जी का जो पावन चरित्र है, वह ईश्वर के तत्व को हमारे समक्ष उपस्थित करता है और यह प्रदर्शित करता है कि जीवन की भूख को शान्त करने का सच्चा उपाय क्या है। उनके जन्म और जीवन की जो अलौकिक गाथा है, उसमें यह संकेत हमें पग-पग पर प्राप्त होता है कि जीवन में सेवाधर्म की सत्य और प्रेम की प्रतिष्ठा कैसे की जाय तथा दुर्गुण दुर्विचारों पर कैसे विजय प्राप्त की जाय। इन सबके साथ जो सबसे महत्व की बात उनके जीवन से प्रदर्शित होती है, वह यह है कि किसी भी कार्य के पीछे उनके अंतः करण में अहंकार का लेश भी नहीं है। उनके चरित्र का यही सबसे गौरपूर्ण पक्ष है और दूसरा प्रतीकात्मक संकेत हमें "मानस" में सर्वत्र प्राप्त होता है।

अहं के विरूद्ध जब अहं की लड़ाई होती है तो संघर्ष का उदय होता है, सुरसा ने हनुमान जी से कहा मैं तुम्हें खाऊँगी। हनुमान जी की

थे। उन्होंने उसे मनाने की कोशिश की। वे बोले-

"राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहिं सुनावौं।
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहऊँ मोहि जान दे माई।।"

पर सुरसा ने कहा-"नहीं" मैं तो तुम्हें अभी खाऊँगी। हनुमान जी ने पुनः सुरसा को समझाते हुए कहा-"नहीं" अभी नहीं, पहले मैं माँ के पास पहुँचकर प्रभु का संदेश उन्हें दे आऊँ और उनका सन्देश प्रभु के पास पहुँचा दूँ, फिर मैं तुम्हारे पास आऊँगा, और तब तुम मुझे खा लेना। इस पर सुरसा बोली-रे बन्दर तू चालाकी की बात करता है, जब ये दोनों काम कर लेगा, तब मेरे खाने योग्य रहेगा ही कहाँ?

इसलिए तुझे अभी खाना ही ठीक रहेगा। हनुमान जी ने देखा कि सुरसा मानती ही नहीं है तब तो वे उसे चुनौती दे देते हैं। हनुमानजी कभी दुर्बलता के कारण नहीं झुकते, क्योंकि दुर्बलता के कारण झुकना तो कायरता है। उनमे सामर्थ्य के साथ नम्रता है। पर जब सुरसा उनकी इस नम्रता का गलत लाभ लेना चाहती है तो हनुमान जी उसे चुनौती दे देंते हैं कि अगर सामर्थ्य हो तो मुझे खा ले। सुरसा हनुमान जी को निगलने के लिए अपना मुँह फैलाती है और हनुमान जी अपना शरीर बढ़ा लेते हैं। जब सुरसा ने अपना मुँह बाया, तो हनुमान जी और बड़े हो गये। और जब सुरसा ने अंत में अपने मुख को सौ योजन तक फैला दिया।

"सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा।"

तो हनुमान जी ने अपने आपको और नहीं बढ़ाया। वैसे तो उनमें उससे भी दूना होने का सामर्थ्य था, पर हनुमान जी की लड़ाई कोई अहंकार की लड़ाई तो थी नहीं। यदि वह अहंकार की लड़ाई होती, तो हनुमान जी ठान लेते कि मैं हार स्वीकार नहीं करूँगा और वे अपने आप को सुरसा के फैले हुए मुख से दुगुना बड़ा कर लेते। पर हनुमान जी ने वैसा नहीं किया। ज्योंहि सुरसा ने सौ योजन का मुख फैलाया। त्योंही हनुमान जी नन्हें बन गये-

"अति लघु रूप पवन सुत कीन्हा।"

और वे नन्हें ही बनकर नहीं रह गये। अपितु सुरसा के मुख में पैठ गये। इधर सुरसा उन्हें बाहर ढूँढने लगी कि यह बंदर आखिर कहाँ चला गया। तब हनुमान जी सुरसा के मुख से बाहर निकल आते हैं और हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। सुरसा यह देख मुस्करा उठती है और कहती है-

"राम काज सब करिहहु।"

यह बड़े पते की बात हुई। सत्य प्रवृत्ति व्यक्ति को कब खाती हैं? इसका

उत्तर हनुमान जी ने अपनी क्रिया से दे दिया दूने बनने की होड से सफलता नही मिली पर जब हनुमान जी इतने लघु हो गये कि सुरसा उन्हे नही देख पायी, तो हनुमान जी जीत गये। इसका तात्पर्य यह है कि अच्छा कार्य करते समय यदि हम अपने आपको अति लघु बना लेंगे और सत्यप्रवृत्ति में पैठकर बाहर चले जायेंगे, तो हम सफल होंगे। हनुमान जी मे अहं नहीं है और न उनका कोई कार्य ही अहं की दृष्टि से होता है। ऐसे निरहंकारी हनुमान जी के द्वारा कैसे अनोखे भाव से अनूठी यात्रा होती है कैसे वे सुग्रीव और भगवान राम का मिलन कराते हैं तथा सीता जी का पता चलाते हैं।

श्री उपाध्याय के अनुसार हनुमान जी दोनों राजकुमारों का परिचय पूछने के लिए ब्राह्मण का भेष बनाकर जाते हैं। वे जब भगवान राम के सामने जाकर खड़े होते हैं और उनकी ओर देखते हैं, तो वे प्रभु को सिर झुकाकर प्रणाम कर बैठते हैं-

"विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ।।"

हनुमान को इस प्रकार सिर झुकाकर प्रणाम करते देख प्रभु के होठों पर हंसी खिल उठती है। उस हँसी में मानों यह व्यंग्य था कि हनुमान तुम चतुर अभिनेता नहीं हो, ठीक-ठीक अभिनय करना नहीं जानते। जब तुम ब्राह्मण का वेश धरकर आये, तो जरा मेरे प्रणाम की प्रतीक्षा तो करते। यह तो कोई सफल अभिनेता का लक्षण नहीं। लेकिन हनुमान जी की, विश्वास की आँखे कितनी पैनी हैं। सुग्रीव ने कहा था जाकर जरा राजकुमारों को परख तो लो। यदि हनुमान जी सचमुच ही परखने के लिए, परीक्षा करने के लिए आये होते, तब तो वे प्रभु को प्रणाम ही न करते, वे तो जिज्ञासु बनकर आये थे क्योंकि ईश्वर को जिज्ञासा से ही जाना जाता है। और जो जिज्ञासु होता है वह प्राणिपात के द्वारा ही ज्ञान का पाठ प्रारंभ करता है- तद्विधि प्राणि पातेन (गीता-4134)। हनुमान जी पूछते हैं- 'को तुम्ह" आप कौन हैं? यह प्रश्न उनकी जिज्ञासा को प्रकट करता है। अगर ईश्वर को जानना है, तो या तो ईश्वर बताए, या फिर संत। हनुमान जी पूछने की पूरी पद्धति का पालन करते हैं। जब उन्होंने भगवान् से पूछा कि आप कौन हैं, तो प्रभू इसका सीधा कोई उत्तर नहीं देते। प्रभू भी तो अनोखे हैं। मानों भक्त से कहते हैं कि तुम भले ही मेरी परीक्षा न लो, पर मैं तो तुम्हारी परीक्षा लूँगा और मुझे परीक्षा लेने का पूरा अधिकार है। हनुमान जी के प्रश्न के उत्तर में प्रभू उनकी ओर देखते हैं और पूछते हैं- तुम्हें क्या लगता है? हनुमान जी उलटकर कहते हैं।

"को तुम्ह स्यामल गौरा सरीरा। छत्री रूप फिरहू बन बीरा।।"

श्यामल और गौर शरीर वाले आप दोनों कौन हैं? क्षत्रिय रूप धारण

कर इस निबिड़ वन में कैसे घूम रहे हैं। इन शब्दों में हनुमान जी की तीक्ष्ण दृष्टि निहित है। प्रभु ने हनुमान जी से कहा था तुम असली ब्राम्हण नहीं हो, असली ब्राह्मण होते, तो मुझे प्रणाम न करते। इस पर हनुमान जी ने कहा महराज, अगर मैं असली ब्राम्हण नहीं हूँ, तो आप भी असली क्षत्रिय नही है, आप तो क्षत्रिय का रूप धारण कर घूम रहे हैं। हनुमान जी का अभिप्राय यह था कि संसार का कोई क्षत्रिय अपने साधारण तेज के बल पर मेरे सिर को झुका नहीं सकता। यह सिर तो आपके चरणों में ही झुक सकता है। जहाँ भौतिक कामना होती है, जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ तो हर व्यक्ति हर एक के सामने झुकता है, लेकिन जहाँ पर ईश्वर के प्रति परम विश्वास है वहाँ ईश्वर को छोड़ और किसी के आगे सिर नहीं झुका करता-

"स्वारथपरमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर।।"

हनुमान जी के प्रश्न के उत्तर में भगवान मौन हैं। वे मानों हनुमान जी के मुख से यह निकलवाना चाहते हैं कि मैं क्या लगता हूँ। हनुमान जी आगे कहते हैं-

"की तुम्ह तीन देव महँ कोऊ। नर नारायण की तुम्ह दोऊ।
जग कारन तारन भव भंजन धरती भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।।"

और प्रभु को लगा कि सचमुच भक्त की आँख बड़ी पैनी है, इससे अपने आपको छिपा पाना बड़ा कठिन है। भगवान् ने छिपाने के उपाय किये, पर छिपा न सके और अंत में इस भक्त का भगवान् के साथ मिलन हुआ। इस मिलन की विशेषता क्या है? ऐसे भक्त तो मिलते हैं, जो स्वयं भगवान को पा लेते हैं पर हनुमान जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने पाए की उतनी चिंता नहीं करते, जितनी प्रभु को दूसरे से मिलाने की। जब हनुमान जी ने भगवान् राम को पहचान लिया, तो वे सुग्रीव को संकेत कर सकते थे कि आइए, आइए, ये भगवान् हैं। इनका स्वागत कीजिए। पर वे ऐसा नहीं करते। इससे सुग्रीव को भ्रम होता, क्योंकि वे तो पर्वत पर बैठे हुए थे, अत हनुमान जी प्रभु से ही कहते हैं-

"नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई।।"

-नाथ इस पर्वत पर आपके दास कपीश सुग्रीव रहते हैं। और ऐसा कह वे भगवान राम को वहाँ ले जाते हैं। क्या सुग्रीव इतने महान हैं कि भगवान् राम उनसे मिलने जायँ? पर हनुमान जी तो संत हैं। उनका संकेत यह है

कि यदि घर में कोई रोगी हो और वैद्य के पास चला जायेगा पर यदि वह चलने फिरने योग्य न हो तब तो वैद्य को वहाँ जाना पड़ेगा। हनुमान जी का यही संकेत था कि महाराज वह जीव (सुग्रीव) आपके पास आने योग्य है नही अब आप ही कृपा करके वहाँ चलिए। इसके पश्चात् और एक विलक्षण संकेत प्राप्त होता है। हनुमान जी प्रभु से कहते हैं- प्रभो, मेरे सामने एक बड़ा सकट है। यदि मैं सुग्रीव से कहता हूँ कि नीचें उतर आओ, तो शास्त्र के सिद्धात की हत्या होती है। शास्त्र कहता है कि ईश्वर ऊपर उठने से मिलता है, अतः यदि किसी से कहा जाय कि प्रभु से मिलने के लिये नीचे उतरो तो यह उचित नहीं। और प्रभो, यदि मैं आपसे कहूँ कि जीवन को पाने के लिए आप ऊपर उठिये, तो यह अभिमान की पराकाष्ठा हो जाती है। आप हैं ही इतने ऊपर कि आपको ऊपर उठने की क्या आवश्यकता हैं? अतः मैनें तो इन दोनो के बीच यही सरल रास्ता देखा कि आप मेरी पीठ पर चढ़कर चलें और इसी प्रकार जीव और आपका मिलन हो। अंत में जीव को देखकर आपको उतरना पड़ेगा, चढ़ना नहीं। इससे यह बात भी बन जायेगी कि ईश्वर -जीवों के प्रति करूणान्वित होकर नीचे उतरता है इस प्रकार हनुमान जी जीव और ईश्वर को मिलाने की बीच वाली कड़ी हैं। इस संत ने दोनों को इस प्रकार मिलाया कि न तो जीव को श्रम करना पड़ा न ईश्वर को। विश्वास के माध्यम से सुग्रीव और भगवान् राम की मैत्री की स्थापना हुई। कहा जाता है कि जब दोनो मे मैत्री होने लगी, तो बीच में लकड़ी जलायी गयी-

"पावक साखी देइ कर जोरी प्रीति दृढ़ाव"

लक्ष्मण जी ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा मित्रता का धर्म लकड़ी और अग्नि की भाँति है। लकड़ी यदि अग्नि का संग प्राप्त न करें, तो उसमें दाहिका शक्ति नहीं आ सकती और इसी प्रकार अग्नि और लकड़ी दोनों मिलकर तेजस्विता की सृष्टि करेगी। इस पर प्रभु ने हंसकर कहा कि भई, लकड़ी और अग्नि में लोग केवल दो ही वस्तु देख पाते हैं।

एक लकड़ी और दूसरी अग्नि और यह कि दोनों मिलकर जल रहे हैं। पर वास्तविक महिमा तो तीसरे की है। लकड़ी भी हो और अग्नि भी हो, पर यदि वायु का अभाव हो जाय, तो दोनों जल नहीं पायेंगे। इसी प्रकार हे पवननंदन यदि तुम न होते, तो हमारा और सुग्रीव का मिलन नहीं हो सकता था, इस मिलन का सारा श्रेय तुम्ही को है।

श्री उपाध्याय के अनुसार "राम चरित मानस" मे हनुमान जी के अनगिनत रूप हैं। इतना विलक्षण रूपधारी और कोई नहीं होगा। न उसके

समान सुंदर कथा कहने वाला मिलेगा, न कथा सुनने वाला। हनुमान जी जैसे अपूर्व वक्ता है, वैसे ही अपुर्व श्रोता भी। वे ऐसे वक्ता हैं जो जानते हैं कि किस समय कैसी कथा सुनाई जानी चाहिए। वे हर समय एक ही जैसी कथा नहीं सुनातें। आज समाज में इसकी बड़ी आवश्यकता है। किस व्यक्ति को कैसी कथा सुनानी चाहिए और किस समय कैसी कथा होनी चाहिए, यह तो कोई हनुमान जी से सीखे। जब भगवान् राम और सुग्रीव की मित्रता हुई थी, उस समय भी हनुमान जी ने कथा सुनाई थी।

''तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।''

-उस समय उन्होंने भगवान् राम के स्वभाव की कथा सुनाकर सुग्रीव से कहा था- प्रभु बड़े उदार हैं, आप उनसे मित्रता कीजिए। पर आज जब सुग्रीव ने भगवान् राम को भुला दिया, तो क्या भगवान् के अभाव की कथा सुनाने का अवसर है? हनुमान जी आते हैं और इस बार एक भिन्न ही कथा सुनाते हैं:-

''निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा।
चारिहु विधि तेहि कहि समुझावा।''

एक दिन उन्होंने ऐसी कथा सुनाई थी, जिससे सुग्रीव का भय दूर हो गया और आज ऐसी कथा सुनाते हैं कि सुग्रीव डर के मारे काँपने लगते हैं। इसका अभिप्राय क्या है? यही कि जो निर्भयता जीवन को ईश्वर से दूर कर देती हैं, मनुष्य को निश्चिंत बना देती है, वह समाज के लिए बड़ी घातक है। एक दिन हनुमान जी ने सुग्रीव को बताया था कि भगवान् कितने उदार है और आज वे कथा सुनाते हुए कहते हैं कि क्या उनके धनुष बाण को आप भूल गये? जो एक भृकुटि विलास मात्र से संसार का संहार कर देते हैं उनकी सामर्थ्य क्या आप बिसर गये? मत भूलिए कि बालि जिस मार्ग से गया है, वह संकरा नहीं हैं, अत्यंत चौड़ा है और आप भी उसमें से जा सकते हैं। हनुमान जी की यह कथा सुन सुग्रीव थर-थर काँपने लगे। उन्होंने हनुमान जी से कहा, इसका कोई आप उपाय बताओं। हनुमान जी बोले- अब आप श्री सीता जी के पता लगाने के कार्य में तुरंत संलग्न हो जाइए।

लंका में विभिषण जी से भेंट होने पर हनुमान जी ने उन्हें भिन्न प्रकार से कथा सुनायी-

''तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुनग्राम।।''

-वह बड़ी विश्रामदायिनी कथा थी और जब अशोक वाटिका में श्री

सीताजी को कथा सुनाने लगे, तो-

"रामचंद्र गुन बरनै लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।"

-सुनते ही सीताजी का सारा दुख भाग गया और जब वे लौटकर भगवान् राम के पास आये, तो कथा शैली उन्होंने बदल दी। उन्होंने भगवान् राम को ऐसी कथा सुनायी कि भगवान का दुख बढ़ गया और उनकी आँखों आँसू झरने लगे। भगवान् के यह कहने पर कि हनुमान् तुम सीताजी के विषय में सुनाओं, हनुमान जी ने कहा था-

"सीता के अति विपति बिसाला।
बिनहिं कहे भलि दीन दयाला।।
निमिष निमिष करूनानिधि जाहि कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति।।"

-इस कथा को सुनने के पूर्व प्रभु हंस रहे थे, पर कथा सुनते-सुनते क्या हुआ?

"सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना।।"

सीताजी के दुख की कथा सुन प्रभु रोने लगे। मानो हनुमान जी ने कथा सुनाकर सीता जी के आँखों का आँसू तो पोंछ दिया, पर प्रभु की आँखों मे ऑसू की धारा बहा दिया अभिप्राय यह है कि जब ईश्वर में दुःख का बोध उत्पन्न होगा। तब जीव के दुःख का विनाश होगा। हनुमान् जी भगवान् के मगलमय की कभी सृष्टि करते हैं तो कभी दुख की। वे जीव के अन्तःकरण के रोग को देखते हैं और उसके अनुकूल ही औषधि प्रदान करते हैं।

तो परमसत हनुमान जी ने जाकर सुग्रीव को सावधान कर दिया और जब तक लक्ष्मण जी वहाँ पहुँचे तब तक बंदर भेजे जा चुके थे। जब सुग्रीव को सावधान कर दिया और जब तक लक्ष्मण जी आयें हैं, तो उन्होंने हनुमान जी से कहा-मुझे इनके सामने जाने में डर लगता है। तुम्हीं इनसे मिल आओ। उनका अभिप्राय यह है कि काल से तो महाकाल ही मिले। लक्ष्मण जी सेष है और हनुमान जी शंकर के अवतार। ये दोनों काल ही एक दूसरे से मिल सकते हैं। इनसे तीसरा भला कौन मिलेगा? सुग्रीव ने हनुमान से कहा-

"सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाऊ कुमारा।।
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना।।"

तद्नुसार हनुमान जी तारा के साथ लक्ष्मण जी के पास आते हैं और पहले चरणों की बंदना करते हैं, फिर भगवान् के सुयश का बखान करने लगते है और ऐसी बढ़िया कथा सुनाते हैं कि लक्ष्मण जी भूल जाते हैं कि डराने

के लिए आये थे। वे कथा सुनकर आनंद विभोर हो जाते हैं। हनुमान जी उनसे कहते हैं-जरा भीतर चलिए। और लक्ष्मण जी चले गये। वक्ता ने जैसा-जैसा कहा, वैसा-वैसा वे करते भी गये भीतर जाने पर-

"करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलंग बैठाए॥"

लक्ष्मण जी के चरण धोकर उन्हें पलंग पर बिठाया गया। पलंग पर बिठाने का क्या अर्थ है? और वह भी लक्ष्मण जी तो जैसे कभी सोते नहीं? अभिप्राय यह था कि महाराज, इस नगर में तो आपके बैठने लायक आसन है ही नही, यहाँ तो सब सोने वाले लोग ही हैं। यहाँ इस पलंग को छोड़ आपको बिठाने लायक दूसरा आसन भी तो नहीं है। लक्ष्मण जी हनुमान जी से पूछ सकते थे- क्या तुम मुझे सुलाना चाहते हो? हनुमान जी ऐसा पूछे जाने पर संभवत उत्तर देते नहीं महाराज, मैं तो चाहता हूँ कि आप इस पलंग पर बैठिए। हनुमान जी का संकेत था कि यदि नींद में भरा हुआ व्यक्ति कमरें में जाय और उसे सांप दिखायी दे, तब तो नींद आएगी ही नहीं और यदि साक्षात् शेष आकर पलंग पर बैठ जाये, तब तो नींद सदा सर्वदा के लिए दूर हो जायेगी। अभिप्राय यह था अभी तक जीव काल का भय भूला हुआ था, आपको देखते ही काल के भय की स्मृति आ गयी, तो अब निश्चित मानिए कि जीव अब नहीं सोएगा। वह चैतन्य हो भक्ति करेगा, भगवान की ओर बढ़ेगा। अत मे हम देखते हैं कि सुग्रीव और भगवान् राम का पुनर्मिलन होता है और सुग्रीव के अंतःकरण की वासना को संत अपनी सदिच्छा के द्वारा नष्ट कर देता है।

श्री उपाध्याय के अनुसार सुग्रीव और भगवान राम का मिलन श्री हनुमान जी के माध्यम से संपन्न होता है। सुग्रीव के चरित्र में दुर्बलता के जो संस्कार उभरते हैं, उनको भी श्री हनुमान जी ही दूर करते हैं, उसे भिन्न दृष्टि से भी देखा जा सकता है। कहा जाता है कि श्री हनुमान पवन देवता के पुत्र हैं। हमारे यहाँ प्राण की जो कल्पना की गयी है। वह भी वायु के रूप में की गयी है। यों भी प्रत्यक्ष है कि वायु का सर्वथा अभाव हो जाय, तो व्यक्ति के लिए एक क्षण भी जीवित रहना संभव न होगा। जो स्थिति शारीरिक जीवन में पवन की है वही "रामचरित मानस" में पवन नंदन की। योग दर्शन और आयुर्वेद में यह कहा गया है कि मनुष्य के शरीर में पंच-प्राण हैं-प्राण, अपान, समान व्यान और उदान। इन्हीं पंचप्राणों के आधार पर व्यक्ति का शरीर और जीवन संचालित होता है। इन प्राणों में से किसी में जब विकृति आती है। तब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। तो जैसे शरीर में पंचप्राण हैं और उन पंचप्राणों की रक्षा का संबंध वायु से हैं, उसी प्राकर "रामचरितमानस" मे भगवान् राम का जो दिव्य आदर्श है, उसके भी पंचप्राण हैं और उन पंचप्राणो

के संरक्षक श्री हनुमान जी हैं, और श्री हनुमान जी केवल उनकी रक्षा ही नहीं करते, बल्कि उनमें उठने वाली विकृतियों का निराकरण भी करते जाते हैं। "मानस" के पाँच पात्र ही ये पंचप्राण हैं - पहले तो सुग्रीव, दूसरे ये बंदर, तीसरी आद्याशक्ति श्री सीताजी, चौथे श्री लक्ष्मण और पाँचवें श्री भरत।

इनमें से दो उर्ध्वप्राण हैं, दो अधःप्राण और एक केंद्रीय प्राणशक्ति है। इन पर जब भी विपत्ति आती है, संकट आता है, तो हनुमानजी ही इन पाँचो के रक्षक के रूप में दिखायी देते हैं। इसे मैं यहाँ पर विस्तार से तो नही रख सकूँगा, पर हाँ, सूत्र के रूप में इसका संकेत देने का अवश्य प्रयास करूँगा।

सुग्रीव और बंदरों का जो चरित्र है, वह श्री भरत और श्री लक्ष्मणजी के चरित्र के समान उदात्त नहीं हैं, तथापि "रामचरितमानस" में उनके चरित्र की भी बड़ी उपयोगिता है। कहा जा सकता है कि जो महान् कार्य संपन्न होता है, उसमें बंदरों और सुग्रीव की भूमिका साधारण नहीं है। सुग्रीव की तुलना अपान प्राण से की जा सकती है। मनुष्य जब मनमाना अनावश्यक आहार करता है, तो उसके जीवन में अपान वायु कुपित होती है। उस वायु के कोप से रक्षा का एकमात्र उपाय है संयम, सुग्रीव के चरित्र में भगवान राम से मित्रता के बाद भी भोग वासना का जागरण हुआ। इसका कारण यही है कि उन्होने भगवान् राम की करूणा का ऐसा अर्थ लिया, जो कि नहीं लिया जाना चाहिए था। श्री हनुमान ने उनके समक्ष भगवान् राम के करूणामय चित्र को इसलिए प्रस्तुत किया था कि उनका डर दूर हो जाय। हमने पिछली चर्चा में कहा था कि बालि कर्म का प्रतीक है और अगर ईश्वर की शरणागति से व्यक्ति कर्म के भय से मुक्त हो जाता है, तो उसका यह अर्थ नहीं कि वह मनमाना आचरण करने लगे। उसका अर्थ यह है कि अगर संसार में दुर्गुणों का भय मिट जाय, तो अन्य किसी भय को उसका स्थान लेना चाहिए। तो ईश्वर का भय उसके जीवन में आना चाहिए। इसीलिए "विनयपत्रिका" में गोस्वामीजी भगवान् राम से प्रार्थना करते हैं कि आप कृपा करके मुझे तीन वस्तुएँ दीजिए-

"सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की, नृप ज्यों डर डारि है।"

-पहली वस्तु है 'सुत की प्रीति"। एक पुत्र पिता से जैसी प्रीति पाता है, वैसी ही प्रीति मैं आप से पाऊँ। गोस्वामीजी की दूसरी माँग थी-"परतीति मीत की"- अर्थात् एक मित्र का दूसरे मित्र को जैसा विश्वास प्राप्त होता है, वैसा ही विश्वास मेरे जीवन में भी आ जाय। इन दोनों के साथ एक तीसरी बात जो गोस्वामीजी ने माँगी वह बड़ी अटपटी मालूम पड़ती है। वह थी-"नृप ज्यों डर डारि हैं-जैसे राजा से डर लगता है, सत्ताधीश से भय बना रहता है, वैसे ही मेरे जीवन में भी आपके प्रति भय बना रहे। यह बड़े विपरीत सी बात है। एक ओर प्रीत् की माँग, तो दूसरी ओर प्रतीति की, और तीसरी

ओर भय की। इसका तात्पर्य यह है कि प्रीति और प्रतीति जीवन में रस की सृष्टि तो करती हैं, लेकिन कभी-कभी व्यक्ति प्रीत् और प्रतीति पाकर निर्भय हो जाता है और ऐसी निर्भयता पाकर वह ईश्वर की करूणा का दुरूपयोग भी कर सकता है, जैसा कि सुग्रीव के जीवन में हुआ। सुग्रीव निर्भय होकर भोग करने लगे। ऐसी दशा में उपाय क्या है÷ अगर कोई व्यक्ति यह समझकर मनमाना भोजन करने लगे कि भोजन तो शरीर के लिए आवश्यक है, स्वास्थ्य के लिए जरूरी है, तो चतुर वैद्य उसे बता देता है कि देखो, तुम बड़ा अनियम कर रहे हो। अब भी यदि नहीं चेतोगे और इसी प्रकार मनमाना आहार-विहार करते रहोगे, तो तुम काल के गाल में समा जाओगे। जब रोगी के मन मे मृत्यु का भय उपस्थित होता है, तब वह स्वभावतः कुपथ्य से विरत होता है। परमसंत हनुमानजी ने वैद्य के रूप में यही किया। सुग्रीव जब कर्म की ओर से निर्भय हो मनमाने भोग में संलग्न हो गये और भगवान को भूल गये, तो हनुमानजी ने उनके अंतःकरण में भय की सृष्टि की और उन्हें पुनः भगवान् की ओर प्रेरित किया। इस प्रकार प्राण में विकृति आ जाने के कारण मृत्यु का जो भय उपस्थित हो गया था हनुमान जी उस भय का निराकरण करते हैं।

श्री हनुमान् जी तो साक्षात् शंकर के अवतार हैं और उनकी शक्ति तो इन्द्र की अपेक्षा भी जाने कितने अधिक है। वे चाहते तो सुग्रीव तथा बालि के संघर्ष में भाग ले सकते थे और बालि का वध कर सुग्रीव की रक्षा कर सकते थे। वे चाहते तो रावण को भी हरा सकते थे, पर उनके चरित्र का गौरवपूर्व पक्ष यही है कि वे सुग्रीव के साथ रहते हुए भी न तो बालि और सुग्रीव के युद्ध में हस्तक्षेप करते हैं और न कभी रावण को हराने का प्रयास करते हैं। "वाल्मीकि रामायण' के इस प्रसंग को एक दूसरे संदर्भ में देखा गया है। युद्ध की समाप्ति के बाद जब महर्षि अगस्त्य कथा सुना रहे थे, तो भगवान राम ने उनसे कहा - मेरी दृष्टि में हनुमानजी के समान अद्वितीय योद्धा न तो हुआ है और न होगा। पर मुझे आश्चर्य यही है कि उनके होते हुए भी सुग्रीव को जहाँ तहाँ भटकना पड़ा। उन्होंने बालि से सुग्रीव की रक्षा क्यों नहीं की? इसके उत्तर में अगस्त्य जो बात कहते हैं, वह बहुत गहरी है। अगस्त्य ने कहा - हनुमान जी को अपना बल भूला रहता था, इसलिए वे सुग्रीव की रक्षा नहीं कर पाये। यह पड़े पते की बात है कि बालि को अपना बल याद रहता था और हनुमानजी को अपना बल भूला। प्रत्येक अंहकारी को अपना गुण याद रहता है और निरहंकारी को अपनी कोई विशेषता याद नहीं रहती। यह कोई शाप नहीं बल्कि वरदान है। यह प्रत्येक सत्पुरुष का लक्षण है। जिसे अपने "मैं" की स्मृति है, उसी को अपने गुण की स्मृति रहती है, पर जहाँ

'मैं' नहीं, वहाँ अहंकार कैसे? और जहाँ अहंकार नहीं, वहाँ गुणों की स्मृति कैसे? इसका सरल - सा अभिप्राय यह है कि हनुमान जी चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर का आश्रित हो, अन्य किसी व्यक्ति का नहीं। वे सुग्रीव के मन मे यह छाप नहीं डालना चाहते थे कि मैं इतना शक्तिशाली हूँ कि तुम्हे बचा सकता हूं, बल्कि वे तो इसी सत्य को उनके मन पर अंकित कर देना चाहते थे कि जब व्यक्ति कर्म के द्वारा संत्रस्त होता है, तो एकमात्र ईश्वर का आश्रय लेकर ही रक्षा प्राप्त कर सकता है। और जब उन्होंने रावण को विनष्ट नही किया, तब वे यह बताना चाहते थे कि जब ईश्वर स्वयं मोह और अंहकार की वृत्तियों को नष्ट करता है, तभी सच्चे अर्थों में जीवन के अन्तःकरण मे समर्पण की वृत्ति जाग्रत होती है। भले व्यक्ति क्षण भर के लिये यह अनुभव करे कि मैंने मोह और अंहकार को जीत लिया है, पर विजय बालि और सहस्रार्जुन की विजय की तरह ही क्षणिक होती है। यदि किसी व्यक्ति को एक क्षण के लिये क्रोध न आये, काम न आये, लोभ न आये और वह सोच ले कि मैंने क्रोध, काम और लोभ को जीत लिया है, तो वह शायद सही नही देख पाता। अनेक बार ऐसा भी होता है, जब काम, क्रोध, लोभ हारे हुए से दिखायी देते हैं, पर अगले ही क्षण हमारे जीवन में वे प्रबल होकर उभर आते हैं।

हनुमानजी का चरित्र वास्तव में निरहंकारिता का मूर्तिमान स्वरूप है। वे प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर के आश्रय में ले जाना चाहते हैं। भगवान् राम और हनुमानजी का जब प्रथम मिलन हुआ और हनुमानजी ने उनसे पूछा कि आप कौन हैं, और बाद में जब भगवान् राम ने उनसे पूछा कि ब्राह्मण देवता, आप कौन हैं, हनुमानजी ने प्रभु को पहचान लिया और उन्हें उलाहना देते हुए कहा - प्रभो, भले ही मुझ अज्ञ ने आपसे पूछा हो कि आप कौन हैं, तो क्या केवल इसीलिए आपका भी बदले में मुझसे ऐसा पूछना उचित है कि तुम कौन हो? प्रभु बोले - यह तो शिष्टाचार है। अगर एक व्यक्ति परिचय जानना चाहे और दूसरा बदले में परिचय न जानना चाहे, तो उसका अर्थ यह है कि वह उससे परिचित नहीं होना चाहता। इसीलिए मैंने केवल शिष्टाचार का ही पालन किया है। हनुमान्‌जी ने कहा था-

"मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम पूछहु कस नर की नाईं।।"

- प्रभो, जीव यदि ईश्वर से प्रश्न करे, तो यह उसके लिए स्वाभाविक है, पर ईश्वर भी यदि जीव से पूछने लगे कि तुम कौन हो, तो यह तो बेचारे जीवन के प्रति सरासर अन्याय है-

"नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।।"

परन्तु फिर भी प्रभु ने हनुमानजी को नहीं छोड़ा। कहा कि ब्राह्मण देवता आपको अपना परिचय देना ही पड़ेगा। हनुमानजी चाहते, तो अपने परिचय मे कह सकते थे कि मैं पवन देवता का पुत्र हूँ, पर वे अपना परिचय यो देते हैं-

"एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेऊ दीनबंधु भगवान।।"

- प्रभो, एक तो मैं मन्द हूँ, दूसरे मैं मोह के वश में पड़ा हूँ और तीसरे मेरा हृदय कुटिलता से भरा हुआ है, और सर्वोपरि, आपने मुझे भुला दिया, इससे बढ़कर जीव का दुर्भाग्य और क्या होगा? जब हनुमान जी ने अपना परिचय देते हुए पहला शब्द कहा, "एकु मैं मन्द"- मैं तो मन्द हूँ, तो प्रभु के होठों पर हँसी आ गयी। प्रभु ने मन ही मन सोचा, ब्राह्मण देवता, भले ही तुमने अपनी निन्दा के लिये "मन्द" शब्द का प्रयोग किया है, पर सत्य तो सत्य ही है, जो अकस्मात् तुम्हारे मुँह से निकल आया। मंद होना गुण है अथवा अवगुण? किसी को मन्दबुद्धि कह दें, तो यह निन्दा है। पर जब हनुमान जी अपने को 'मन्द' कहते हैं, तो प्रभु मन ही मन निर्णय करते है कि हनुमान, तुम मन्द ही बने रहो। अभिप्राय क्या था? यही कि दूसरी बातो का मन्द होना निन्दा है, पर पवन का मन्द होना गुण है। पवन धीरे-धीरे बहे, मन्द-मन्द चले, तभी वह सुखद है। पर अगर तीव्रता से बहने लगे, तो दुखद है -

"सीतल मन्द सुरभि बह बाऊ।"-

हनुमानजी जब अपने आपको मन्द कहते हैं, तो प्रभु प्रसन्न हो गये। उन्होंने हनुमानजी से विनोद करते हुए कहा हनुमान, जब तुमने मन्द कहा, तभी मैं तुम्हे पहचान गया। पर तुमने एक ही बात कही और दो बातें छोड़ दी। वायु के तो तीन गुण माने जाते हैं - उसे शीतल होना चाहिए, मन्द-मन्द बहना चाहिए और सुरभित होना चाहिए "सीतल मन्द सुरभि बह बाऊ।" हनुमानजी ने इसका बड़ा सार्थक उत्तर दिया। वे बोले -प्रभो, वस्तुतः न तो पवन का गुण शीतलता है और न सुगन्धि। अगर पवन में शीतलता होती, तो गर्मी मे गरम हवा न बहती और यदि उसमें सुगन्ध होती तो, कभी दुर्गन्धित हवा न बहती। पवन तो ये गुण दूसरों से उधार लेता है। मैं मन्द तो था, पर शीतलता और सुगन्धि आप की है। मेरे चरित्र में तो मात्र मन्दता ही है, इस मन्दता मे शीतलता और सौरभ की सृष्टि करना आपकी कृपा पर निर्भर है। और गोस्वामीजी इस सत्य का निर्वाह करते हैं। जब भगवान् राम ने हनुमानजी को

अपने हृदय से लगाया, तो हनुमानजी को ऐसा लगा, मानो गरम हवा बह रही हो और जीवन उससे संत्रस्त हो, इतने में अचनाक वर्षा होने लगे और वायु में शीतलता आ जाय। हनुमानजी को जब प्रभु हृदय से लगाने लगे, तो उनमें इतना प्रेम उमड़ा कि उनकी आँखों से आँसू की धार बहने लगी और वह हनुमानजी को सींचने लगी। यहाँ पर गोस्वामी की एक चतुराई है। वैसे तो भक्तों की आँखो में आँसू का वर्णन बहुत किया गया है, पर हनुमानजी जब प्रभु के चरणों मे गिरते हैं, तो गोस्वामीजी लिखते हैं कि उनके शरीर मे पुलकावली आ गयी, उन्हें रोमांच हो आया पर यह नहीं लिखा कि उनके आँखों में आँसू आ गये हों। आंसू किसकी आँख में आया? भगवान राम की। अब इसका एक साहित्यिक और भावनात्मक तात्पर्य है। गोस्वामीजी से पूछा गया कि रोमांच क्या है?

उन्होंने कहा - "पुलकावाटिका" - वह एक बाटिका की तरह है, जब भक्त के शरीर मे रोम खड़े हो जाते हैं, तो मानो उसमें वाटिका लग जाती है, पर आँखो में आँसू की बूंद नहीं आती। हनुमानजी का तात्पर्य यह है कि महाराज, यहाँ तो विरह की ज्वाला ही ज्वाला है, गरमी ही गरमी है, यहाँ शीतलता कहाँ? दूसरे, यदि वाटिका हो, पर उसे सींचनेवाला न हो तो वाटिका पनपेगी कैसे? गोस्वामीजी ने निर्वाह करते हुए कहा - जब हनुमान्‌जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगा लिया, तो प्रभु रोने लगे और अपने आँसुओं से हनुमान को भिगोने लगे-

"तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।।"

हनुमानजी को प्रभु ने अपने आँसुओं से शीतल बना दिया। इसीलिए हनुमानजी ने कहा था - प्रभो, मन्दता तो मेरा गुण है। पर यदि मुझमें शीतलता और सुरभि दिखायी देती है, तो यह केवल आपकी कृपा का फल है। इसीलिए हनुमानजी जहाँ भी जाते हैं, अपने साथ प्रभु की शीतलता को ले जाते है। उन्हें देखकर लोगों को शीतलता की अनुभूति होती है। जब सीताजी ने हनुमान को देखा तो कहा - "तोहि देखि सीतल भइ छाती"। जब हनुमानजी को कोई देखता है, तो उसे राम की याद आ जाती है। विभीषणजी ने हनुमानजी को देखते ही कहा था, मुझे तो लगता है कि कहीं आप साक्षात् राम तो नहीं है। विभीषणजी ने बात बड़े पते की कही देखिए , पुष्प का साक्षात्कार दो प्रकार से होता है। आप किसी वाटिका में चले जाइए और अगर वहाँ सुगन्धित पुष्प लगे हों, तो आप उन्हें अपनी आँखों से देखिए। पर कभी ऐसा भी होता है कि आप वाटिका में नहीं गये, आपने पुष्प के पौधे का दर्शन नहीं किया, फिर भी आपने पुष्प को पा लिया। कैसे ? कहीं दूर से हवा का झोंका वाटिका

के भीतर से होकर गया और वह गुलाब, चम्पा अथवा रजनीगन्धा की सुगन्ध आप तक ले आया, तो आपको क्या अनुभव होता है? बिना वाटिका में गये हुए भी आपकी नासिका में ज्योंही गन्ध आती है, आप कह उठते हैं कि यह रजनीगन्धा की गन्ध कितनी सुन्दर है, गुलाब से यह कितनी सुन्दर सुगन्ध आ रही है। इसी प्रकार, हनुमानजी भी ऐसे सन्त हैं, जो जहाँ जाते है, वहाँ ईश्वर की सुगंध, उसकी शीतलता फैला देते है। वे सही अर्थों में पवननदन हैं। तभी तो विभीषणजी उनसे पूछते हैं-

"की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई।।
की तुम्ह राम दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़ भागी।।"

'आप सच -सच बताइए, आप कौन हैं, सच्चे सन्त की विशेषता क्या है? वह अपना परिचय देने के बदले भगवान् का ही परिचय देता है। हनुमानजी ने क्या किया?'

"तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।"

कई लोग तो रामकथा सुनाते-सुनाते अपनी कथा सुनाने लगते हैं, अपना गुण गाने लगते हैं। पर जब हनुमानजी से कहा गया कि आप अपनी कथा सुनाइये तो हनुमानजी ने कहा कि बन्दर की क्या कथा हो सकती है? कथा तो एकमात्र राम की है-

"तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिर गुन ग्राम।।"

इसका अभिप्राय यह है कि हनुमानजी का व्यक्तित्व ईश्वर का प्रचार करता है, ठीक वैसे ही जैसे पवन दूसरे के गुण शीतलता और सुगन्धि का प्रचार-प्रसार करता है। हनुमानजी और बालि में यही भेद है। बालि का अहंकार ही उसके विनाश का कारण होता है। बालि ने अपने जीवन की इस कमी का अनुभव किया और अंगद को भगवान् के चरणों में सौंप दिया। भगवान् ने कहा - बालि, तुम जीवित रहो। बालि बोला - नहीं महाराज, जब यह शरीर रखना उचित नहीं है। भगवान ने पूछा तो क्या तुम सेवा से बचना चाहते हो? बालि ने उत्तर दिया सेवा के लिए अपना यह तनय आपके चरणों में छोड़े जाता हूँ और ऐसा कह बालि अंगद को भगवान् के हाथों में सौंप देता है-

"प्रनवउँ पवनकुमार खल बल पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।"

श्री उपाध्याय के अनुसार हनुमानजी का चरित्र सचमुच अनोखा है। कुछ

चरित्र ऐसे होते है जो विचारको या वेदातनिष्ठ साधको के लिए उपयोगी होते है और कुछ भक्तो के लिए तथा कुछ लोगो को कर्म की प्रेरणा प्रदान करते है, पर हनुमानजी के लिए यह कहना कठिन है कि वे किसके आदर्श है। उनमे ज्ञान, भक्ति और कर्म के आदर्श के साथ-साथ निरभिमानता की पराकाष्ठा है। आपके समक्ष जो दोहा नित्य पढ़ा जाता है, उसमें "प्रनवऊँ पवनकुमार खल बन पावक" दुष्टों का विनाश सूचित करने के कारण कर्मयोग की पराकाष्ठा है। "ग्यानघन" ज्ञान की पराकाष्ठा सूचित करता है और "जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर" भक्ति की पराकाष्ठा का द्योतक है। यहाँ पर गोस्वामीजी की एक अन्य विशिष्टता दर्शनीय है। जब वे भगवान् श्रीराम, श्रीसीताजी एवं अन्य तीनों भाइयों की वंदना करते हैं, अथवा अन्य जो जाम्बवान्, अंगद, सुग्रीव आदि भक्त हैं, उनकी वंदना करते हैं, तब उन सबके चरणों की वंदना की बात लिखते हैं:-

"कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा।
बंदउं सबके चरन सुहाए। अदम सरीर राम जिन्ह पाए।।"

पर जब वे हनुमानजी की वंदना करते हैं, तो वहाँ पर उनके चरणों की वंदना नहीं करते। या तो कहते हैं, "प्रनवउँ पवनकुमार" या फिर "महाबीर बिनवऊँ हनुमाना।" और इन दोनों पदों में गोस्वामीजी हनुमानजी का जो रूप देखना चाहते हैं, वह है "जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर" - वे हनुमानजी के उस रूप का ध्यान करते हैं, जिसमें उनके हृदय में साक्षात् ईश्वर अपनी महाशक्ति के साथ निरंतर विद्यमान हैं। गोस्वामीजी सोचते हैं कि जैसे मैं अन्य भक्तों के चरणों का आश्रय लेता हूँ, उसी प्रकार यदि हनुमानजी के चरणों में गिरूँगा, तो हनुमानजी के चरण तो दिखाई देंगे, पर भगवान् राम और श्रीसीताजी के दर्शन नहीं होंगे। इसीलिए भले ही "बिनवउँ" "प्रनवऊँ" में चरणों में गिर पड़ने की अपेक्षा श्रद्धा की मात्रा कम प्रतीत होती है,[1] तथापि गोस्वामीजी हनुमानजी को इसी प्रकार प्रणाम करना अधिक पंसद करते हैं, जिससे उन्हें प्रणाम करने के साथ-साथ साक्षात् प्रभु के भी दर्शन होते रहें।

मनुष्य के शरीर में पंचप्राण होते हैं और उन पंचप्राणों के द्वारा ही व्यक्ति स्वस्थ रहता है। उसका जीवन इन पंचप्राणों पर ही आश्रित है। यदि इन प्राणों में कोई विकृति आ जाय, तो व्यक्ति अस्वस्थ हो जाता है और जब वह विकृति चरमसीमा पर पहुँच जाती है, तब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। तो जैसे शरीर में पंचप्राण होते हैं वैसे ही "रामचरितमानस" में जिस महान् आदर्श की सृष्टि की गयी है उसके भी पंचप्राण हैं और जैसे शरीर की रक्षा के लिए उसमें

स्थित पंचप्राणों का संतुलित होना आवश्यक है, वैसे ही इस आदर्श के भी पचप्राणों का संतुलन प्रयोजनीय है। इसके संरक्षण का भार श्री हनुमानजी पर है। "रामचरितमानस" के पंचप्राण है श्रीसीता, श्रीलक्ष्मण, श्रीभरत सुग्रीव और वानरगण। हनुमानजी इन पंचप्राणों की सुरक्षा का भार अपने ऊपर लेते है। आप "मानस" में यह सांकेतिक प्रसंग पाएँगे कि जब भी इन पाँचों के प्राणो पर संकट उपस्थित हुआ, तो उनकी रक्षा श्रीहनुमानजी के माध्यम से हुई।

हनुमानजी के चरित्र में सबसे कठिन कार्य उनकी लंका यात्रा थी। लका पहुँचकर भक्तिदेवी का, शांतिस्वरूपा शक्तिदेवी का साक्षात्कार करना और उन तक प्रभु का संदेश पहुँचाना, यह हनुमानजी के जीवन का विलक्षण कार्य है। सामान्यतया, साधन-जगत् की यह मान्यता है कि जब भक्तिदेवी कृपा करती है, तभी व्यक्ति भगवान् को पाता है। लेकिन यहाँ तो बात उल्टी हो गयी, यहाँ भगवान् और भक्ति के बीच में ही भेद की सृष्टि हो गयी। श्रीसीताजी और भगवान् राम अलग-अलग हो गये। ज्ञान और भक्ति का झगड़ा बड़ा पुराना है। लोग विवाद करते रहते है कि ज्ञान श्रेष्ठ है या भक्ति? गोस्वामीजी इसका बड़ा सुन्दर उत्तर देते हैं। वे कहते हैं कि भगवान् राम अखंड ज्ञान हैं और श्रीसीताजी साक्षात् पराभक्ति हैं। अब आप यदि इन दोनों में श्रेष्ठ और कनिष्ठ की कल्पना करना चाहें, तो भले ही ज्ञान और भक्ति में भी वैसा कर सकते है, पर दोनों यदि एक ही हैं, तब श्रेष्ठता और कनिष्ठता का प्रश्न भला कहाँ रह जाता है? गोस्वामीजी कहते हैं जब भगवान् प्रसन्न होते हैं, तो वे भक्ति का वरदान देते हैं -

"नाथ भगति अति सुखदायनी, देहु कृपा करि अनपायनी।।"

और जब भक्तिस्वरूपा सीताजी प्रसन्न होती हैं, तो वे निर्मल मति प्रदान करती हैं-

"जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।"

इसका अर्थ क्या है? ज्ञान कहता है कि भक्ति की ओर जाओ और भक्ति कहती है कि ज्ञान की ओर बढ़ो। इस प्रकार भगवान् श्रीराम और श्रीसीताजी के आशीर्वाद में ज्ञान और भक्ति की पूर्णता निहित है। किन्तु जब उन दोनो मे व्यवधान उत्पन्न हो जाय, जब ज्ञान और भक्ति में दूरी जान पड़े, तब उन दोनो को कौन मिलाये? मैं पहले आपके सामने कह चुका हूँ कि यह दूरी कैसे उत्पन्न हुई। इसे कुछ और अन्तरंग दृष्टि से मैं आपके सामने रखना चाहूँगा।

गोस्वामीजी हनुमानजी को वैराग्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं और सुग्रीवजी

को साधर-ज्ञान के रूप में। वे "विनय-पत्रिका' में हनुमानजी के लिए कहते है-

"प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय विषम वन भवनमिव धूमकेतू॥"

तथा सुग्रीव के लिए लिखते हैं "ज्ञान - सुग्रीवकृत जलधि सेतू।" फिर दूसरे स्थान पर वे भगवान् श्रीराम एवं श्रीलक्ष्मण को क्रमशः ज्ञान और वैराग्य के रूप में निरूपित करते हैं -

"सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर॥"

इस प्रकार श्रीराम और सुग्रीव दोनों को उन्होंने ज्ञान के रूप बताया। वैसे ही वैराग्य के भी उन्होंने दो रूप किये, एक श्रीलक्ष्मण और श्रीहनुमान। जब सीताजी की खोज करते हुए भगवान् राम शबरी के आश्रम में जाते है और उनसे पूछते हैं -

"जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबरगामिनी॥"

तो उसके उत्तर में शबरीजी कहती हैं कि प्रभो, आप सब कुछ जानते हुए भी मुझसे क्यों पूछते हैं? पर भगवान् का तात्पर्य यह था कि यदि भक्ति कभी खो जाय, तो शबरी के पास जाकर पता लगाना चाहिए। शबरी उत्तर मे भगवान् राम से कहती हैं कि आप पम्पासर जाइए और वहाँ सुग्रीव से मित्रता कीजिए। वहाँ सीताजी का पता चल सकेगा। हम कह चुके हैं कि भगवान् राम अखण्ड और सिद्ध ज्ञान हैं तथा सुग्रीव साधन-ज्ञान के रूप में हमारे समक्ष रखे जाते हैं। साधन-ज्ञान सदा एक रस नहीं रहता, वह तो कभी प्रकट होता है और कभी छिप जाता है। गोस्वामी जी लिखते हैं -

"कबहुँ दिवस महूँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनइस उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुंसग सुसंग॥"

जैसे आकाश में जब बादल घिर आते हैं, तो सूर्य का प्रकाश नहीं दिखायी देना और बादलों के छँटने पर सूर्य जगमगा उठता है, इसी प्रकार सुग्रीव के अन्तः करण में जब वासना और भय के बादल घिर जाते हैं, तो प्रकाश नही दिखाई देता और कभी जब वासना दूर हो जाती है, तो उनके अन्तः करण मे सत्य का प्रकाश दिखाई देने लगता है। ऐसे साधनज्ञान के पास शबरी सिद्ध ज्ञान को जाने की प्रेरणा देती है, यह बड़ी अटपटी बात मालूम पड़ती है। पर बात है बिलकुल पते की। कारण यह है कि सिद्ध ज्ञान में तो कोई क्रिया हो नहीं सकती क्योंकि -

कर्म कि होहि स्वरूपहिं चीन्हें।

जो अपने स्वरूप में स्थित है, वह कर्म कैसे कर सकता है? और सिद्धज्ञान का अर्थ ही है स्वरूप में स्थिति। यदि शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से विचार करें तो भगवान् राम और श्रीसीता का वियोग ही नहीं हुआ और जब वियोग की अनुभूति नहीं होगी, तो फिर क्रिया कैसे होगी? इसका अभिप्राय यह है कि सिद्धज्ञान की स्थिति मे न तो किसी वस्तु को पाना है और न किसी वस्तु को मिटाना, वह तो एक सहज स्थिति है। अतः यदि लोक कल्याण के लिए इस विश्व के रंगमंच पर साधन का तत्व प्रकट करना है, तो वह प्रक्रिया साधन-ज्ञान के माध्यम से ही सम्पन्न होगी। इसे यों समझ लें कि अभेद मे यदि निश्चित रूप से अभिन्नत्व का ज्ञान है, तो वहाँ पर भेद मिटाने का कोई प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। पर अभेद में जहाँ पर सभेद की कल्पना होती हो, टूटने का बोध होता हो, वहीं पर वस्तुतः कोई क्रिया होगी। इसीलिए यहाँ पर एक उलटी सी बात हो गयी। साधारणतया व्यक्ति साधन-ज्ञान के बाद सिद्धज्ञान में प्रवेश करता है, पर यहाँ तो सिद्ध - ज्ञानरूप भगवान् श्रीराम साधन ज्ञानरूप सुग्रीव से मिलने जाते हैं और उनके मिलन के बाद श्रीसीताजी की उपलब्धि का कार्य सम्पन्न होता है।

यहाँ पर एक प्रश्न खड़ा होता है। सुग्रीव जैसे साधन-ज्ञान थे, क्या वैसे ही हनुमानजी भी साधन, वैराग्य हैं? नहीं ऐसी बात नहीं। यहाँ तो जैसे लक्ष्मण जी सिद्ध - वैराग्य हैं, वैसे ही हनुमानजी भी सिद्ध - वैराग्य हैं। आगे चलकर हमे यह संकेत भी प्राप्त होता है कि जब लक्ष्मणजी के प्राण संकट में थे, तो उनकी रक्षा हनुमानजी ने ही की थी।

एक प्रसंग उल्लेखनीय है। जब भगवान् राम और हनुमानजी का मिलन हुआ था, तो प्रभु ने उनसे कहा था कि "हनुमान, मैंने प्रारम्भ में तुम्हारे प्रति कुछ उपेक्षा का व्यवहार किया, इसके कारण अपने अन्तः-करण में किसी न्यूनता का अनुभव न करना। सत्य तो यह है कि -

"सुनि कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना।।"

तुम मुझे लक्ष्मण की अपेक्षा भी दूने प्यारे हो। भावना की दृष्टि से प्रभु के इस कथन का अर्थ यह है कि जब प्रभु हनुमानजी की इस प्रकार सराहना करते हैं, तो उन्हें लक्ष्मण के प्रति इतना भरोसा है कि वे जानते है कि यदि किसी को भी लक्ष्मण की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया जाय, तो लक्ष्मण को बुरा लगने वाला नही और आध्यात्मिक दृष्टि से उक्त कथन का अर्थ कुछ भिन्न ...ो लक्ष्मणजी उसका अलग अर्थ लेते हैं और हनुमानजी अलग। और दोनो का अर्थ अपने-अपने लिए सही है।

प्रभु ने कभी एकान्त में हनुमानजी से पूछा, "हनुमान, जब तुमसे मेरा

प्रथम मिलन हुआ था और जब तुमसे मैने यह कहा था कि तुम मुझे लक्ष्मण से दूने प्यारे हो तो यह सुन तुम्हे कैसा लगा था? हनुमानजी बोले प्रभो तब मेरे अन्त करण मे लक्ष्मणजी के प्रति इतनी श्रद्धा का उदय हुआ कि वे आपकी भी अपेक्षा मुझे प्रिय लगने लगे।" "भला ऐसा क्यों?" प्रभु ने हँसते हुए पूछा। हनुमान जी ने कहा, "प्रभो, क्या मैं इतने भुलावे में आ जाऊँगा? मै तो तब आपसे कुछ क्षण पहले ही मिला था, आपकी कोई सेवा की नही थी और आपने मुझे उनसे एकदम दूना बना दिया, जो सब कुछ त्याग कर निरन्तर आपकी सेवा में लगे हुए हैं! तभी मैं समझ गया कि आपकी बात वैसी ही है, जैसी कि संसार के लोग कहा करते हैं- तुम मुझे प्राणों से बढकर प्यारे हो! उसका तात्पर्य मैंने यही लगाया कि लक्ष्मणजी आपके प्राण हैं और उनके बिना आप कुछ नहीं है। फिर, आपके कथन से यह भी प्रदर्शित होता है कि लक्ष्मणजी के प्रति आपका विश्वास कितना अगाध है। आपने उनके सामने जो कुछ कहा, वह तो सामान्य बुद्धि वाला भी नहीं कहेगा। यदि दो व्यक्ति किसी के सामने खड़े हों और वह दोनों की तुलना करने लगे, तो यह बात जैसे शिष्टाचार - विरुद्ध होगी, वैसे ही आपकी तुलना भी बड़ी अटपटी लगी। कहाँ जन्म से लक्ष्मणजी का आपसे परिचय और कहाँ मुझसे अतिअल्प समय का परिचय, और इतने में ही मैं आपके लिए लक्ष्मणजी से दूना प्रिय बन गया! मुझे यही लगा कि लक्ष्मणजी ने अपने अहंकार को कितना जीत लिया है और उन्हें आपका कितना अपनत्व मिला है। आप तो दूसरों की प्रशंसा करने मे कितने उदार रहें हैं, पर यदि कहीं पर आप कृपण सिद्ध हुए, तो लक्ष्मणजी के लिए उनकी प्रशंसा आपने कभी नहीं की। इससे तो यही सिद्ध होता है कि लक्ष्मणजी आपके इतने अपने हैं कि उनके प्रति किसी भी प्रकार के व्यवहार में आपको संकोच नहीं लगता। आप उनसे व्यवहार करते समय यह कभी नही सोचते कि मैं ऐसा करूँगा, तो वह बुरा मान जायेगा, बल्कि हम लोगो से आपको कुछ संकोच बना हुआ है कि कहीं कोई ऐसी बात मुंह से न निकल जाय कि सुनने वाले को बुरा लग जाय। तो, प्रभो, आपका जो अपनत्व है, वह तो लक्ष्मणजी के प्रति है, हम लोग तो दूर के सेवक है।"

और जब प्रभु ने एकान्त में लक्ष्मणजी से पूछा, "अच्छा लक्ष्मण जब मैंने हनुमान को तुमसे दूना प्रिय बताया, तब तुम्हें कैसा लगा?' तो लक्ष्मणजी ने कहा, "प्रभो, आपने बिल्कुल न्याय की बात कही। हनुमानजी तो सचमुच ही मुझसे हर प्रकार दूने हैं।" लक्ष्मणजी का संकेत श्रीसीताजी के हरण की घटना की ओर था, जब वे श्री सीताजी की मार्मिक वाणी सुनकर उनसे दूर चले गये थे-

"परम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।।"

यदि लक्ष्मणजी श्रीसीताजी की रक्षा में बने रहते, तो रावण मे यह सामर्थ्य नहीं थी कि वह उनका हरण कर सकता। लक्ष्मणजी इसी का संकेत करते हुए कहते हैं कि प्रभो, मुझमें और हनुमानजी में कितना अन्तर है! मैं माँ के पास सेवा में चौदह वर्ष रहा, फिर भी मैं उनका विश्वास न ले पाया, उनका मेरे प्रति अविश्वास अन्त में प्रकट हो ही गया और उन्होंने ऐसे कठोर बचन कहे कि मैं सह न सका एवं आपकी आज्ञा की अवहेलना कर, उन्हें वन मे छोड आपकी ओर चल पड़ा। मैं अपनी इस भूल को कभी भी न भूल पाऊँगा। मुझमे न जाने क्या कमी थी कि मैं इतने निकट रहकर भी माँ के लिए वे नितान्त अपिरिचित थे। फिर लंका की नगरी, जहाँ सब ओर अविश्वास ही, अविश्वास वहाँ तो सब ठग और धूर्त ही थे, पर पता नहीं हनुमानजी के चरित्र में उनकी वाणी में कैसा प्रभाव था कि वे लंका पहुँचकर माँ के सामने खड़े हुए, तो-

"कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास।।"

उसे सुनकर माँ को यह निश्चय हो गया कि शब्द तो कोई भी बोल सकता है, पर इतने प्रेम से भरे शब्द तो कृपासिन्धु भगवान् राम के दास के ही हो सकते हैं। महाराज, यदि मेरी वाणी और क्रिया - कलाप में भी इतना प्रेम होता, तो क्या मैं चौदह वर्ष में माँ का विश्वास न जीत लेता? यह तो हनुमानजी की विलक्षणता है कि नितान्त अपिरिचित होते हुए भी एक क्षण मे विश्वास जीत लेते हैं। फिर प्रभो, सीताजी का हरण मेरे कारण हुआ और उनका पता लगा हनुमानजी की कृपा से।

लक्ष्मणजी का कहना था कि रावण सीताजी का हरण करने में इसलिए सफल हुआ कि वे स्वयं दूर चले गये थे। और सत्य भी यही है। हमारे जीवन मे मोह की सफलता तभी होती है, जब वैराग्य हमसे दूर चला जाता है। व्यक्ति के अन्तः करण में ज्ञान के प्रति प्रगाढ़ आस्था होते हुए भी यदि वैराग्य उससे दूर हो जाय तो वह मोह का शिकार हो जाता है। इसीलिए "मानस" में वैराग्य को "ढाल" कहा गया है। जैसे योद्धा लड़ते समय आक्रमण का शस्त्र तो रखे, पर सुरक्षा का साधन न रखे, तो वह सुरक्षित न रह पाएगा, इसी प्रकार साधक को साधनरूप युद्ध में अपने बचाव के लिए वैराग्य की ढाल रखनी पडती है। उत्तरकाण्ड में कहा गया है-

"बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि।।"

भक्ति तो विजय में पाने की वस्तु है। ज्ञान की तलवार और वैराग्य की ढाल लेकर युद्ध में जब लोभ, मोह और मद इन तीन शत्रुओं का विनाश

होता है, तो जो वस्तु प्राप्त होती है, वही भगवान् की मंगलमय भक्ति है।

अभिप्राय यह है कि भक्ति तभी सुरक्षित रहेगी, जब जीवन में ज्ञान और वैराग्य दोनों होंगे। वैराग्य के अभाव में ज्ञान उसी प्रकार पंगु हो जाता है, जिस प्रकार ढाल के अभाव में तलवार। हाथ में तलवार रहे, तो योद्धा अपने शत्रुओं पर वार तो कर सकता हैं, पर शत्रुओं के वार वह मात्र तलवार से नही झेल सकता। इसके लिये उसे ढाल आवश्यक है, जिससे वह शत्रुओं के आक्रमण को झेल सके। यदि योद्दा के हाथ में केवल ढाल ही हो तलवार न हो, तो उससे वह आक्रमण तो झेल लेगा, पर स्वयं अपना वार सशत्रु पर नहीं कर सकेगा। फिर भी ढाल के द्वारा वह अपने को बचाकर तो रख ही सकेगा। यही संकेत हमें सीताहरण के माध्यम से प्राप्त होता है। मोहरूप रावण के द्वारा रचित जो मायारूप मृग है, उसे देखकर भक्तिरूप सीताजी में प्रलोभन और कामना उत्पन्न हो जाती है। ज्ञानरूप श्रीराम कामना की प्रेरणा से मायामृग के पीछे चले जाते हैं और वैराग्य रूप लक्ष्मण भगवान् राम के आदेश से वहीं रह जाते हैं। श्रीराम उनसे कहते हैं कि लक्ष्मण, वन में राक्षस लोग घूम रहे हैं, इसलिए -

"सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि विवेक बल समय बिचारी॥"

वैसे लक्ष्मण भी मृग को देखते हैं, पर उन पर उसका कोई प्रभाव नही पड़ता, उसके पीछे भागने या उसे पाने की इच्छा उनमें उत्पन्न नहीं होती। प्रभु लक्ष्मणजी पर भक्ति की रक्षा का भार देकर चले जाते हैं और इसमे कोई संदेह नहीं कि जीवन से यदि ज्ञान कुछ समय के लिए चला भी जाय पर वैराग्य बना रहे, तो भक्ति मोह आदि रिपुओं के आक्रमण से सुरक्षित रहेगी। लक्ष्मणजी के रहते रावण की सामर्थ्य नहीं कि सीताजी का हरण करे। पर जब वैराग्य को मर्माहत कर दूर कर दिया जाता है, तब भी वह जाते जाते एक रेखा खींचकर जाता है - भक्ति यह कहते हुए कि माँ, कम से कम इस रेखा पार न जाइएगा। वैराग्य की महिमा का यह अद्‌भुत प्रसंग है। जब तक वैराग्य की एक रेखा भी बनी रहेगी, भक्ति सुरक्षित रहेगी, मोह उसे चुरा न सकेगा। मोह इस रेखा को नहीं लाँघ पाता। वह तो भक्तिदेवी है, जो रेखा को पार कर बाहर निकल जाता है और मोह उनका अपहरण कर लेता है। रेखा कोई कारागार अथवा लोहे की दीवार तो थी नहीं, वह तो एक स्वत स्वीकृत बन्धन थी। वैराग्य का बन्धन स्वतः स्वीकृत ही होता है, उसे कोई दूसरा हम पर जबरदस्ती नहीं लादता। हम स्वयं अपनी सुरक्षा के लिये कुछ नियम बना लेते हैं, जिससे हमारा वैराग्य बना रहे। हम विपत्ति में तब पड़ते है, जब हम अपनी बनायी मर्यादा- रेखा को स्वयं लाँघ जाते हैं। वैराग्य की रेखा को सीताजी ही लाँघकर गयीं, रावण उसे नहीं लाँघ सका। परिणाम उसका

यह होता है कि रावण उन्हें हर ले जाता है। पहले तो दूरी मात्र रेखा की थी, पर अब वह चार सौ कोस समुद्र की दूर हो गयी है। मोह तक पहुँचने के लिए मात्र रेखा को लाँघना पर्याप्त था और वह सीताजी कर बैठती है, पर अब भक्ति तक, सीताजी तक पहुँचने के लिए ऐसा व्यक्ति चाहिए, जो समुद्र को लाँघ सके और प्रबल देहाभिमान के इस समुद्र को प्रखर वैराग्यरूप श्रीहनुमानजी ही लाँघने में समर्थ होते हैं।

वैराग्य के दो रूप हैं - एक प्रवृत्तिपरक और दूसरा निवृत्तिपरक। लक्ष्मणजी प्रवृत्ति - वैराग्य हैं, क्योंकि वे विवाहित हैं, पति हैं और "रामचरितमानस" मे इसी दृष्टि से उनके चरित्र का वर्णन हुआ है। और हनुमानजी है निवृत्त-वैराग्य, क्योंकि वे बाल - ब्रह्मचारी हैं और उनमें वैराग्य की पराकाष्ठा है। लक्ष्मणजी के जीवन में कुछ व्यावहारिक समस्या हो भी सकती है, पर श्रीहनुमानजी के जीवन में ऐसी कोई समस्या नहीं है। इसीलिए जब भगवान् राम ने लक्ष्मणजी से पूछा कि लक्ष्मण, जब मैंने तुम्हारे सामने हनुमान को तुम्हारी अपेक्षा दुगुना प्रिय कहा, तो सुनकर तुम्हें कैसा लगा? तो इसके उत्तर मे लक्ष्मणजी कहते हैं - प्रभो, आपने ठीक ही तो कहा है। देखिए न, सभी क्षेत्रों में हनुमानजी मुझसे दुगुने हैं। आपने मुझसे कहा था -

"एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं।
कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई।।"

लक्ष्मण, सीता कहीं भी हो, यदि वे जीवित हों तो काल को भी जीत कर पल भर में उन्हें ले आऊँ और आपने उनका पता लगाने का मुझे आदेश दिया था। पर ऐसा लगता है, मुझे कही गयी बात हनुमानजी ने सुन ली और वह कार्य उन्होंने कर दिखाया। और प्रभो, दूनेपन का सबसे बड़ा प्रमाण तो तब मिला, जब लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई"। मुझे शेष के रूप में संसार का भार तो उठाना ही पड़ता है, पर जो आपको और मुझे दोनों को उठा ले, उसे यदि आपने दूना कहा, तो वह पूरी तरह न्यायसंगत है।

इसका अभिप्राय यह है कि लक्ष्मणजी जो केवल प्रभु के आदेश का भार उठाते हैं, पर हनुमानजी भक्त और भगवान् दोनो का। लक्ष्मणजी भगवान् को छोड़कर कहीं जा नहीं सकते। उन्हें तो सतत् भगवान् राम की सुरक्षा के लिए उनके सान्निध्य में रहना है-

"छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु।।"

तब लंका कौन जायगा? कौन सीताजी का पता लगाएगा? अन्त मे हनुमानजी पर ही इसका भार आ जाता है।

अंगद ने जब समुद्र पार करने के लिए कहा गया, तो उन्होंने अपनी शक्ति पर शंका व्यक्त करते हुए कहा कि मैं उस पार तो चला जाऊँगा, पर लौट पाऊँगा या नहीं इसमें संदेह है। कुछ लोग अंगदजी के इस कथन का विचित्र अर्थ करते हैं। वे कहते हैं कि जब अंगदजी समुद्र को पार करके जा सकते थे, तो वे वापस भी लौट कर आ सकते थे। ऐसा कैसे होगा कि कोई व्यक्ति जा तो सकेगा, पर वापस न लौट सकेगा? इसीलिए वे लोग अंगदजी के इस कथन का -

"अंगद कहिअ जाँउँ मैं पारा। जिय संसय कछु फिरती बारा।।"

कुछ दूसरा ही अर्थ करते हैं। उनके अनुसार, अंगद कहते हैं कि मैं पार चला जाऊँगा। यदि आप लोगों के मन में संशय हो - "जिय संसय कछु" कि मैं जा सकूँगा या नहीं, तो फिरती बारा" यानी तीन बार आ जाकर दिखा सकता हूँ, इतनी सामर्थ्य मुझमें है! पर ऐसा अर्थ तो शाब्दिक खींचतान के सिवा और कुछ नहीं है। अंगदजी को लौट जाने में जो संशय है, उसके उचित कारण हैं। उन्हें केवल सागर पार करके लंका में जाना भर नहीं है, वहाँ, उस स्वर्णमयी, सौन्दर्यमयी, शक्तिमयी लंका में राक्षसों के बीच जाकर श्रीसीताजी का पता लगाना है और प्रभु का संदेश उन्हें सुनाकर उनका संदेश प्रभु तक लाना है। समुद्र को पार करना अंगदजी कठिन नहीं मानते, पर प्रवृत्तिमयी लंका में जाकर वहाँ से वापस लौटने में उन्हें संशय लगता है।

अंगद त्याग के प्रतीक हैं, जैसे कि हनुमानजी वैराग्य के। अंगद के त्याग का संकेत हमें आगे चलकर प्राप्त होता है। यद्यपि अंगद युवराज हैं, फिर भी उनके अन्तःकरण में राज्य की अभिलाषा नहीं है। जब भगवान् राम राज्याभिषेक के बाद सारे वन्दरों को विदा करते हैं, तब वे अंगद से भी घर लौट जाने के लिए कहते हैं। पर अंगद भगवान् श्रीराम के चरणों में नत होकर बड़े विनम्र भाव से प्रार्थना करते हैं कि प्रभो मुझे आप अपने चरणों में ही रहने दीजिए- "अब जनि नाथ कहहु गृह जाही"। यहाँ अंगद के चरित्र का त्याग पक्ष दिखायी देता है। उन्हें राज्य का मोह नहीं। जब वे कहते हैं कि मैं समुद्र को पार तो कर लूंगा, तो इसका तात्पर्य यह है कि वे देहाभिमान के समुद्र को पार करना उतना कठिन नहीं मानते। त्यागी देहाभिमान को पार कर लेता है। अंगद की इस त्यागवृत्ति की, देहाभिमान को पार करने की क्षमता की परीक्षा तब होती है, जब उन्हें भगवान् राम अपना राजदूत बना रावण की सभा में भेजते हैं। अंगद को राजदूत बनाकर भेजना रामायण की अलौकिक राजनीति है। वास्तव में राजदूत बनाकर उसे भेजा जाता है, जिस पर अपना पूरा विश्वास हो। समग्र वानरों में यदि किसी पर अविश्वास किया जा सकता था, तो वे अंगद

ही थे। ऐसा क्यों? इसलिए कि भगवान् राम के द्वारा अन्य किसी बन्दर की कोई हानि नहीं हुई थी, जबकि अंगद की सबसे बड़ी क्षति हुई थी। उनके पिता का वध भगवान् राम के द्वारा हुआ था। बालि यदि जीवित रहता, तो उसके बाद राज्य का उत्तराधिकार अंगद को ही मिलता। वह भी नहीं हुआ। बालि के वध के बाद राज्य सुग्रीव को दे दिया गया। अतः ,श्रीराम के प्रति यदि किसी के मन में दुर्भाव हो सकता था, तो वह अंगद ही हो सकते थे। फिर भी भगवान् राम अंगद को ही अपना राजदूत बनाकर रावण की सभा मे भेजते हैं और उन्हें सर्वाधिकार दे देते हैं और यह मानो प्रभु की रावण को चुनौती थी कि रे रावण , तू अपने को बड़ा राजनीतिज्ञ समझता है, देख, मैने तेरे भाई को फोड़ने की कोशिश नहीं की, वह स्वयं होकर मेरे पास चला आया और ले, अब मै भी तेरे पास एक व्यक्ति को भेज रहा हूं, यदि तुझमे फोडने की शक्ति है तो फोड़ ले, यदि तू भेदनीति में अपने को कुशल मानता है तो ले, मैं ऐसा व्यक्ति तेरे पास भेज रहा हूं, जिससे बढ़कर फोड़ने लायक और कोई हो ही नहीं सकता। ऐसा था भगवान् राम का विश्वास। श्रीराम की राजनीति विश्वास और प्रीति की राजनीति है, संसारकी नहीं। रावण का चरित्र संशयालु है, उसकी राजनीति प्रचलित राजनीति है। इसीलिए जब उसने बालि के बेटे अंगद को श्रीराम के राजदूत के रूप में सभा में आते देखा, तो उसे श्रीराम की राजनीतिक क्षमता पर संदेह हुआ। रावण ने भेदनीति का आश्रय लेते हुए अंगद से पूछा - तुम कौन हो? और इसके उत्तर में अंगद अपना परिचय देते हुए संकेतपूर्ण शब्द कहते हैं-

"अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेंटा।।"

मेरा नाम अंगद है, मैं बालि का बेटा हूँ और उनसे आपकी कभी भेट हुई थी।" रावण अंगद के व्यंग्य को समझ लेता है और वह भी व्यंग्य करते हुए कहता है-

"अब कहु कुसल बालि कहँ अहई।"

"हाँ, हाँ, वे तो मेरे मित्र रहे हैं, कहो वे कुशल से तो हैं न? आज कल वे कहाँ हैं?"

यह बात नहीं कि रावण को बालि के वध की बात न मालूम हो। वह सब जानता है। वह तो व्यंग्य भरे शब्दों में अंगद को यह संकेत करना चाहता है कि जिस व्यक्ति ने तेरे पिता का वध किया, तेरा राज्य छीन लिया, तू उसी का राजदूत बनकर यहाँ आया है? और रावण आगे चलकर इसे स्पष्ट शब्दों में व्यक्त भी कर देता है। पर अभी रावण ने पूछा कि कहो, आजकल बालि कहाँ हैं? अंगद इसका बड़ा विचित्र उत्तर देते हैं -

"दिन दस गए बालि पहिं जाई।
बुझेहु कुसल सखा उर लाई।।"

दस दिन के बाद तो आपकी उनसे भेंट हो ही जायेगी, तब उनसे मिलकर कुशल पूछ लीजिएगा। इस उत्तर को यदि हम भौतिक दृष्टि से देखें तो यह अच्छा उत्तर नहीं लगता, और रावण ने कहा भी यही-

"अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक।
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु।।
धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा।
अंगद स्वामिभक्त तव जाती।।"

इस प्रकार रावण अंगद पर प्रहार करता है। प्रश्न यह है कि क्या अगद का अपने पिता के प्रति यही सम्मान होना चाहिए? वास्तव में, अंगद ने जो उत्तर दिया, उसका संदर्भ ही भिन्न है। उन्होंने रावण से कहा कि रावण, तुम मुझे भड़काना चाहते हो, क्या तुम समझते हो कि मैं कायर हूँ, दुर्बल हूँ? यदि तुम बालि के पुत्र के रूप में मुझे देखते हो, तो तुम्हें विश्वास होना चाहिए कि मुझमें उनका बल, उनकी बुद्धि और उनका तेजस्वी स्वभाव भी होगा। श्रीराम के प्रति मेरे मन में कोई आक्रोश नहीं है क्योंकि -

"सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें।।"

मैं उन्हें अपनी अन्तरात्मा के रूप में अनुभव करता हूँ। यदि मैंने उन्हे अन्तर्यामी प्रभु के रूप में न पहचाना होता और एक व्यक्ति के रूप में उन्हें देखा होता, तो तुम्हारे एवंविध भड़काने की आवश्यकता नहीं थी। तब तो पिता की मृत्यु के बाद मैं स्वयं उन्हें चुनौती देता और उनसे युद्ध करता। पर मैंने जाना कि श्रीराम तो समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं, मेरे पिता की भी और मेरी भी। वे साक्षात् ब्रह्म हैं। उनके अन्तःकरण में किसी के प्रति रंचमात्र द्वेष नहीं। वे तो हमारे पिता का भी वध नहीं करना चाहते थे। हमारे पिता वास्तव मे अपने अभिमान के द्वारा ही विनष्ट हुए। अन्त में जब उनका अभिमान चूर-चूर हो गया, तो प्रभु ने उनकी रक्षा का प्रयास किया। रावण, तुम्हारे अन्तः करण मे श्रीराम एक व्यक्ति हैं और मेरे लिए वे साक्षात् अन्तर्यामी प्रभु हैं।

और वास्तव में, अंगद की दृष्टि देह से ऊपर उठ चुकी थी, क्योंकि वे श्रीराम को साक्षात् ब्रह्म के रूप में देखते थे। इसी दृष्टि से अंगद कहते हैं कि मैं समुद्र को तो पार कर लूंगा, अर्थात् देहाभिमान के समुद्र के उस पार तो चला जाऊँगा, पर केवल समुद्र को पार करने की की तो बात नहीं है, लंका में जाना है। और लंका कैसी है?

"नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।"

नर, नाग, सुर और गन्धर्व की रूपसी कन्याओं से सौन्दर्यमयी है जो मुनियों का भी मन मोह लेती है। "विनय-पत्रिका" में गोस्वामीजी कहते हैं-

"बपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका - दुर्ग"

यह प्रवृत्ति ही लंका दुर्ग है। और इसका अभिप्राय यह है कि त्यागी देहाभिमान से एक बार भले ही उठ जाय, लेकिन जब कभी प्रवृत्ति का चक्कर आता है, तो बड़े-बड़े त्यागी भी उसमें फँस जाते हैं। वह तो विरागी में ही, जो बाहर और भीतर दोनों प्रकार से वस्तु का त्याग कर चुका है, ऐसा चमत्कार होता है कि वह प्रवृत्ति में जाकर भी अछूता लौट सकता है। हनुमानजी और अगद में यही अन्तर है। हनुमानजी मूर्तिमान चरम वैराग्य हैं, इसलिए वे लका में मात्र जा ही नहीं सकते, अपितु वहाँ से अछूते लौट भी सकते हैं। आगे चलकर एक और भी बढ़िया बात आती है। पहली यात्रा में तो अकेले हनुमानजी ही समुद्र पार करके लंका गये, पर जब भगवान् राम सेना लेकर चले, तब करोड़ों बन्दर आकाशमार्ग से लंका में घुस गये। इसका अभिप्राय क्या? यही कि जब तक विराग से प्रवृत्तिरूप लंका दुर्ग को जला नहीं दिया, तब तक वहाँ कोई नहीं गया और जब वैराग्य से उसे जलाकर खाक कर दिया, तब अब चाहे जो चला जाय। जब तक लंका में प्रवृत्ति विद्यमान है, तब तक वहां से एक से बढ़कर एक आकर्षण हैं, पर जब प्रवृत्ति ही जल गयी, तब भय किस बात का? अंगद एक अच्छे साधक हैं। वे अपनी सीमाओं को जानते हैं। इसीलिए वे स्पष्ट कह देते हैं कि मैं चला तो जाऊँगा, पर मेरे अन्तः करण मे अभी वह स्थिति नहीं आयी कि मैं कह सकूँ कि कोई प्रवृत्ति मुझे आकृष्ट नहीं कर सकती।

प्रसंग तब का है, जब भगवान् राम चन्द्रमा की श्यामलता का कारण पूछते हैं। अंगद इसका उत्तर देते हुए कहते हैं-

"कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा।
सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥"

महाराज, जब ब्रह्म रति के मुख का निर्माण करने लगे, तो उसमें सौन्दर्य भरने के लिए उन्होंने चन्द्रमा को निचोड़ा और वह अमृत उसके मुख में लगा दिया। उस सार के हरने के कारण ही चन्द्रमा में यह श्यामलता आ गयी। यह उत्तर सुन प्रभु मन ही मन हँसे कि मेरे चरणों में बैठकर भी इसे अभी रति की याद बाकी है, इसके जीवन से रति और काम की स्मृति पूरी तरह से मिटी नहीं, तो अंगद अपने इस संस्कार से भली-भाँति परिचित थे और इसीलिए लंका से वापस आने में उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की।

तो, लंका में पहुँचकर वहाँ से बेदाग लौट आना केवल हनुमानजी का ही कार्य था। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि किस बाधा से कैसा व्यवहार करना चाहिए किससे लड़ना चाहिए, किसको क्षणभर में विनष्ट कर देना चाहिए और किससे बचकर चलना चाहिए। जो व्यावहारिक युद्ध के दाँव पेंच होते हैं, वही आध्यात्मिक युद्ध के भी होते हैं। चतुर साधक युद्ध की कला जानता है। जैसे व्यावहारिक युद्ध में व्यक्ति केवल शक्ति का ही संचय नहीं करता, अपितु शत्रु की दुर्बलता का भी पता लगाता है यह टोह लेता है कि कहाँ से आक्रमण करने पर शत्रु के राष्ट्र पर सरलता से अधिकार किया जा सकता है, वैसे ही साधक को अपने अन्तर्जीवन में चलने वाले युद्ध के लिए शक्ति - संचय के साथ-साथ यह भी पता लगाना होगा कि शत्रु पर सरलता से विजय कैसे प्राप्त की जा सकती है। बाहर का युद्ध तो थोड़ी देर चलता है, पर भीतर का युद्ध जीवनव्यापी होता है। भगवान् श्रीराम विभीषण से कहते हैं-

"महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर"

विभीषण, बाहर के युद्ध को जीतना सरल है, लेकिन भीतर जो महान् युद्ध चल रहा है, उसे जीतना बड़ा कठिन है। मेरी दृष्टि में सच्चा वीर वह है, जो इस दुर्जय सांसारिक शत्रु को, अपने भीतर के दुर्गुणों को परास्त कर देता है। वैसे तो भगवान् राम सच्चे वीर हैं, लक्ष्मण भी वीर हैं, पर महावीर कहने पर न तो राम की याद आती है न लक्ष्मण की, तब तो केवल हनुमानजी की ही याद आती है। ऐसा क्यों? इसलिए कि हनुमानजी हर दृष्टि से वीर हैं, वीरता की ऐसी कोई कसौटी नहीं जिस पर हनुमानजी खरे न उतरे हो। उनकी विशेषता इसी में है कि वे प्रत्येक दुर्गुण की प्रवृत्ति उसकी कला, उसकी दुर्बलता और उसकी क्षमता को जानते हैं और वे हर दुर्गुण से अलग-अलग प्रकार से लड़ते हैं। पिछले दिनों में आपके समक्ष जो प्रसंग हो चुका है, उसमें हमने देखा है कि वे सुरसा को प्रसन्न करके उससे आशीर्वाद लेते हैं और सिंहिका से एक बात भी न कर उसे नष्ट कर देते हैं। यह उनकी सजगता का परिचायक है। सुरसा और सिंहिका दोनों ही उन्हें खाना चाहती हैं, अतः साधारण व्यक्ति तो दोनों को एक ही श्रेणी में लेगा, पर हनुमानजी का निर्णय भिन्न है। वे मानो कहते हैं कि असत् - प्रवृत्ति को मारना चाहिए और सत् प्रवृत्ति से आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए। इन दोनों से निपट कर जब समुद्र को लाँघ हनुमानजी लंका के द्वार पर पहुँचे तो वे सोचने लगे कि लंका में पैठने का सबसे बढ़िया समय कौन-सा होगा और उन्होंने निर्णय किया कि रात्रि का समय ही सबसे उपयुक्त होगा। यह हनुमानजी की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का परिचायक है। वैसे इतिहास में अनेक पात्र आते हैं, जिनके संबंध में ऐसा

का एक अर्थ तो हमने देख ही लिया, उसका दूसरा अर्थ यह था कि लका को यदि सही मायने में देखना हो, तो उसे रात में ही देखना चाहिए, दिन मे नहीं। हम लोगों के जीवन की लंका भी अँधेरे में ही दिखायी देती है। उजाले मे तो कोई कथा सुन रहा है, कोई पूजा कर रहा है, कोई पाठ कर रहा है, तो कोई दान कर रहा है। वह तो रात में पता चलता है कि सचमुच क्या हो रहा है। इसीलिए हनुमान जी ने लंका को रात्रि में देखने का निश्चय किया। रावण तो बड़ा भारी पुजारी था। वह प्रातः काल से जो शंकरजी का पूजन प्रारम्भ करता, तो कई घंटे तक वह चलता ही रहता। हनुमानजी यदि प्रातः काल जाते, तो यही देखते कि रावण शंकरजी के पूजन में लगा हुआ है।

तो हनुमानजी अपने को अत्यन्त लघु बना लेते हैं और लंका में प्रवेश करते हैं। पर ये जो दुर्गुण और दुर्विचार की शक्तियाँ हैं, उनकी भी क्षमता और योग्यता कोई साधारण नहीं हुआ करती। एक ओर हनुमानजी - जैसा सजग व्यक्ति अपने को अत्यन्त छोटा बनाकर चलता है, तो दूसरी ओर वहाँ ऐसी पैनी दृष्टिवाले लोग हैं, जो हनुमानजी के इस छोटे रूप को भी देख लेते है। लंका के द्वार पर ही लंका की अधिष्ठात्री लंकिनी खड़ी थी। उसने देखा कि एक नन्हा-सा, बहुत लघु जन्तु भीतर घुसने की चेष्टा कर रहा है। उसने ललकार कर पूछा - अरे, तू कौन है, जो मेरी उपेक्षा करके जा रहा है?

"मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।

नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी।।

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा।।"

क्या तू मेरा मर्म नहीं जानता? मैं वह हूँ, जिसका भोजन चोर हैं। मै चोरों का भक्षण करती हूँ। कल हमने कथा में एक संकेत दिया था कि जब हनुमानजी आकाशमार्ग से जा रहे थे, तो सिंहिका उनकी विशाल छाया को पकड़ उन्हें नीचे गिराने की चेष्टा करती है। कल यह भी कहा गया था सिंहिका ईर्ष्या है और ईर्ष्या का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वह जिसे भी बड़ा देखती है, ऊपर जाते हुए देखती है, उसे गिराने और खाने की चेष्टा करती है। तो, जब हनुमानजी लंका में प्रवेश करने लगे, उन्होंने सोचा कि बड़े बनने पर लोगो को ईर्ष्या होती है, तो चलो, छोटे बनकर चलें पर यदि कोई व्यक्ति ऐसा निर्णय कर ले कि बड़े बनने से ईर्ष्या होगी, इसलिए छोटे बन जायं, तो क्या इससे बुराई से मुक्ति मिल जायेगी? हनुमानजी जब छोटे बनकर चले तो लंकिनी मिल गयी और उसने कहा कि मैं तुम्हें खाऊँगी। हनुमानजी समझ गये कि लका में चलना साधारण नहीं। बड़े बनो तो गिराएँगे और छोटे बनो तो खाएँगे

और यही बात समाज में भी होती है। यदि व्यक्ति अपने को अत्यन्त क्षुद्र मान ले, तो सब उसे खाने को तैयार हो जाते हैं और यदि वह अपने बड़प्पन का दिखावा करे, तो सब उसे गिराने को तैयार रहते हैं। तो प्रश्न यह है कि फिर बड़े बनें या छोटे? हनुमानजी बड़े भी बन सकते है और छोटे भी, इन दोनों रूपों का सदुपयोग कर सकते हैं।

हनुमानजी ने देखा कि अब तो संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया है। उन्होंने विचार किया कि सुरसा ने पास आते ही अपना परिचय दिया था कि मैं देवताओं के द्वारा तुम्हें खाने के लिए भेजी गयी हूँ। सिंहिका ने बिना कुछ कहे खाने की चेष्टा की थी और यहाँ लंकिनी उन्हें गाली देना शुरु कर देती है। हनुमानजी समझ जाते हैं कि यह चुपचाप खाना नहीं चाहती, कुछ बातचीत भी करना चाहती है। यह मिश्रित प्रवृत्ति की है, रजोगुणी है। और ऐसा विचार कर हनुमानजी लंकिनी पर घुँसे का प्रहार करते हैं प्रहार से लंकिनी मुँह के बल धरती पर गिर पड़ती है और उसके मुँह से रक्त निकलने लगता है। वह किसी प्रकार अपने को सम्हालकर खड़ी हो जाती है-

> "मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी।।
> पुनि संभारि उठी सो लंका।।"

और हाथ जोड़कर सशंक हो हनुमानजी से विनय करते हुए कहती है

> "जब रावनहिं ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा।।
> बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे।।
> तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता।।"

जब ब्रह्म ने रावण को वरदान दिया था, तो चलते समय उन्होंने मुझे पहिचान बताकर कहा था - "जब तू बन्दर की मार से विकल हो जायेगी, तो जान लेना निशाचरों का अन्त समीप है।" यह मेरा बड़ा पुण्य है कि अपनी आँखों से मैं राम के दूत को देख सकी और यह एक लंकिनी बड़ी विचित्र बात कहती है-

> "तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
> तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।"

यदि चारों प्रकार के मोक्ष और समस्त स्वर्गों का सुख एकत्र करके तराजू के एक पलड़े पर रख दिया जाय और दूसरे पलड़े पर सत्संग, तो दोनों की तुलना नहीं हो सकती। यह बड़ी अटपटी - सी बात मालूम पड़ती है। लंकिनी जिस सत्संग की बात कहती है, वह उसे किस प्रकार मिला? क्या हनुमानजी ने कोई भाषण दिया या कोई कथा सुनायी? उन्होंने तो बस मुक्केबाजी की।

तो क्या सत्सग मुक्केबाजी का नाम है? यदि हनुमानजी ने लकिनी को भाषण देकर समझाया होता कि मै तो राम का कार्य करने के लिए जा रहा हूँ, मै उनका दूत हूँ, तब तो बात समझ में आती कि सत्संग हुआ पर लंकिनी तो हनुमानजी को रोकती है और हनुमानजी उसे मुक्का मार कर गिरा देते है। फिर भी वह कहती है कि बड़ा अच्छा सत्संग हुआ। याद रखिए, सचमुच ही सत्संग जितना बढ़िया यहाँ हुआ, उतना रामायण भर में कहीं नहीं हुआ। जिस सत्संग से लंकिनी बदल जाए, उससे बढ़िया सत्संग और क्या हो सकता है? अच्छे पात्र के लिए सत्संग का कोई विशेष महत्व नहीं। पर जिस सत्संग से दुष्प्रवृत्तियों से भरी लंकानगरी में रहने वाली लंकिनी जैसी राक्षसी जाए, वही ठीक-ठीक सत्संग है और यथार्थ सत्संग का जीवन पर जो परिणाम होता है, वही लंकिनी के जीवन में भी दिखाई देता है। मुक्का तो हनुमानजी ने रावण को भी मारा था और वह इस प्रहार से मूर्छित हो गया था, पर उसके मुह से रक्त नहीं निकला था। लेकिन जब उन्होंने लंकिनी को मुक्का मारा, तो वह मुँह के बल गिर पड़ी और उसके मुँह से रक्त निकलने लगा। अभिप्राय यह है कि सत्संग में जाने पर जब मुक्का लगे और कुछ रक्त निकले, तब तो ठीक है, पर यदि रक्त न निकले तो, समझना चाहिए कि सत्संग का प्रभाव नही पड़ा। रक्त का अर्थ आप समझ ही गये होंगे। किसी महात्मा की जब हम प्रशसा करते हैं, तो कहते हैं कि वे बड़े विरक्त हैं। तो जैसे शरीर में रक्त होता है, वैसे ही मन में भी, और मन के इस रक्त को "राग" कहकर पुकारते है। तो सच्चे सत्संग की पहचान यह है कि वह राग को कम कर दें, हमें विरक्त बना दे। यदि संत्संग में जाकर भी राग की मात्रा वैसी ही बनी रही, तब तो यही कहना होगा कि मुक्का रावण की पीठ वाला लगा होगा, लंकिनी के सिरवाला नहीं। हनुमानजी ने जब रावण को मुक्का मारा तो वहगिरकर मूर्छित हो गया। मूर्छा दूर होने पर वह उठकर हनुमानजी के बल की बड़ी प्रशसा करने लगा- "कपि बल विपुल सराहन लगा"। पर एक विचित्र बात हो गयी। लकिनी ने जब हनुमानजी की प्रशंसा की थी, तो उसे सुनकर वे दु:खी नही हुए थे, पर यहाँ रावण की प्रशंसा सुनकर वे दु:खित हो जाते हैं और कहते है - "धिक - धिक अधम मंदमति मोही" - अरे मंदमति मुझे धिक्कार है, मुझे धिक्कार है। हनुमानजी रावण को "मंदमति" कहकर पुकारते हैं। दस सिर वाला रावण विश्व में अपनी श्रेष्ठ बुद्धिमत्ता का घमण्ड करने वाला रावण हनुमानजी की दृष्टि में मन्दमति है। हनुमानजी का अभिप्राय यह है कि रे रावण तेरी दासी लंकिनी हमारा भाषण समझ गयी, पर तू मंदमति है कि तू समझता है कि मुक्के के द्वारा अपने बल का प्रचार कर रहा हूँ। क्या मैं तुमसे अपने

बल का प्रमाण पत्र लेने यहाँ आया हूँ? जब हनुमानजी के मुक्के के प्रहार से रावण मूर्छित हो गया था, तो उसके मन में एक नन्हीं - सी आशा जगी थी कि रावण सम्भवतः सोचे मैं एक जगत् विजेता जब एक बंदर के मुक्के से गिर गया, तब अवश्य यह बन्दर के मुक्के का बल नहीं है, वह तो ईश्वर का बल का प्रहार है, जो बन्दर के मुक्के के माध्यम से मुझे लगा है और ऐसा सोचकर शायद उसके जीवन में भक्ति का उन्मेष हो जाय। पर जब उन्होंने रावण को देखा कि वह उन्हीं की प्रशंसा कर रहा है, तो वे अपने आपको धिक्कारने लगते हैं कि मैं रावण के अन्तः करण में ईश्वर के प्रति आस्था उत्पन्न न कर सका। वे अपने को धिक्कारने के साथ-साथ रावण को भी धिक्कारते हैं कि तू इतना मंदमति है कि बंदर का ही मुक्का देखता रह गया, ईश्वर का मुक्का तुझे दिखायी न पड़ा! हनुमानजी आत्मविज्ञापन या आत्मप्रचार के लिए लंका नहीं गये थे, वे तो अपनी हर सक्रिया के द्वारा यही चाहते थे कि रावण के अन्तः करण मे किसी प्रकार ईश्वर की महिमा का भाव स्फुरित हो जाय और जब वे इसमें विफल मनोरथ होते हैं, तो स्वयं को ही अधम कहकर धिक्कारने लगते हैं कि मेरे मुक्के की सार्थकता ही क्या जब तू अभी भी जीवित बच गया - "जौ ते जिअत"। इसका अर्थ यह है कि सच्चा सन्त जब देखता है कि इतने सत्संग के बाद भी सामनेवाला ज्यों का त्यों बना हुआ है, उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है और बस प्रशंसा करता हुआ लौट रहा है कि वाह, क्या बढ़िया कथा हुई, क्या बढ़िया प्रवचन हुआ, तो वह दुःखी हो जाता है। यदि वक्ता अपने अंहकार का प्रचार करने वाला होगा, जो वह तो अपनी प्रशंसा सुनकर बड़ा प्रसन्न हो जायगा, पर सच्चा सन्त तो प्रशंसा पाने के लिए सत्संग नहीं करता, वह तो श्रोता के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाना चाहता है। इसीलिए जब हनुमानजी रावण की प्रशंसा सुनते हैं, तो क्षोभ में भर कर बोल उठते हैं-

"धिक धिक अधम मन्दमति मोही। जौ तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही।।"

अरे सुरद्रोही रावण, तेरा सद्गुण के प्रति विरोध भाव तो ज्यों का त्यों बना हुआ है। धिक्कार है मेरे बल को, जो तेरे दुर्गुणों का तनिक भी नाश न कर सका।

इधर लंकिनी है, जो हनुमानजी का मुक्का खाकर सत्संग की प्रशंसा करने लगती है। हनुमानजी ने लंकिनी के सिर पर प्रहार किया था। इसका अभिप्राय यह है कि सत्संग का पहला लक्षण सिर पर प्रहार ही होता है। हमारे सिर में यानी मस्तिष्क में, बुद्धि में बहुत सी ऐसी मान्यताएँ है, जिनके हम अभ्यस्त हो गये हैं। परम्परा से प्राप्त मान्यताओं को चली आती देखकर हम उन्हें सही

मान बैठे है। यही दशा लकिनी की भी थी। वह हनुमानजी को इसलिए राक रही थी कि वह स्वामिभक्त थी और उसकी मान्यता थी कि व्यक्ति को अपने स्वामी के प्रति वफादार होना चाहिए। वह रात के समय जागकर पहरा दे रही थी, क्योंकि ऐसा करना उसने अपना कर्त्तव्य माना था। उसकी धारणा यह थी कि जब मैं रावण का अन्न खाती हूँ और जब उन्होंने लंका की रक्षा मे मुझे नियुक्त किया है तो मैं रात को कैसे सो सकती हूँ? वह धर्मबुद्धि से अपना कर्तव्य - पालन कर रही थी। तब हनुमानजी ने उसे क्यों मुक्का मारा? मुक्का मारने में हनुमानजी का यह अभिप्राय था कि स्वामिभक्ति धर्म तो है, पर पहले यह तो निर्णय हो जाय कि असली स्वामी कौन है। यह ठीक है कि धर्म माता-पिता की सेवा करने की बात कहता है, गुरु की आज्ञा का पालन करने की बात कहता है, पर पहले हम यह तो समझ लें कि माता, पिता और गुरु का स्वरूप क्या है। हमने धर्म की बात को तो अक्षरशः मान लिया है, पर धर्म के तत्व को भुला दिया है। हम मान्यताओं के आधार पर यह समझ लेते हैं कि हम धर्म का पालन कर रहे हैं, जबकि वस्तुतः हम मान्यताओं का ही पालन करते होते हैं, जैसा कि यह लंकिनी कर रही थी और जैसा कि "महाभारत" में महाराज शल्य कर रहे थे। शल्य जा रहे थे युधिष्ठिर की ओर से लड़ने पर रात को भूल से दुर्योधन का अन्न खा लिया और बस, भलेमानुस को लगा कि जब हमने दुर्योधन का अन्न ग्रहण किया है, तो अब दुर्योधन की ओर से ही लड़ेंगे और अपनी सेना लेकर वे दुर्योधन का अन्न ग्रहण किया है, तो अब दुर्योधन की ओर से ही लड़ेंगे और अपनी सेना लेकर वे दुर्योधन के पक्ष में चले गये। यह कोई धर्म का तत्व है क्या? कितने ही दिन वे युधिष्ठिर का अन्न खाते रहे, पर एक दिन धोखे से दुर्योधन का अन्न क्या खा लिया कि बस, सारा धर्म बदल गया! एक दिन का अन्न खाना शल्य ने धर्म मान लिया और जाने कितने दिन जो वे युधिष्ठिर का अन्न खाते रहे, वह धर्म नहीं हुआ! बस, ऐसी ही हमारी भी धर्म सम्बन्धी मान्यता है। संसार मे यदि कोई दो दिन हमें खिला दे, तो उसके प्रति कृतज्ञ होना हम धर्म मानते हैं। पर जो ईश्वर हमें जन्म - जन्मान्तर से खिलाता आ रहा है, उसके प्रति कृतज्ञता का भाव हमारे मन में नहीं आता, वहाँ यह स्मरण नहीं होता कि ईश्वर के प्रति कृतज्ञ होना भी हमारा धर्म हैं। इसीलिए तो सूरदास जी कहते है-

> "मो सम कौन कुटिल खल कामी।
> जो तनु दियो ताहि बिसराये ऐसी नमकहरामी॥"

हम केवल संसार के प्रति कृतज्ञ होना जानते हैं और वह भी वहीं तक, जहाँ तक हमारा स्वार्थ सिद्ध हो। सत्संग हमारी ऐसा मान्यताओं पर प्रहार

करता है। वह हमें स्पष्ट बताता है कि यह सही नहीं, हमें ऐसी करना चाहिए। यही बात आपको रामायण, महाभारत, गीता आदि सभी धर्म ग्रन्थो में प्राप्त होगी। भगवान् कृष्ण जब अर्जुन से कहते हैं "अशोच्यानन्दशोचस्त्वं प्रज्ञावादाश्च भाषसे" - "तू सोच न करने योग्य लोगों के लिए शोक कर रहा है और पडितों के से वचनों को कहता है", तो यह भी उस समय की मान्यता पर ही प्रहार था। अर्जुन समझता था कि मैं बड़ा त्यागी हूँ, अतः वह लड़ने से इनकार करता है औरकहता है कि रक्त से सनी पृथ्वी का भोग करने के बदले मै भीख माँगकर पेट भरना श्रेयस्कर मानता हूँ और वह अहिंसा और त्याग का वर्णन करता है। अर्जुन की यह बात सुनकर भगवान् हँस देते हैं। यह पहला प्रहार है। कोई गम्भीर होकर कोई बात हमसे कहे और हम हँस दे, तो वह उस पर एक प्रकार से प्रहार ही है और दूसरा प्रहार भगवान् यह कहकर कहते हैं कि तू "प्रज्ञावादांश्च भाषसे"- पण्डितों के से वचन कह रहा है। अर्जुन इस प्रकार से तिलमिला उठता है।

तो, सत्संग का पहला लक्षण है "हमारी मान्यताओं पर प्रहार।" और दूसरा लक्षण है "विरक्त होना।" - राग का, आसक्ति का कम होना। पहले जिन वस्तुओं में बहुत राग था, वह सत्संग के प्रभाव से घटना चाहिए। यह सुग्रीव के जीवन में साधित होता है।

बाग तो रावण का भी लुटा और सुग्रीव का भी। रावण के पास जब सूचना पहुँची कि उसके बाग का फल बन्दर ने खा लिया है, तो वह क्रोध की पराकाष्ठा पर पहुँच गया और जब सुग्रीव ने सुना कि मेरा बाग बन्दरो ने लूटकर खा लिया, तो वे क्रोधित होने के बदले हर्षित होते हैं। सुग्रीव की सूचना देने वालों ने इस ढंग से समाचार दिया कि सुग्रीव को क्रोध आ जाय-

"जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।"

महाराज! अगद आपका बाग उजड़वा दे रहे हैं! बाग उजाड़ने वालों में तो जाम्ववान्, नल, नील, द्विविद, हनुमानजी आदि सभी थे। अतः समाचार देने वालों को तो जाकर कहना चाहिए था कि सारे बन्दर बाग उजाड़ रहे है। पर वे ऐसा नहीं करते, जान - बूझकर अंगद का नाम लेते हैं। सोचते हैं कि अन्य वानरों के नाम से शायद उन्हें क्रोध न आए, पर अंगद से उनका थोडा मनमुटाव है, अतः अंगद का नाम कहने से वे भड़क उठेंगे। फिर, उसमें यह भी संकेत निहित था कि महाराज, आप अंगद से यदि अभी से सावधान नहीं रहेंगे, तो किसी दिन ये आपका राज्य भी लुटवा देंगे। पर यह सब सुनकर भी सुग्रीव के मन में क्रोध नहीं आता। उनमें आग की कमी हो गयी। इसीलिए अपने बाग के उजड़ने का समाचार पाकर भी वे रुष्ट होने के बदले प्रसन्न होते हैं-

"जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष मन करि आये प्रभु काज।।"

तो, सत्संग का दूसरा लक्षण है "राग में कमी" उसका तीसरा लक्षण है "गिरने के बाद फिर से उठकर खड़े हो जाना" - "पुनि संभारि उठी सो लका।" संसार में लोग गिरते हैं, तो गिरे ही रह जाते हैं, पर सत्संग में जाने वाला यदि गिरता भी है, तो उस गिरने में भी वह शिक्षा ग्रहण करता है और अन्त में अपने को सम्हालकर, उठकर खड़ा हो जाता है। जो व्यक्तिगिरने के बाद गिरा ही नहीं रहता तथा गिरे रहने में ही श्रेय नहीं मानता, वह सत्संग का तीसरा फल पाता है। लंकिनी गिरने के बाद जब उठती है, तो एक बढ़िया बात कहती है-

"तात मोर अति पुन्य बहूता।"

हे तात, मेरे बड़े पुण्य हैं। यह बढ़िया क्या, बड़ी विचित्र बात मालूम होती है। कोई पिट जाय, अपमानित हो जाय और कहे कि मेरा बड़ा पुण्य था, जो यह सब हुआ, तो क्या यह कोई बढ़िया बात होगी? तब लंकिनी का अभिप्राय क्या है? मनुष्य को जब सम्मान मिलता है, तो वह उसे अपने पुण्य का फल मानता है और जब वह अपमानित होता है, तो उसे लगता है कि वह उसके पाप का फल है और जो इतने उदार नहीं होते, वे तो अपमान करने वाले से बदला लेने की भी चेष्टा करते हैं। किन्तु यहां यह लंकिनी है, जो अपमानित होने पर भी कहती है कि यह मेरा बड़ा पुण्य है। इसका अर्थ यह है कि जिस सम्मान के द्वारा ईश्वर भूल जाय, वह पाप का फल है और जिस अपमान के द्वारा ईश्वर की याद आ जाय, वह वस्तुतः पुण्य का फल है। ठीक यही दर्शन शंकरजी का है, जब वे सारे असगुनों को लेकर बारात मे चलते हैं-

"कोउ मुखहीन विपुल मुख कोहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।।
विपुल नयन कोउ नयन विहीना।"

जब हम यात्रा में चलते हैं, तो कह देते हैं जरा पानी का घड़ा लेकर किसी को बाहर खड़ा कर दो। कुछ लोग चाहते हैं कि कोई दही लेकर सामने खडा हो जाय। हम लोग बस यही चाहते हैं कि सगुन मिले और कहीं असगुन मिला, तो घबरा जाते हैं। पर शंकरजी का दर्शन अनोखा है। वे कहते हैं कि सगुन श्रेष्ठ नहीं, श्रेष्ठ तो असगुन ही है। क्यों? इसलिए कि सगुन को देखकर सगुन की याद आती है और असगुन को देखकर ईश्वर का नाम मुँह से निकलता है। अतः श्रेष्ठ स्थिति वह है, जिसमें ईश्वर की स्मृति होती है। इसीलिए लंकिनी कहती है कि "मेरे बड़े पुण्य हैं, जो आपके दर्शन हुए। आपके दर्शन से मुझे

ईश्वर का नाम स्मरण हो आया। ब्रह्मा ने जो बात मुझसे कही थी, वह मै बिसार चुकी थी। आपकी कृपा से वह बात भी मुझे याद आ गयी।''

इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति बुरा नहीं होता, प्रवृत्तियाँ बुरी नही होती वह तो संग है, जो अपना रंग व्यक्ति या प्रवृत्तियों पर चढ़ाता है। लंकिनी मूलतः बुरी नहीं थी, वह तो रावण के संग से बुरी हो गयी, और उस पर इस संग का रंग इतना गहरा चढ़ा कि वह ब्रह्मा के साथ अपने सम्बन्ध को भी भूल गयी। हनुमानजी का संग उसके इस रंग को निकाल देता है और उसकी पुरानी स्मृतियों को जगा देता है। सत्संग का काम ही यह है कि बिसरी बात को स्मृतिपथ पर ला देना। गोस्वामीजी कहते हैं-

''तुलसी तोसों रामसों कछू नई न जान-पहचान।''

राम से जान - पहचान कोई नया नहीं है। पर हम वह भूल जाते है और सन्त आकर हमारे उस सबसे पुराने सम्बन्ध को हमें याद दिला देते है। आज जब हनुमानजी के संग के प्रभाव से लंकिनी को वे पुरानी बातें याद आ गयी, तब वह उनसे कहने लगी।

''प्रविसि नगर कीजे सब काजा।''

नगर में पैठकर अपना कार्य कीजिए। अब तक लंकिनी यही समझे हुई थी कि मैं रावण की सेविका हूँ और रावण की सेवा करना मेरा कर्तव्य है, पर आज इसकी समझ में आ गया कि रावण की सेवा करना मेरा कर्त्तव्य नहीं है। वह अब तक हनुमानजी को चोर समझे हुई थी, पर आज वह समझ गयी कि हनुमानजी चोर नहीं है, चोर तो रावण है। और यही समझाने के लिए हनुमान ने उसे मुका मारा था। लंकिनी ने उनसे कहा था कि तू चोर है और मैं तुझे खाऊँगी, क्योंकि मैं चोरों का भक्षण किया करती हूँ। तब हनुमानजी ने उस पर प्रहार कर उसे बताना चाहा था कि लंकिनी, यदि तू अपने सिद्धान्त की पक्की होती और चोरों का आहार ही किया करती, तब तो सबसे पहले तूने रावण का भक्षण किया होता, जो सीताजी को चुरा लाया, पर तू केवल बात ही करती है, अपने सिद्धान्त पर अडिग नहीं है, तू तो चोरी का पता लगाने वाले को खाना चाहती है और चोरी करने वाले का सेवा करती है। अतः तू खाने से पहले इसका निश्चय कर ले कि कौन चोर है और कौन साहूकार। और लंकिनी अपनी भूल समझ लेती है, वह सत्य को जान लेती है और हनुमानजी से लंका में प्रवेश कर अपना कार्य करने के लिए कहती है।

तो, हनुमानजी ने सत्वमयी प्रवृत्ति का आशीर्वाद प्राप्त किया, तमोमयी प्रवृत्ति का संहार किया और रजोमयी प्रवृत्ति में राग का रक्त कम किया, और

इस प्रकार वे अन्त में जगन्माता के पास पहुँचे। वहाँ जाकर वे सीताजी के अन्तःकरण में विश्वास की सृष्टि करते हैं। जब सीताजी के मन मे विश्वास का अभाव और संशय का उदय हुआ, तो भगवान् राम से दूरी उत्पन्न हो गयी, उनका हरण हो गया हनुमानजी माता के जीवन में उत्पन्न इस सशय का नाश करते हैं और उनके दुःख को दूर करते हैं। जिस समय सीताजी रावण के अत्याचार से व्याकुल हो अशोक वृक्ष मे प्रार्थना करती हैं कि हे असोक, तुम मेरा दु.ख दूर करो और अपना नाम सार्थक करो -

"सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।।"

तो उसी समय हनुमानजी मन में विचार कर भगवान् राम की दी हुई मुद्रिका नीचे डाल देते हैं-

"कपि करि हृदय बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।"

ऊपर से देखने में हनुमानजी का यह कार्य अत्यन्त आश्चर्यजनक है, और ऐसा साहस तो वे ही कर सकते हैं। भगवान् राम की मुंदरी क्या इस प्रकार से फेंकने की, नीचे डालने की वस्तु है? कुछ लोग कहेंगे कि हनुमानजी को वृक्ष से नीचे उतर आना था और सम्मानपूर्वक वह मुद्रिका सीताजी को देनी थी। इस ढंग से उसे नीचे फेंक देना तो अशिष्टता है। पर हनुमानजी ने यह जो किया, वह कोई नासमझी में नहीं किया। वे पूरी तरह सोच-समझकर ही ऐसा करते हैं और इसके पीछे एक विशेष अभिप्राय निहित है। सीताजी उस समय व्याकुल होकर इतनी निराश हो गयी थी कि अपने प्राण त्यागना चाहती थी। इसीलिए वे अशोक से कहती भी है कि तुम मेरे प्राण लेकर मेरा शोक दूर करो और इस प्रकार अपना नाम सार्थक करो। ठीक तभी हनुमानजी मुंदरी नीचे डालते हैं। उस मुंदरी में राम नाम अंकित था और हनुमानजी का संकेत यह था कि माँ, प्रभु ने जब यह मुंदरी मुझे दी, तो मैंने सम्भालकर इसे मुख मे रख लिया कि कहीं वह गिर न जाय और मैं तो समझता था कि मैने इसी मुंदरी के बल पर समुद्र को पार किया तथा सुरसा और सिंहिका आदि पर विजय प्राप्त की। पर यहां आकर मैने देखा कि आपने प्रभु का नाम छोड़कर असोक का नाम जपना शुरु कर दिया है। इससे मुझे लगा कि जो नाम आपका दु ख दूर न कर पाया उसे अब और रखकर क्या होगा? जब आपने उसे छोड दिया, तो मैं अब इसे संभालकर क्या करूँ? इसीलिए मैंने इसे डाल दिया।

हनुमानजी की इस क्रिया में बहुत बड़ा व्यंग्य निहित है। वे मुंदरी भी तब डाल देते हैं, जब माँ अशोक से आग माँगते हुए अपना हाथ ऊपर उठाये हुए हैं। वे मुंदरी तब नहीं डालते, जब माँ की दृष्टि नीचे हें, क्योंकि तब तो

मुद्रिका नीचे ही गिर जाती हनुमानजी का लक्ष्य नाम की महिमा को गिराना थोड़े ही था, वे तो एक विलक्षण पद्धति से माँ के अन्तः करण का संशय निकाल उसमें विश्वास भरना चाहते थे। इसीलिए जब वे देखते हैं कि माँ के हाथ ऊपर उठे हुए हैं, उसी समय मुद्रिका नीचे डालते हैं। माँ ने जब मुदरी को गिरते हुए देखा, तो उन्हें ऐसा लगा कि अशोक ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर अंगारा दे दिया है। वे हर्षित होकर उठ पड़ती है और उसे अपने हाथो मे ले लेती हैं-

> "कपि करि हृदयं बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
> जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेऊ।।"

और इस प्रकार मुद्रिका नीचे नहीं गिर पाती। हनुमानजी मन ही मन प्रणाम कर कहते हैं कि माँ, मैं तो समझता था कि नाम की महिमा गिरी, पर अब जब आपने संभाल लिया है, तब वह गिरने वाला नहीं। जब तक वह बन्दर के हाथ में थी, तब तक तो उसके गिरने की सम्भावना बनी हुई थी, पर अब जब भक्ति ने उसे संभाल लिया, तो कोई डर नहीं। भला जीवन नाम की महिमा को क्या संभालेगा? वह तो भक्ति के द्वारा ही सुरक्षित रह सकता है। आप ही यदि संकट में भगवन्नाम का आश्रय छोड़ अन्य नाम का आश्रय लेने लगीं, तो फिर जीवन के मन में विश्वास कैसे रह जायेगा।

माँ ने जब बाद में कहा - "मोरें हृदयं परम संदेहा", तो हनुमानजी ने अपना विशाल शरीर प्रकट कर दिया - "सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा"। इस पर माँ ने जब पूछा कि पहले तो तुम नन्हें - से दिखायी पड़ रहे थे और अब इतने बड़े दिखायी दे रहे हो, तो तुम्हारा असली रूप कौन सा है, तो हनुमानजी कहते हैं कि मेरा असली रूप तो वही पहले वाला है। माँ जब पुन पूछती है कि तुम ऐसे बदल कैसे गये? - तो हनुमानजी कहते हैं-

> "सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
> प्रभु प्रताप तें गरुड़हिं खाइ परम लघु ब्याल।।"

माँ, वानरों में बहुत बल - बुद्धि नहीं होती। परन्तु प्रभु के प्रताप से बहुत छोटा सर्प भी गरुड़ को खा सकता है। मैं तो आपको बस यही बताना चाहता था कि आपके प्रभु का प्रताप इतना बड़ा है कि एक नन्हा सा बन्दर भी लंका में अकेला चला आया और अभी इतना बड़ा बन गया। आप संशय मत कीजिए और अन्तःकरण में बैठे अविश्वास को दूर कर डालिए।

लक्ष्मणजी पर संशय करने के कारण सीताजी के जीवन में हरण कीजो प्रक्रिया हुई थी, वह हनुमानजी के प्रति विश्वास से अब उलटने लगी। फलस्वरूप

माँ गद्‌गद् हो गयीं और उन्होंने प्रसन्न हो हनुमानजी को आशीर्वाद देते हुए कहा - "होहु तात बल सील निधाना।" वैसे यह एक सामान्य आशीर्वाद है, जो प्रत्येक माँ अपने बच्चे को दिया करती है। भले ही बच्चा अपनी माँ से अधिक पढ़ा - लिखा हो, फिर भी माँ आर्शीवाद देते हुए कहती है - तुम बुद्धिमान बनो। फिर हनुमानजी तो विलक्षण ज्ञानी थे, ऐसे कि जिनसे प्रभु कहते हैं तुम श्रीसीताजी को समझाना और जब वे श्रीसीताजी के पास जाते है, तो वे क्या कहती हैं?"

"तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहिं समुझाएहु।।"

हनुमान, तुम प्रभु को समझाना। ऐसे प्रभु और जगज्जननी दोनों को समझाने वाले हनुमान को माँ आशीर्वाद देती है -

"आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू।"

और अन्त में प्रसन्न हो कहती हैं-

"करहुं बहुत रघुनायक छोहू।।"

श्रीराम तुमसे बहुत प्रेम करें।

हनुमानजी यह सुनकर आनन्द से नाचने लगते हैं और कहते हैं -

"अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता।"

माँ, अब सचमुच मैं कृतार्थ हो गया। प्रभु ने मुझसे सारे संसार की सेवा करने की बात कही थी-

"सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।"

इसलिए मैं समझता था कि सेवा करना मेरा धर्म है, पर आज आपने मुझे छुट्टी दे दी। मैं अभी तक यही मानता था कि सेवा करें और भगवान् के चरणों में प्रेम करें। पर आज आपने यह आशीर्वाद देकर मेरा सारा श्रम हर लिया। यदि आपने मुझे यह आशीर्वाद दिया होता कि तुम्हारे मन में श्रीराम के चरणों में प्रेम बना रहे, तो मैं उतना निश्चिन्त न हो पाता, जितना कि आज हो गया हूँ। आपने यह आशीर्वाद देकर कि श्रीराम ही तुमसे प्रेम करे, मुझे पूरी तरह निश्चिन्त बना दिया है। अब तो मुझे करना - धरना कुछ है नहीं जो कुछ करना है, वह सब अब प्रभु ही करेंगे।

और ऐसा कह हनुमानजी माँ से तुरन्त कहते है-

"सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रुखा॥"

माँ, वृक्षों पर सुन्दर फल लगे देख मुझे जोरों की भूख लगने लगी है। क्या मैं खा लूँ?

अभी इतना ऊँचा संवाद हुआ और अन्त में बात खाने पर ही समाप्त हुई। इसका अभिप्राय क्या? यही कि माँ और बेटे में जो वार्तालाप होता है, वह खाने - पीने को लेकर ही होता है। वहाँ और कोई दूसरी बातचीत नहीं होती, तो हनुमानजी का तात्पर्य यह है कि माँ, जब तुमने मुझे अपना पुत्र मानकर कृतार्थ कर दिया, तो अब तुमसे भूख की बात ही तो करूँगा, बस आज्ञा दो कि बाग के सुन्दर फल खाकर अपनी भूख की तृप्ति करूँ हनुमानजी मानो अपने बचपन का संकेत देते हैं कि कैसे वह जन्म लेते ही सूर्य को फल समझकर खाने चले थे और परिणाम स्वरूप उन्हें इन्द्र का व्रज झेलना पड़ा था। वे मानो कहते हैं कि माँ मुझ जैसा जन्मजात भूखा यदि तुम्हारी कृपा से आज तृप्त नहीं होगा, तो फिर कब होगा? इस पर माँ जब कहती हैं कि पुत्र यहाँ तो भय है, तो हनुमानजी कहते हैं मां इन्द्र से तो पहले ही निपट चुका हूँ, अब इन्द्रजीत से आज निपट लूँगा और अन्त में हनुमानजी विजयी हो, मां का संदेश प्रभु के पास पहुँचा देते हैं इस प्रकार दोनों को मिला देते है। वे प्रभु के पास जाकर कहते हैं - प्रभो जल्दी कीजिए, तुरंत चलिए, नहीं तो श्रीसीताजी के प्राण नहीं बचेंगे। प्रभु कहते हैं, "अभी दस ही महीना तो क्या है।' इस पर हनुमानजी पूछते हैं, "अवतार का सिद्धान्त झूठा हो रहा है क्या?" प्रभु प्रश्न करते हैं - "कैसे"? हनुमानजी कहते हैं - "मैंने तो सुना है कि प्रत्येक कल्प में आप अवतार लेते हैं?" भगवान पूछते हैं - "तो कल्प कहाँ?" हनुमानजी उत्तर में कहते हैं-

"निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।"

प्रभो ! जानकीजी की बिरह व्याकुलता इतनी तीव्र है कि उनका एक-एक पल कल्प के समान बीत रहा है। अत: आप शीघ्र चलिए, अन्यथा लोग आपके सिद्धान्त पर अविश्वास करने लगेंगे।

इस प्रकार हनुमानजी भगवान् को प्रेरित कर रावण का विनाश कराते हैं और अन्त में भगवान् राम और सीताजी का मिलना होता है। मां अन्त मे हनुमानजी से पूछती हैं "पुत्र", तुम्हें क्या दें? अब तो कुछ बचा नहीं।" तो हनुमानजी कहते हैं -

"सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥"

माँ, आज भगवान् श्रीराम को मैं लक्ष्मणजी के साथ निरामय देख रहा हूँ। बस अब मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

तो, इस प्रकार हनुमानजी श्रीराम और श्रीसीता को मिलाते हैं, लक्ष्मणजी के प्राणों की रक्षा करते हैं, श्रीभरत को प्रभु के आगमन का संदेश सुनाकर बचा लेते हैं, तथा सुग्रीव एवं वानरादि को अपनी सुरक्षा प्रदान करते हैं। रामायण के ये पंचप्राण उनकी कृपा से ही सुरक्षित रहते हैं। वे किसी को विश्वास देते हैं, तो किसी को प्रीति, किसी को वैराग्य, तो किसी को भय। हनुमानजी के चरित्र की गाथा अनंत है।

उत्तर प्रदेश के प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर

✓ अयोध्या - (क) हनुमानगढ़ी - भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की यह नगरी सरयू नदी के दाहिने किनारे पर बसी है। यहाँ का सबसे प्रमुख श्रीहनुमान - मन्दिर" हनुमानगढ़ी के नाम से विख्यात है। वह राजद्वार के सामने ऊँचे टीले पर चतुर्दिक प्राचीर के भीतर है। उसमें साठ सीढ़ी चढ़ने पर श्रीहनुमानजी का मन्दिर आता है। मन्दिर बड़ा है और उसमें श्रीहनुमानजी की स्थानक मूर्ति है। श्रीमारुति की एक और मूर्ति यहाँ है, वह केवल छः इंच ऊँची है और सदा पुष्पाच्छादित रहती है। श्री हनुमानजी के भक्तों के लिये यह स्थान विशेष श्रद्धास्पद है। मन्दिर के चारों ओर निवास योग्य स्थान बने हैं, उनमें साधु संत रहते हैं। हनुमानगढी के दक्षिण सुग्रीव - टीला और अंगद - टीला नामक स्थान हैं।

हनुमानगढ़ी की स्थापना लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व स्वामी श्री अभयारामदासजी ने की थी। आपने समाज की श्रद्धा बावना के संरक्षणार्थ पहले यहाँ श्रीनिर्वाणी अखाड़ा की स्थापना की और फिर यहीं श्रीहनुमानजी की विधिवत पूजा - आराधना एवं भोग-राग की व्यवस्था मर्यादित रूप से की।

(ख) हनुमन्निवास - यहाँ अयोध्या के प्रसिद्ध संत बाबा श्रीगोमतीदासजी निवास करते थे। वे प्राचीन ऋषियों की भाँति यज्ञानुष्ठान में तत्पर रहते, साधु सेवा करते और उत्सव समैया बड़े समारोह के साथ करते थे। वे सिद्धान्त और मंत्र के आचार्य थे। आर्तजन अपना दुखड़ा विनयपत्र द्वारा उनके समक्ष उपस्थित करते और बाबाजी रात्रि में अनुष्ठान से निवृत्त होकर उसपर आज्ञा देते थे। उसके अनुसार जप आदि करने से कार्य की सिद्धि होती थी। प्रख्यात महात्मा श्रीरुपकलाजी इसी हनुमन्निवास के उत्तरी कोठे पर निवास करते थे।

✓(ग) पहाड़पुर - एक दूसरी हनुमानगढ़ी फैजाबाद में मुजफरा नाकापर स्थित है जो पहाड़पुर नामक ग्राम में है। श्रीराम - रावण - युद्ध के अवसर पर संजीवनी लाते समय श्रीहनुमानजी के पहाड़ - सहित श्रीभरत के समक्ष यहाँ गिरने से इस स्मरणीय स्थान का नाम लोक में पहाड़पुर हुआ। यह अयोध्या से पाँच मील दूर इलाहाबाद - रोड पर अवस्थित है।

(घ) ज्ञानमुद्रा में श्रीहनुमानजी - पवनपुत्र का यह सुंदरतम विग्रह अवध के हनुमान बाग में प्रतिष्ठित है। यह मूर्ति इतनी चित्ताकर्षक है कि इसके सम्मुख जाने पर फिर वहाँ से हटने का मन नहीं करता।

(ङ) दास-भाव में हनुमानजी - श्रीराम - भक्त हनुमानजी के दास्य भाव का यह श्रीविग्रह अत्यन्त रमणीय है। इसका दर्शन करके मन मुग्ध हो जाता

है यह अद्भुत मूर्ति श्री श्री 108 स्वामी श्रीसार्वभौम स्वामी वासुदेवाचार्य जी महाराज के द्वारा स्थापित की गयी थी। यह स्थान जानकीघाट पर स१ई वेदान्तीजी के मन्दिर के अत्यन्त समीप ठीक सामने ही है।

(च) **व्यास हनुमान** - व्यास - वेष मे मारुति का श्रीविग्रह अयोध्या के रघुवीर नगर (रायगंज) मुहल्ले में प्रतिष्ठित है। यह मुहल्ला मणिपर्वत के निकट पडता है। कहते है कि यह स्थान वही है, जहाँ पवनपुत्र भरतादि बन्धुओं के सम्मुख भगवान् श्रीराम की कथा सुनाया करते थे। श्रीहनुमानजी के प्रेमी भक्त अयोध्या जाने पर इनका दर्शन करना आवश्यक समझते हैं।

वाराणसी - (क) श्रीसंकटमोचन -मन्दिर - श्रीसंकटमोचन हनुमानजी का मन्दिर शहर के दक्षिण हिंदू विश्वविद्यालय के समीप लंका में स्थित है। मन्दिर के चारों ओर एक छोटा - सा वन है। यहाँ का वातावरण एकान्त, शान्त एव उपासको के लिये दिव्य साधन-स्थली के योग्य है। मन्दिर के प्रागंण मे श्रीहनुमानजी दिव्य विग्रह के सम्मुख श्रीराघवेन्द्र सरकार श्रीकिशोरीजी एव श्रीलखनलालजी के साथ विराजमान हैं। श्रीहनुमानजी के मन्दिर में अलग एक ओर भगवान् विश्वनाथजी की लिंगमयी एक मूर्ति भी विराजमान है। श्रीसंकटमोचन हनुमानजी के समीप ही श्रीठाकुरजी भगवान् श्रीनृसिंह के रूप मे विराजमान हैं।

भगवान् के परम कृपापात्र श्रीतुलसीदासजी को कर्ण - घण्टा-स्थल पर कथा के समय जब श्रीहनुमानजी का दर्शन कोढ़ी वेष में हुआ, तब गोस्वामीजी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। उसी मुहल्ले में दक्षिण घोर जंगल (वर्तमान लंका) मे पहुँचकर तुलसीदासजी उनके चरणों पर गिर पड़े। अत्यन्त विनम्र प्रार्थना करने पर श्रीहनुमानजी प्रकट हो गये और बोले तुम क्या चाहते हो? गोस्वामीजी ने कहा मैं श्री राम - दर्शन चाहता हूँ। श्रीहनुमाजी ने अपना दक्षिण बाहु उठाकर कहा - "जाओ, चित्रकूट में प्रभु - दर्शन होगा।" गोस्वामीजी ने कहा - "प्रभो! आप इसी रूप से भक्तों के लिये यहीं पर निवास करे" श्रीहनुमानजी ने तथास्तु कहा और वे वहीं विराजमान हो गये। यह मूर्ति गोस्वामी तुलसीदास के एवं पुण्य से प्रकट हुई स्वयम्भू मूर्ति है। इस मूर्ति मे श्रीहनुमानजी दक्षिण भुजा से भक्तों को अभयदान कर रहे हैं एवं वाम भुजा उनके हृदय पर स्थित है, जिसका दर्शन केवल पुजारी जी को सर्वांग स्नान के अवसर पर होता है। श्रीविग्रह के नेत्रों से भक्तों पर अनवरत कृपा की वर्षा भी होती रहती है।

(ख) तुलसी मन्दिर - श्रीसंकटमोचन हनुमानजी से सम्बद्ध यह स्थान गंगा-किनारे तुलसीघाट पर स्थित है। यह गोस्वामी तुलसीदासजी की साधना - स्थली

है। तुलसीघाट का तुलसी - मन्दिर गोस्वामीजी द्वारा अनुप्राणित है। गोस्वामीजी की चरणपादुका, उनकी नौका का एक खण्ड और उनकी साधना - स्थली यहाँ आज भी सुरक्षित है। गोस्वामीजी के इस स्थान का भवन चार सौ वर्षों से भी अधिक प्राचीन है।

"संवत सोलह सौ असी असी गंग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर॥"

यह घटना इसी स्थान की है।

तुलसीघाट के इस पवित्र स्थान पर एक बालरूप श्रीहनुमानजी हैं जो "गुफा के हनुमानजी" - नाम से प्रसिद्ध हैं। ये गोस्वामीजी को जैसे दर्शन दिये थे उसी रूप में विराजमान हैं। दक्षिणाभिमुख होने से ये अधिक प्रतापी माने जाते हैं। इन्हीं हनुमानजी के समक्ष एक बीसा यन्त्र है, जिसका चरणामृत लगातार चालीस दिनों तक पान करने से बहुत लाभ होता है। मन्दिर के ऊपर भाग समे भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार श्रीकिशोरीजी एवं लखनलालजी के साथ विराजमान हैं। मन्दिर के क्षेत्र में हनुमानजी की तीन और मूर्तियाँ हैं, जो क्रमश पूर्वाभिमुख, पश्चिमाभिमुख एवं उत्तराभिमुख है। इस स्थान पर नित्य कथा होती है। अन्य उत्सवों के अतिरिक्त श्रीतुलसीदासजी की जयन्ती एवं निधन-तिथि - महोत्सव बडी धूमधाम से मनाया जाता है।

"गुफा के हनुमानजी" श्रीराम - नाम एवं श्रीराम का मंगल चरित सुनने से अतीव प्रसन्न होते हैं। अनेक लोगों ने यहाँ रामचरितमानस के किष्किन्धाकाण्ड के पाठ का अनुष्ठान कर आशातीत लाभ प्राप्त किया है।

(ग) **हनुमानघाट** - हनुमानघाट यहाँ का एक प्रसिद्ध घाट है। यहाँ श्रीहनुमानजी का मन्दिर है। मन्दिर के श्रीविग्रह की स्थापना समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी महाराज द्वारा हुई थी। तीर्थाटन करते हुए जब श्रीसमर्थ यहाँ पधारे, तब उन्होंने इस मूर्ति को स्थापित किया था।

प्रयाग - यहां का त्रिवेणी संगम सुप्रसिद्ध है। इसके पास ही एक विशाल किला है। उस किले के समीप श्रीहनुमानजी का मन्दिर है। मन्दिर में श्रीहनुमानजी की विशाल मूर्ति है। मूर्ति की विशेषता यह है कि यह भू-शायिनी है। जब वर्षा के दिनों में बाढ़ आती है और सारा स्थान जलमग्न हो जाता है, तब हनुमानजी की वह मूर्ति कहीं अन्यत्र ले जायी जाती है।

चित्रकूट- हनुमानधारा-कोटितीर्थ से पहाड़ के ऊपर-ही-ऊपर करीब दो मील जाने पर हनुमानधारा मिलती है। कुछ यात्री कोटितीर्थ न जाकर सीतापुर से सीधे हनुमानधारा आते है। सीतापुर से हनुमानधारा तीन मील है। यह स्थान

पर्वतमाला के मध्यभाग मे स्थित ह। पहाड़ के सहारे हनुमानजी की एक विशाल मूर्ति के ठीक सिर पर दो जल के कुण्ड है, जो सदा भरे रहते हैं और उनमे से निरन्तर पानी बहता रहता है। इस धारा का जल हनुनानजी को स्पर्श करता हुआ बहता है। इसीलिए इसे हनुमानधारा कहते हैं। धारा का जल पहाड़ मे ही विलीन हो जाता है। उसे लोग प्रभाती नदी या पातालगंगा कहते हैं। यह स्थान बड़ा ही रमणीक है। लगभग साढ़े तीन सौ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद हनुमानजी के दर्शन होते हैं।यह स्थान वृक्षों से आच्छादित और शीतल है। कुछ धर्मात्मा लोगों ने यात्रियों के विश्रामार्थ श्रीहनुमान जी के समीप एक चौडी दालान बनवा दी है।

इस स्थान के बारे में एक कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है- श्री राम के अयोध्या मे राज्याभिषेक होने के उपरान्त एक दिन हनुमानजी ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा - "महाराज! मुझे कोई ऐसा स्थान बतलाइये, जहाँ लंका-दहन से उत्पन्न मेरे शरीर का ताप मिटे।" तब भगवान् ने हनुमान जी को यह स्थान बतलाया। यह स्थान सचमुच बड़ा ही सुन्दर है।

लखनऊ- यहाँ अलीगंज का श्रीहनुमान-मेला विख्यात है। कभी लक्ष्मणपुर कहलाने वाली इस नगरी से होकर प्रवाहित होती हुई गोमती के उस पार 19 वीं शती के आरम्भ में नवाब शुजाउद्दौला की पत्नी, नवाब वाजिद अली शाह की शदी तथा दिल्ली के मुगलिया खानदान की बेटी आलिया बेगम द्वारा बसाये गये अलीगंज मुहल्ले में एक श्रीहनुमान-मन्दिर है, जिस पर पूरे ज्येष्ठ मास के प्रत्येक मंगलवार को मुख्यत; हिन्दुओं और मुसलानों की ओर से तथा कुछ ईसाइयों की ओर से भी श्रद्धापूर्वक मनौतियाँ मानी जाती हैं, चढ़ावा चढ़ाया जाता है और उन्हें प्रसाद दिया जाता है। लखनऊ में मुहर्रम और अलीगंज का महावीर-मेला ये ही दो सबसे बड़े मेले होते हैं। मेले से लगभग एक सप्ताह पहले से ही शहर के दूर-दूर भागों से आकर हजारों लोग केवल एक लाल लंगोटा पहने सड़कों पर पेट के बल लेट-लेटकर दण्डवती परिक्रमा करते हुए मन्दिर जाते हैं। हनुमानजी के इस मन्दिर का महत्व या "मान्यता" इतनी अधिक है कि लखनऊ में ही नहीं, दूर-दूर तक जहाँ भी हनुमानजी का कोई नया मन्दिर बनता है, वहाँ उसकी मूर्ति के लिए पोशाक, सिंदूर, लगोटा, घंटा और छत्र आदि यहाँ से बिना मूल्य दिये जाते हैं और तभी वहाँ की मूर्ति-स्थापना प्रामाणिक मानी जाती है।

इस मन्दिर का इतना महत्व होने से आम तौर पर लोगों में आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। विशेषकर इसलिए कि एक तो यह नया मंदिर है, दूसरे, इसकी स्थापना जीर्णोद्धार तथा रख-रखाव एवं देखभाल मे अवध के उदार

मुसलमानो का मुख्य हाथ रहा है और तीसर, इससे थोड़ी ही दूर पर अलीगज के अन्तिम छोर पर हनुमान जी का ही एक बहुत पुराना मन्दिर है, उसकी इतनी मान्यता नहीं है।

कुछ पौराणिक तथ्यों के अनुसार, रामायणकाल में इसका आदिस्रोत महानगर कालोनी में हीवेट पालिटेक्निक के निकट स्थित इस्लामबाड़ी में था। कहते हैं, जब अयोध्या लौटने के बाद श्रीरामचन्द्र जी ने सीताजी को त्यागने का निश्चय कर लिया और श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमानजी के साथ श्रीसीताजी को लेकर कानपुर जिले के बिठूर, जहाँ वाल्मीकि-आश्रम था, के वन में छोड़ने जा रहे थे, तब वर्तमान अलीगंज के पास आते-आते काफी अँधेरा हो गया और रातभर रास्ते में ही विश्राम करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अत: वे तीनों रास्ते में ही सोच-विचार के लिए रूक गये। जिस स्थान पर वे रूके थे, वहाँ हीवेट पालिटेक्निक की बगल से पुराने अलीगंज - मन्दिर को जाने वाली सडक पर एक बड़ा-सा बाग था। यद्यपि लक्ष्मणजी चाहते थे कि कुछ दूर और चलकर गोमती के उस पार (शहर की ओर) बनी अयोध्याराज्य की चौकी मे विश्राम करें, जिसे बाद में लक्ष्मणटीला की संज्ञा दी गयी, किन्तु सीताजी अब किसी भी राजभवन में पैर रखने को तैयार न थीं। फलतः लक्ष्मणजी तो उस चौकी अर्थात् अपने महल को चले गये और सीताजी उसी बाग में रूक गयीं, जहाँ हनुमान जी रात भर उनका पहरा देते रहे। बाद में दूसरे दिन वे लोग वहाँ से बिठूर के लिए चल दिये।

कालान्तर में उसी बाग मे एक मन्दिर बन गया, जिसमें हनुमान जी की मूर्ति स्थापित थी और उस बाग को हनुमानबाड़ी कहा जाने लगा। यह मन्दिर शताब्दियों तक बना रहा। 14 वीं शती के आरम्भ में बख्तियार खिलजी ने इस बाड़ी का नाम बदलकर इस्लामोबाड़ी कर दिया, जो आज तक चला आ रहा है।

इसके बहुत दिन सन् 1792 से 1802 के बीच अवध के तत्कालीन नवाब मुहम्मद अली शाह की बेगम रबिया के जब कई वर्षों तक कोई संतान नहीं हुई और बहुत-से-हकीम-वैद्यों की दवाइयों और पीर-फकीरों की दुआओं ने भी जवाब दे दिया, तब कुछ लोगों ने उन्हें इस्लामबाड़ी के बाबा के पास जाकर दुआ मांगने की सलाह दी। कहते हैं, एक दिन उन्हें स्वप्न में हनुमानजी ने दर्शन देकर कहा कि "यदि वे इस्लामबाड़ी जायँ और संतान की कामना करें तो उनकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी।" ऐसी किंवदन्ती है कि जब वे गर्भवती थीं, तब उन्हें फिर स्वप्न हुआ, जिसमें उनके (गर्भस्थ) पुत्र ने उनसे कहा कि "इस्लामबाड़ी में उसी जगह हनुमानजी की मूर्ति गड़ी है, उसे निकलवाकर किसी मन्दिर में प्रतिष्ठित किया जाय।"

फलतः बच्चे के जन्म के बाद रविया बेगम वहाँ गयीं और नवाब के कारिन्दों ने टीला खोद डाला तथा नीचे से मूर्ति निकाल ली गयी। बाद मे उसे साफ-सुथरा करके, नवाब के आदेश से सोने-चाँदी तथा हीरे-जवाहरात से मण्डित एक हौदे पर बैठाकर हाथी पर रखा गया, जिससे आसफुद्दौला के बड़े इमामबाड़े के पास ही उसे प्रतिष्ठापित करके मन्दिर बनवाया गया। इस हाथी को लेकर जब सब लोग वर्तमान अलीगंज की सड़क से जा रहे थे (जो उस समय एक गलिया था), तब सड़क के अन्तिम छोर पर पहुँचकर उस हाथी ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। महावत ने लाख चेष्टाएँ की, किन्तु हाथी ज्यों-का-त्यों अड़ा रहा। अन्त में बेगम साहिबा ने उसकी पीठ से हौदा उतरवा दिया, तब वह चलने लगा, किन्तु बाद में जब वह हौदा फिर उसपर रखा गया तो वह पुनः बैठ गया। अन्त में जब उस बाड़ी के साधु ने कहा कि "रानी साहिबा! हनुमानजी गोमती के उस पार नहीं जानाचाहते, क्योंकि वह लक्ष्मणजी का क्षेत्र है।" तब बेगम साहिबा ने वहीं सड़क के किनारे, गोमती-तट के निकट (तब गोमती अपनी वर्तमान स्थिति से हट कर अलीगंज के निकट से बहती थी) मूर्ति स्थापित करा दी और उसपर एक छोटा-सा मन्दिर भी बनवा दिया। साथ ही उसी साधु को सरकारी खर्च पर मन्दिर का महंत नियुक्त कर दिया गया और उसकी व्यवस्था के लिए भी सरकारी रकम नियुक्त कर दी गयी। मन्दिर के लिए उसके आसपास की अधिकांश जमीन महमूदाबाद रियासत की ओर से मुफ्त में दे दी गयी।

किंतु मेला अभी नहीं आरम्भ हुआ था। कहते हैं, उपर्युक्त मन्दिर स्थापना के दो - तीन वर्ष बाद ही उस क्षेत्र में एक बार बहुत दूर-दूर तक प्लेग महामारी फैली और सैकड़ों-हजारों लोग इस घातक रोग से बचने के लिए पुराने मन्दिर के हनुमानजी की शरण में गये, तभी वहाँ के पुजारी को स्वप्न हुआ, जिसमे हनुमानजी ने कहा कि "ये लोग यहाँ नहीं, उस नये मन्दिर में जायँ, मैं वहाँ वास करता हूँ, मेरी शक्ति वहाँ की मूर्ति में है।" फलतः वह पूरी भीड़ नये मन्दिर में चली आयी और उनमें से बहुतों को स्वास्थ्य लाभ हुआ। तभी से इस नये मन्दिर पर मेला लगने लगा। किन्तु इसी सम्बन्ध में एक दूसरी किंवदन्ती यह है कि एक बार नवाब वाजिदअली शाह की दादी आलिया बेगम बहुत बीमार पड़ीं। उन्होंने दुआ की और वह रोग समाप्त ही गया। इसके फलस्वरूप उन्होंने यहाँ बहुत बड़ा उत्सव मनाया, लाखों की खैरात बाँटी और तभी से मेले की परम्परा चालू हो गयी। इसी के साथ-साथ आलिया बेगम के नाम पर इस पूरे मुहल्ले (अर्थात् तत्कालीन गाँव) का नाम अलीगंज रख दिया गया।

इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरी किंवदन्ती और भी है - नवाब शाह के समय में कस्तूरी या केसर का एक मारवाड़ी व्यापारी

जटमल लखनऊ आया और चौक के निकट की तत्कालीन सबसे बडी अआदतगंज की मंडी में कई दिन तक पड़ा रहा, किन्तु अधिक महंगी होने के कारण उसके दर्जनों ऊंटों पर लदी कस्तूरी ज्यों-की-त्यों पड़ी रह गयी, कोई खरीददार ही नहीं मिला। ज्ञातव्य है कि इस मंडी की प्रशंसा बड़ी दूर-दूर तक थी। फारस, अफगानिस्तान तथा कश्मीर आदि से मेवों, फलों तथा जेवरात आदि के बड़े-बड़े व्यापारी वहाँ आते थे। मारवाड़ी व्यापारी बड़ा निराश हुआ और लोगों से कहने लगा कि "अवध के नवाबों का मैंने बड़ा नाम सुना था, किंतु वह सब झूठ निकला।" इतनी दूर आकर भी खाली हाथ लौटने के विचार मात्र से वह बड़ा दुःखी हुआ और अयोध्या की ओर चल दिया। रास्ते में इस नये मन्दिर के पास आकर जब वह विश्राम के लिए रूका, तब लोगों के कहने से उसने हनुमानजी से अपने माल की बिक्री के लिए मनौती मानी।

संयोगवश उन्हीं दिनों नवाब वाजिदअली शाह अपनी कैसर बेगम के नाम पर कैसरबाग का निर्माण करा रहे थे। किसी ने उनको राय दी कि यदि इस कैसरबाग की इमारत को केसर-कस्तूरी से पुतवा दिया जाय तो सारा इलाका ही अत्यन्त सुवासित हो जायेगा? और फिर कैसर और केसर की तुक भी मिल गयी। नवाबसाहब को यह सलाह जँच गयी और जटमल की सारी कस्तूरी उसके मुँहमांगे दाम पर खरीद ली गयी। स्वभावत: जटमल के हर्ष का कोई ठिकाना नहीं रहा, उसने हृदय खोलकर मन्दिर के लिए खर्च किया। आज भी मन्दिर के भीतर मूर्ति पर सोने का जो छत्र लगा है, वह इसी व्यापारी का बनवाया हुआ है। उसने पूरे मन्दिर को ही नये सिरे से बनवाया। वर्तमान स्तूप (गुंबद) भी तभी का है। तभी से यहाँ मेला भी लगने लगा।

गोरखपुर - यहाँ राप्ती नदी के तट पर "श्रीहनुमानगढ़ी" के नाम से हनुमानजी का प्रसिद्ध स्थान है। प्रसिद्ध श्रीगोरक्ष-पीठ में श्रीगोरखनाथ जी के मन्दिर के उत्तर में हनुमानजी का प्राचीन मन्दिर था, अब उसको नया रूप दिया गया है और उसमें बहुत ही भव्य एवं विशाल प्रतिमा की प्रतिष्ठा हुई है। बेतियाहाता में कुछ वर्ष पूर्व एक सुन्दर श्रीहनुमान-मन्दिर का निर्माण हुआ है,जिसका शिलान्यास हमारे परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद जी पोद्दार के कर-कमलों द्वारा हुआ था। शहर में और भी अनेक प्रसिद्ध हनुमान-विग्रह हैं।

वृन्दावन- श्री सिंहपौर हनुमानजी का मन्दिर इतिहास - प्रसिद्ध श्रीगोविन्ददेवजी के पास है। धर्मान्ध औरंगजेब जब श्रीगोविन्ददेवजी के मन्दिर को तोड़वा रहा था, उस समय सिद्ध संत श्रीबिहारिनीदेव जी ने प्रार्थना की और श्री हनुमानजी की प्रेरणा से तत्काल असंख्य बंदर इकट्ठे हो गये। इस वानरी-सेना की किलकिलाहट से यवन-सेना को श्रीधाम से दूर हट जाना पड़ा। श्री हनुमानजी की कृपा से श्रीगोविन्ददेवजी के मन्दिर का एकतला बच गया,

जो यवन-धर्मान्धता की गाथा सुना रहा है। यहाँ श्रीवृन्दावन के प्राचीन आचार्य श्रीभट्टदेवजी महाराज द्वारा निर्मित श्रीवृन्दादेवी का मन्दिर पहले थे। उस मन्दिर के सिंहपौर पर उनके द्वारा ही श्रीहनुमानजी विराजमान किये गये थे। कालचक्र से मन्दिर का तो नाम भी मिल गया, किन्तु "श्रीसिंहपौर हनुमानजी" अब भी हैं।

कौंच- जालौन जिले में यह क्रौंच ऋषि की तपोभूमि है। यहाँ का "श्रीमन्दिर बजरंग धरोहर" बड़ा विख्यात है। यहाँ पर वैरागी, साधु-महात्माओं ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है। कहा जाता है कि यह मन्दिर "आल्हा-उदल" के समय में बना था। अब इसका जीर्णोद्धार करा दिया गया है। यहां पर प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी (अनन्त-चतुर्दशी) को मेला लगता है।

बदरीनाथ-धाम - मन्दिर की परिक्रमा में गणेशजी के समीप ही हनुमानजी की मूर्ति है तथा मन्दिर के पृष्ठभाग में भी हनुमान जी की संगमरमर की बनी हुई विशाल प्रतिमा है। यात्रियों के लिए यह एक आकर्षण एवं अराधना का केन्द्र है।

हनुमानचट्टी - पाण्डुकेश्वर से सात मील की दूरी पर हनुमानचट्टी है। यहाँ हनुमानजी की मूर्ति है। यह हनुमानजी की तपोभूमि बतलायी जाती है। यहाँ अलकनन्दा के किनारे सुंदर वृक्षों की पंक्तियां बड़ी मनोरम है।

पवाली - हिमालय में बारह हजार फीट की ऊंचाई पर टेहरी जनपद मे त्रियुगी नारायण के मार्ग में यात्रियों का यह एक विश्राम - स्थल है। पर्वत के बगल में एक छोटा-सा मन्दिर वीर हनुमान का है। इस मन्दिर की मूर्ति वैशिष्टियपूर्ण है। दो फूट ऊँची इस मूर्ति के बाएं हाथ में नंगी तलवार और दाहिने हाथ में गदा है। श्रीमारूती का मुख सामने नहीं है, दाहिना अंग देखने मे आता है।

अंजनी (हरद्वार)-हनुमानजी की माँ अंजनीदेवी का मन्दिर चण्डीदेवी के मन्दिर के पास ही पहाड़ के दूसरी ओर है।

बिहार-प्रान्त के कुछ प्रसिद्ध हनुमान - मन्दिर

आंजन- राँची मण्डलान्तर्गत गुमला थाने में आँचिन नामक एक ग्राम है, जिसके विषय में कहा जाता है कि यहाँ महावीर हनुमानजी का जन्म हुआ था। हनुमानजी की माता अंजनादेवी का स्थान गांव से पश्चिम तीन मील दूर एक वन्य-गुफा में है। उस गुफा में माता अंजना देवी और बाल हनुमान की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। यहाँ प्रतिवर्ष देश के कोने-कोने से दर्शनार्थी आकर अपनी मनः कामनाओं की सिद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं। माता अंजना के नाम पर ही इस स्थान का नाम "आंजन" रखा गया है।

जनकपुर- जनकपुरधाम के समीप परिक्रमा-मार्ग में हनुमाननगर नामक एक गाँव है। वहाँ की हनुमानगढ़ी के हनुमानजी का श्रीविग्रह प्रसिद्ध है। स्वय जनकपुरधाम में संकटमोचन-मन्दिर भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त श्रीरामानन्द आश्रम में मनः कामना-सिद्ध हनुमानजी की मूर्ति है। ये भक्तों की मनःकामना पूर्ण करते हैं।

सीतामढ़ी- इसी स्थान को जगज्जननी भगवती सीता की प्राकट्य स्थली होने का चिर गौरव प्राप्त है। यहीं मिथिला-नरेश जनक को यज्ञार्थ हल जोतते हुए मही (पृथ्वी) से सीताजी की प्राप्ति हुई थी। इसीलिए इस स्थान का नाम सीतामही (सीतामढ़ी) है। यह भूमि सिद्धों, भक्तों और संतों की सदा से साधना-स्थली और निवास-स्थली रही है।

यहाँ का मुख्य मन्दिर श्रीजानकी मन्दिर है। इस मन्दिर में श्रीविग्रह के समक्ष श्रीहनुमानजी की विनयावनत मनोज्ञ लघुमूर्ति और दक्षिण पार्श्व में विशाल वीरमूर्ति भक्ताभीष्टदाता के रूप में अत्यन्त विख्यात है।

ब्रज के प्रसिद्ध श्रीहनुमान-विग्रह

ब्रजवासियों के कथानकों में कहा जाता है कि श्रीगिरिराज की सात कोस की परिक्रमा में दस स्थानों पर श्रीहनुमान विराजमान हो गये थे, इसलिए कि जिस किसी दिशा से श्रीकृष्ण पधारेंगे, श्रीहनुमान उन्हें गिरिराज पर ले आयेंगे। आज भी गिरिराज के चारों ओर दस चमत्कारपूर्ण हनुमान-विग्रह विराजमान है। वानरों की सेना तो पूरे पर्वतराज को घेरे ही रहती हैं। श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ा और माखन-चोरी में ये श्रीहनुमान-सखा ही साथ देते हैं।

ब्रज के अनेक चमत्कारी श्रीहनुमान-विग्रहों का सम्बन्ध श्रीकृष्ण के साथ जुड़ा हुआ है। गोकुल के पास वनमार्ग में एक "हनुमान हठीलो" नाम से प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ की प्राचीन श्रीहनुमान-मूर्ति के सम्बन्ध में ख्याति है कि जब श्रीयशोदा मैया लाला को प्रातः माखन-मिश्री खिलाती थीं, तब एक वानर हठपूर्वक श्रीकृष्ण के पास बैठकर उनके मुखे से गिरे शीथ-कणों को उठा-उठाकर खाता था, मां के हजार चेष्टा करे पर भी वह वानर हटता नहीं था। मैया ने उसका नाम "हठीलो हनुमान" रख दिया था।

मथुरा से वृन्दावन जाते समय वृन्दावन के पास "लुटेरिया हनुमान" प्रसिद्ध है। श्रीकृष्ण ने इनको वृन्दाबन के द्वार पर इसलिए बिठा दिया था कि मथुरा की दधि बेचनेवाली गोपियों का पता ये देते थे और दधि लूटने में सहयोग करते थे। भावुक जनों की एक धारणा यह भी है कि ये हनुमान चित्त के विकारों को लूट लेते हैं।

गोवर्धन में "पूंछरी का लौठा" भी हनुमान का ही रूप है, उसे भी भगवान ने दधि लूटने को ही बिठाया था। कथा-वार्ताओं में यह भी कहा जाता है कि भगवान् ब्रज से बाहर मथुरा-द्वारका में अपने साथ केवल एक सखा श्रीहनुमान को ही ले गये थे। महाभारत में भी अर्जुन के रथ की सुरक्षा मे श्रीकृष्ण के साथ श्रीहनुमानजी का पूर्ण दायित्व है।

बंगाल-प्रान्त के प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर एवं उनके विग्रह

कलकत्ता- हनुमान-गली का सुप्रसिद्ध हनुमान-मन्दिर एव सिद्ध-पीठ-महानगरी कलकत्ता में पदार्पण करते ही हावड़ा का पुल पार करने के बाद हरीसन-रोड में प्रवेश करके एक फर्लांग आगे बढ़ने पर सड़क की बायी ओर एक छोटी सी गली है, जो "हनुमान-गली" के नाम से प्रसिन्द्ध है। उसी गली में यह प्राचीन मन्दिर स्थापित है। केवल कलकत्ते का ही नहीं, अपितु सारे बंगाल का अत्यन्त प्राचीन हनुमान-स्थल होने के कारण यह एक प्रकार से सिद्ध-पीठ माना जाता है। यहाँ दूर-दूर से आये हुए दर्शनार्थियों की अपार भीड़ बराबर लगी रहती है। इस सिद्ध-पीठ के हनुमानजी बड़े ही चमत्कारपूर्ण एव फलदाता माने गये हैं, जो अपने श्रद्धालु भक्तों की कामना सदैव पूरी करते रहते हैं। असंख्य लोगों को इनकी कृपा की अनुभूति हुई है। इनकी स्थापना आज से लगभग 300 वर्ष पहले जब कलकत्ता एक छोटा-सा गाँव था, तब एक संन्यासी महात्मा द्वारा हुई थी। उन महात्मा को हनुमानजी सिद्ध थे और अपने भक्त के इच्छानुसार स्वयं वसुन्धरा के अन्तस्तल से विग्रहरूप में प्रकट हुए थे। ये संन्यासी अन्यप्रान्तीय थे एवं उनका शरीर पंजाबी का सा लगता था। सारे तीर्थों में भ्रमण करते हुए जब वे यहाँ आये तो हनुमान जी ने इन्हे यहीं अपने को स्थापित करने का स्वप्नादेश दिया। ये संन्यासी महात्मा जब तक जीवित रहे, तब तक उसी जगह उन्हीं की साधनोपासना में लगे रहे।

तदनन्तर लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व इस मन्दिर का निर्माण स्थानीय खत्रीबन्धुओं के सहयोग से हुआ एवं हनुमानजी की नित्य अर्चना-पूजा, भोग आदि की समुचित व्यवस्था सुचारू ढंग से की गयी, जो आज भी उसी रूप मे चल रही है। राजाकटरा का सुप्रसिद्ध पंचमुखी हनुमान-मन्दिर- हावड़ा-पुल के सामने पसुप्रसिद्ध राजाकटरा में सड़क के किनारे यह सुन्दर मन्दिर स्थित है, जिसमें श्रीहनुमानजी का पंचमुखी विग्रह स्थापित है। मूर्ति की विशेषता यह है कि हनुमानजी का एक मुखारविन्द ऊपर आकाश की ओर है एवं एक पीछे है, जो परिलक्षित नहीं होते, शेष तीन के दर्शन होते हैं। यह मूर्ति बड़ी ही भव्य, चित्ताकर्षक और नयनाभिराम है। इसके दर्शनमात्र से अपूर्व बल एवं साहस का संचार होता है। यद्यपि इसे स्थापित हुए 125 वर्षों से भी अधिक समय व्यतीत हो चुका है, तथापि दर्शन करने से ऐसा आभास होता है मानो अभी-अभी यह विग्रह कहीं से प्रकट हुआ है। विग्रह में सदा एकरस नवीनता

बनी रहती है, यह इसकी सबसे विलक्षण एवं चमत्कारपूर्ण बात है। यह मूर्ति ऐसे प्रस्तर की बनी हुई है, जो आजकल कहीं देखने में नहीं आता। यह विलक्षण मूर्ति जयपुर के एक कुशल शिल्पी द्वारा निर्मित हुई थी, जिसके दाहिने हाथ की तीन अंगुलियाँ बेकाम थीं। पहले तो उसने मूर्ति-निर्माण के लिए अपनी असमर्थता प्रकट की, परन्तु बाद में हनुमानजी ने उसे स्वप्नादेश देकर कहा कि "तुम काम आरम्भ करो। जब तक विग्रह प्रस्तुत नहीं हो जायेगा, तब तक तुम्हारी अँगुलियां काम करेंगी एवं विग्रह एवं विग्रह के सम्पूर्ण होते ही पुनः वे बेकाम हो जायँगी।" और ऐसा ही हुआ भी।

यह विग्रह उस समय स्थापित हुआ, जब आज की यह महानगरी कलकत्ता एक मामूली छोटा सा गाँव था। मन्दिर के किनारे ही गंगा नदी बहती थी। गगा का किनारा होने से रेती एवं दलदल के कारण दर्शनार्थियों को कुछ असुविधा होती थी। जिसके लिए मन्दिर के तत्कालीन पुजारी ने हनुमानजी से प्रार्थना की। रात में ही हनुमानजी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि "घबराने की बात नहीं है। गंगा मैया स्वयं ही मन्दिर से सदा के लिए एक-डेढ फर्लांग दूर हट जायँगी, दूसरे ही दिन से गंगाजी शनैः-शनैः पीछे हटने लगीं और एक मास के भीतर ही लगभग डेढ़ फर्लांग पूर्व की ओर बढ़ गयीं एव सारा किनारे का भाग छोड़ दिया, जिसपर कालान्तर में पक्की सड़क एवं मकानात बन गये। बाद में यही राजाकटरा बना। प्रारम्भ में श्री विग्रह को हटवाने के लिए अधिक चेष्टाएँ हुई, पर हनुमानजी की इच्छा भक्तों के हितार्थ वहीं रहने की थी। अन्ततोगत्वा सबको झुकना ही पड़ा। यहाँ श्रद्धालु दर्शकों की सदैव भीड लगी रहती है। मंगल और शनिवार को विशेषरूप से तो मेला-सा लग जाता है। अपने भक्तों को मनोवांछित फल देने में ये सारे कलकत्ता में विख्यात है। इनकी पूजा-अर्चना आदि की भी व्यवस्था सुन्दर है। मन्दिर के एक कोने मे एक प्राचीन शिव-लिंग भी स्थापित है।

नवाब लेन स्थित संकटमोचन एवं पंचमुखी हनुमानजी के अलग-अलग मन्दिर - स्टान्ड रोड स्थित राजाकटरा के उत्तर की ओर लगभग एक-डेढ़ फर्लांग आगे सड़क की दाहिनी ओर, नवाब लेन में प्रवेश करते ही ये दोनों मन्दिर प्राप्त होते हैं। पहले मन्दिर में हनुमानजी का संकट-मोचन-विग्रह लगभग 80-85 वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था। यह विग्रह लाल सिन्दूर से बराबर आच्छादित रहता है एवं इसके दर्शन से अपूर्व उमंग और उत्साह की वृद्धि होती है। ये हनुमानजी भी अपने भक्तों की कामनाओं की पूर्ति करने में विख्यात हैं एवं प्रत्येक संकट दूर करते हैं ऐसा बहुधा देखा गया है। मन्दिर में एक कोने में श्रीकालीजी की भी भव्य प्रस्तर प्रतिमा है।

इस मन्दिर के बगल में ही एक अन्य पंचमुखी हनुमानजी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है, जिसमें हनुमानजी का अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक, मनोहर एवं भव्य विग्रह लगभग 50 वर्षों से स्थापित है।

यहाँ हयग्रीव, नरसिंह, वराह, परिस्वरूप, गरूड़ एवं दशभुजा की सुन्दर मकराने की देव-प्रतिमा है। इनके हाथों में तलवार, त्रिशूल, चक्र, मन्दराचल पर्वत, अभयमुद्रा, माला, कमण्डलु, तीर, कमान, कमल आदि हैं। हनुमानजी का यह विग्रह उस भाव का परिचायक है, जब वे श्रीराम-लक्ष्मण को पाताल से अहिरावण के चंगुल से छुड़ाकर लाये, जो उन्हें अपनी इष्ट देवी की बलि चढ़ा रहा था। हनुमानजी के चरणारविन्द के नीचे देवी भी स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। ये हनुमानजी अपने साधक भक्तों की सर्वकामना-पूर्ति करते हैं,अत इनके दर्शनार्थ दूर-दूर से भी बहुसंख्यक लोग आते रहते हैं। इनके दर्शन मात्र से दर्शक में अपूर्व मानसिक बल, साहस एवं वीरता आदि का भाव-संचार होता है एवं वह आत्म-विभोर हो उठता है। इस चित्ताकर्षण एवं मनोरम विग्रह का निर्माण जयपुर के एक विख्यात शिल्पी ने किया था, जो अन्धा था। उसके निर्देशानुसार जब कोई अन्य शिल्पी वैसी मनचाही प्रतिमा का निर्माण करने मे समर्थ न हो सका, तब वह एवं भक्तगण - सभी निराश हो गये, क्योंकि दूसरा कोई वैसा निपुण कारीगर उस समय नहीं था और वह स्वयं लाचार था। तब भक्तों के आग्रह पर हनुमानजी ने उसे स्वप्न में यह आदेश दिया कि "जब तक तुम विग्रह के निर्माण - कार्य में संलग्न रहोगे, तब तक तुम्हारी आँखों की ज्योति बराबर कायम रहेगी। जब इस काम को छोड़कर अन्य काम में लगोगे तो वह ज्योति चली जायेगी।" उसने जी-जान से परिश्रम करके यह विलक्षण विग्रह प्रस्तुत किया।

विग्रह के स्थापित होने के कुछ ही दिनों बाद एक चमत्कारपूर्ण घटना घटी। मन्दिर के तत्कालीन पुजारी को हनुमानजी ने स्वप्नादेश दिया कि "उनके विग्रह पर यज्ञोपवीत नहीं है,अतः स्वर्ण का जनेऊ पहना दिया जाय।" स्वर्ण के जनेऊ में अधिक सोना लगता, जिसका प्रबन्ध ब्राह्मण पुजारी निर्दिष्ट समय पर न कर सका। अतः उसने दीन एवं आतुर भाव से हनुमानजी से प्रार्थना की कि "प्रभो! यह गरीब ब्राह्मण पुजारी कहाँ से इतना स्वर्ण प्राप्त कर सकेगा। आप ही बतायें, मैं क्या करूँ?" हनुमानजी अपने भक्त की शुद्ध भक्ति से प्रसन्न होकर बोले- "चिन्ता मत करो। यज्ञोपवीत अपने-आप मेरे विग्रह से प्रकट हो जायगा।" दूसरे दिन यही हुआ। विग्रह में अपने-आप यज्ञोपवीत प्रकट हो गया। विग्रह पर एकाएक ऐसे जनेऊ का बन जाना मानवीय शक्ति से परे है। दूसरी महान् विस्मयकारी बात यह भी थी कि मूर्ति का वर्ण दूसरा एवं यज्ञोपवीत

का वर्णय दूसरा। ऐसा यज्ञोपवीत यथास्थान प्रकट होकर एक महान आश्चर्य उत्पन्न करता है।

श्रीजबेरेश्वर हनुमानजी का मन्दिर- कलकत्ता के बड़ा बाजार एरिया के सुप्रसिद्ध सत्यनारायण पार्क के सामने जैन-कटरा के बगल में हनुमानजी का यह प्रसिद्ध मन्दिर लगभग 50 वर्षों से स्थापित है। विग्रह बहुत ही विशाल, भव्य एवं मनोहारिणी झाँकी उपस्थित करता है,जिसके दर्शन से दर्शक को अपूर्व बल एवं साहस प्राप्त होता है। विग्रह के कंधों पर भगवान् श्रीराम-लक्ष्मण विराजमान हैं।

असम प्रदेश के कुछ हनुमान मन्दिर

श्री कमबावारी सम- श्री कमलावारी-सत्र-जोरहाट से लगभग 25 किलोमीटर दूर ब्रह्मपुत्र नदी के उस पार महात्मा श्रीकमलाकान्त द्वारा संस्थापित कमलावारी सत्र है। यहाँ एक श्री विष्णु-मन्दिर और विशाल कीर्तन गृह है। इसमें सिंहासन पर भगवान का वाह्य स्वरूप श्रीमद्भागवत पुराण स्थापित है। इस वांङमय-विग्रह के सम्मुख लगभग 6 फुट ऊँचा श्री हनुमान जी का एक दारुमय श्री विग्रह है। यह विग्रह लगभग दो-ढ़ाई सौ वर्ष पूर्व का निर्मित है और अत्यन्त प्रसिद्ध है।

मणिपुर- यहाँ एक महाबली आश्रम है, जो पुष्प एवं फलों से लदे हुए वृक्ष-लता आदि से सुशोभित है। उसी में एक अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रत्यक्ष फलदायक हनुमानजी का प्राचीन मन्दिर है जिसका निर्माण राजर्षि भूपतिराज द्वारा हुआ है। यहाँ बहुत से साधु निवास करते हैं एवं यह सदा वानरो से घिरा रहता है। प्रति मंगलवार को एवं प्रत्येक पर्व के अवसर पर इन रुद्रात्मक श्री हनुमान जी की श्रद्धा- भक्तिपूर्वक पूजा अर्चना होती है। इससे श्रद्धालु उपासकों की मनः कामनाएँ शीघ्र ही सिद्ध हो जाती हैं।

चूँगाजान- नागालैण्ड- यह स्थान असम प्रदेश के डीमापुर जिले में है। यहाँ बहुत वर्षों पहले बाबा शंकर दास जी त्यागी नामक एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। कहते हैं, उनको श्री हनुमान जी के दर्शन हुए थे। जहाँ बाबा को दर्शन प्राप्त हुआ था, उसी स्थान पर आज श्री हनुमान जी का विशाल मन्दिर बना हुआ है। यह सिद्ध स्थान है। यहाँ मनौती मानने से लोगो के दुःख दूर होते हैं।

उत्कल प्रदेश के प्रमुख श्री हनुमान मन्दिर

(क) श्री जगन्नाथपुरी- जगन्नाथ मन्दिर- उड़ीसा में हनुमान जी की उपासना बहुत दिनों से प्रचलित है। "इन्द्रनील मणि" पुराण श्री जगन्नाथजी का मुख्य पुराण है, उसमें भगवान ने श्री हनुमान जी को यह वर दिया है कि तुम्हें सदापुरुषोत्तम क्षेत्र श्री जगन्नाथपुरी में मेरे अन्तरंग भक्त के रूप मे स्थान मिलेगा और इस क्षेत्र के घर-घर में तुम्हारी पूजा होगी। केवल इतना ही नहीं वरन् यहाँ की ध्वजा पर भी कपिचिन्ह बना रहेगा। "इसीलिए श्री जगन्नाथ जी मन्दिर के पूर्व द्वार पर "फतेहनुमान "पश्चिम द्वार पर "वीर हनुमान", उत्तर द्वार पर "तपस्वी हनुमान" और दक्षिण द्वार पर "बाराभाई हनुमान" विद्यमान हैं। मन्दिर में आने वाले यात्रीगण हनुमान जी के इन विग्रहो का दर्शन करते हुए भीतर आते हैं।

(ख) श्रीमकरध्वज हनुमान- श्री जगन्नाथ पुरी के मुख्य मार्ग पर श्रीमकरध्वज हनुमान जी का अत्यन्त विशाल मन्दिर है। इसके विषय में एक किंवदन्ती है कि जब कामदेव इस क्षेत्र में प्रवेश करने लगे तब उन्हें हनुमान जी से युद्ध करना पड़ा तथा अन्त में श्री हनुमान जी विजयी हुए। इसलिए इनका नाम "मकरध्वज हनुमान' पड़ गया। इनकी एक मुख्य विशेषता यह है कि मूर्ति के एक हाथ मे तलवार तथा दूसरे में काम विजय प्रतीक स्वरूप विजय ध्वज है। यहाँ के श्री हनुमान जी का दर्शन करने से हृदय का काम भाव निवृत्त होता है।

(ग) माता अन्जना- श्री जगन्नाथ जी के प्रिय उद्यान में जिसे "जगन्नाथवल्लभ-उपवन" कहा जाता है, हनुमान जी की माता अंजनादेवी का एक स्वतंत्र मन्दिर है। उसमें माता अंजना की एक पाषाण मूर्ति स्थापित है।

(घ) श्री सुरंग हनुमान- कहावत है कि जगन्नाथ मन्दिर से अन्जना देवी जी तक एक गुप्त सुरंग है। उसी सुरंग के द्वार पर प्रायः आठ फुट ऊंची आन्जनेय हनुमान जी की भव्य मूर्ति है। यह हनुमान जी श्री जगन्नाथ जी के उद्यान के रक्षक हैं। अक्षयतृतीया के दिन जिस समय श्री जगन्नाथ जी की प्रति मूर्ति नौका विहार के लिए उद्यान में आती हैं, उस समय वे श्री सुरंग हनुमान जी की अनुमति लेकर ही उस उद्यान में प्रवेश करते हैं। भगवान सर्वशक्तिमान होते हुए भी इन हनुमान जी की मर्यादा को सुरक्षति रखने के लिए इस प्रथा का पालन करते हैं।

(ङ) कानपातर हनुमान- समुद्र का भीषण गर्जन श्री जगन्नाथ मन्दिर के

दर्शकों के भजन तथा स्मरण में बाधा दिया करता था। गर्जन की उस भीषण ध्वनि को रोकने के लिए भगवान ने हनुमान जी को आदेश दिया। आदेश पाकर हनुमानजी ने अपना विशाल रूप धारण किया और उस भीषण शब्द को रोक दिया विशालकाय हनुमान जी के उस शरीर को भेदकर समुद्र का गर्जन स्वर मन्दिर के भीतर प्रवेश न कर सका। यह एक सत्य बात है कि नगर के चारो ओर समुद्र का गर्जन होते हुए भी श्री जगन्नाथ जी के प्राचीर के अन्दर यह शब्द सुनायी नहीं पड़ता यह हनुमान जी श्री जगन्नाथ मन्दिर के दक्षिण द्वार पर अवस्थित हैं और इनके विग्रह की ऊँचाई लगभग 18 फुट है। इन्हीं बृहदाकार हनुमान जी को "कानपाता हनुमान" या "शब्दभेदी हनुमान" कहा जाता है।

(च) श्री बेड़ी हनुमान (श्रृंखला हनुमान)- पुरी के बेड़ी हनुमान की बड़ी प्रसिद्धि है। इनको पुरी के लोग दरिया (हद) हनुमान कहते हैं। इनका इतिहास भी बड़ा अनोखा एवं रमणीय है। पहले समुद्र की उत्ताल तरंग मालाएँ बारम्बार श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र पुरी में प्रवेश करके प्राचीन बस्तियों को नष्ट कर देती थी। इन बस्तियों में आथर्ववर्ण आङ्गिरसों के प्रसिद्ध आश्रम थे। बार बार समुद्र द्वारा क्षतिग्रस्त होने पर उन्होंने श्री जगन्नाथजी से अपने संरक्षणार्थ प्रार्थाना की। यह सुनते ही भगवान ने हनुमान जी से आने वाली लहरों को रोकने के लिए कहा। महाविक्रमी हनुमान के चक्रतीर्थ पर दण्डायमान होते ही समुद्र उनका उल्लंघन न कर सका। परन्तु हनुमान जी कभी कभी श्री जगन्नाथ जी के दर्शनार्थ चले जाते थे। उनके चले जाने पर समुद्र आङ्गिरसों के स्थान पर जलमग्न कर दिया करता था। इस पर उन्होंने भगवान से पुनः प्रार्थना की। तब श्री जगन्नाथ जी ने एक स्वर्ण श्रृंखला देते हुए उनसे कहा कि इससे आप लोग श्री हनुमान जी को बाँध लें। वास्तव में श्री हनुमान जी को कोई बांध नहीं सकता परन्तु बेड़ी के प्रत्येक भाग में "राम-नाम" लिखा रहने के कारण श्री हनुमान जी उसे तोड़ न सके जिससे चिरकाल के लिए समुद्र की सीमा निर्धारित हो गयी। चक्रतीर्थ के निकट इन्हीं "बेड़ी हनुमान जी" का स्थान है।

(छ) श्री सिद्ध हनुमान- इन सिद्ध हनुमान जी का इतिहास श्री जगन्नाथ जी के इतिहास से ही गुम्फित है। इन्द्र नील मणि पुराण के वर्णनानुसार राजा इन्द्रद्युम्न जिस समय श्री जगन्नाथ क्षेत्र के उन्मरेषन के लिए आये उस समय वे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। यहाँ तक कि वे श्री जगन्नाथ जी के दर्शन पा सकने की आशा तक छोड़ चुके थे। उसी समय सहसा एक उज्ज्वल प्रकाश दिखायी पड़ा और उसी प्रकाश के बीच हनुमान जी ने प्रकट होकर कहा- 'मैं युग-युग से इस मन्दिर की रक्षा करता आ रहा हूँ। मेरे बल से बलवान होकर आप एक हजार हाथ ऊंचे एक मन्दिर का निर्माण कीजिए और उसी

मे श्री जगन्नाथ जी की प्रतिष्ठा कीजिए। मैं सिद्ध हनुमान के रूप में विख्यात होऊँगा। मेरे सिद्धाश्रम में रहकर आप पुरुषोत्तम क्षेत्र के निर्माम हेतु यत्न कीजिए। जो लोग विपत्तिकाल में यहाँ सुन्दरकाण्ड का पाठ करेंगे, उनके सब कार्य सिद्ध होंगे।" आज पुरी क्षेत्र की उत्तर दिशा में इन्द्रद्युम्न सरोवर है। वहाँ सिद्ध महावीर जी का मन्दिर है। इसका निर्माण कौशल तथा कारीगरी भी दर्शनीय है। इन्हीं हनुमान जी की पूजा करके श्री जगन्नाथ मंदिर का निर्माण किया गया था।

(ज) उड़न्ता (उड़ते हुए) हनुमान- ईसा की सोलहवीं शताब्दी में श्री सतदास नामक एक श्रेष्ठ हनुमद्भक्त विद्यमान थे। उनकी उपासना से एक महान कार्य चमत्कारिक रीति से सम्पन्न हो गया। एक समय की घटना है, भयंकर आँधी तूफान के कारण श्री जगन्नाथ जी का विशाल नील चक्र टेढ़ा हो गया। किसी भी कारीगर द्वारा उस नील चक्र को पूर्ववत कर सकना असम्भव सा था। महात्मा श्री सन्तदास ने कहा कि इस क्षेत्र के रक्षक श्री हनुमान जी से प्रार्थना करनी चाहिए। इस पर मन्दिर के सभी पुजारी तथा भक्तगण ने हनुमान जी से प्रार्थना की। तब अकस्मात एक विशालकाय वानर कहीं से आया और उस वक्र नील चक्र को मुहूर्तभर में पूर्ववत सीधा करके हुंकार करते हुए मन्दिर की दक्षिण दिशा की ओर कूद पड़ा। जिस स्थान पर वे हनुमान जी कूदकर अन्तर्धान हुए थे, उसी स्थान पर राजा श्री प्रतापरुद्र ने उड़न्ता हनुमान जी की स्थापना कर दी।

वस्तुतः सारे जगन्नाथ धाम में श्री जगन्नाथ जी के सेवक के रूप में श्री हनुमान जी पूजित होते हैं एवं यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति श्री हनुमान का भक्त ही है।

सिरुली- भुवनेश्वर पुरी सड़क पर स्थित चन्दनपुर से लगभग 12 किलोमीटर की दूरी पर सिरुली ग्राम है। इस ग्राम के पश्चिम भाग में महाबीर हनुमान जी का मन्दिर अवस्थित है। सिरुली महाबीर मन्दिर "उड़ीसा में हनुमान जी का प्रसिद्ध मन्दिर एवं तीर्थ है। उड़ीसा के विभिन्न भागों से तीर्थ यात्री एव भक्त प्रायः प्रतिवर्ष हनुमान जी के दर्शन पूजन एवं मनौती के लिए यहाँ आते रहते हैं। लोगों में ऐसी दृढ़ आस्था एवं श्रद्धा है कि सिरुली महाबीर जी के दर्शन का अत्यन्त मंगलदायक प्रभाव होता है। इनकी प्रतिमा 10 फुट ऊँची है। कहा जाता है कि यह प्रतिमा बहुत पुरानी है। ऐसी जनश्रुति है कि यह प्रतिमा स्वंय ही पृथ्वी को विदीर्ण करके प्रकट हुई है तथा प्रचण्ड प्राणस्पन्दन से युक्त सजीव स्वयम्भू-मूर्ति है।

श्री महाबीर जी की यह द्विभुजी प्रतिमा कई दृष्टियों से विलक्षण है। इसकी दोनों भुजाओं के बीच की चौड़ाई आठ फुट है। इसकी दाहिनी जाँघ पर सीता-खोज के लिए जाते समय श्री राम द्वारा हनुमान को दी गयी अभिज्ञान स्वरूप मुद्रिका की प्रतिकृति अंकित हैं एवं उसी प्रकार सीतान्वेषण के बाद लंका से लौटते समय सीता जी द्वारा संदेश - सहिदानी के रूप में दी गयी सिर की चूड़ामणि की छवि भी दर्शनीय है। दोनों जंघों पर इस प्रकार इन दोनो भूषणाकृतियों के अंकन से श्री हनुमान के सीताराममय होने का तथा "श्री रामदूत अतुलित बलधामा" होने का संकेत मिलता है। इस प्रतिमा के नेत्रो की ओर देखें तो वे समानान्तर में न होकर ऊपर नीचे की ओर उठे हुए विषम एवं दो विपरीत दिशाओं में देखते हुए प्रतीत होती हैं। इस महाबीर मन्दिर की दक्षिण दिशा की दीवाल में पश्चिमाभिमुख एक छोटा सा झरोखा है। इस झरोखे से श्री महाबीर जी पुरी स्थित श्री जगन्नाथ मंदिर के शिखर पर स्थापित नील चक्र को अपनी बायीं आँख से देखते रहते हैं। प्रातः काल सूर्योदय के समय महाबीर जी की मूर्ति के पास खड़ा होकर देखने से दर्शक को श्री जगन्नाथ मन्दिर के शिखर का नीलचक्र दिखायी पड़ता है। अतः मूर्ति की यह दृष्टिभंगिमा ठीक ही है। महावीर जी का दक्षिण नेत्र यहाँ से दक्षिण दिशा में स्थित लंका पर टिका हुआ है, जिससे राक्षसी शक्तियाँ उस दृष्टि के नियंत्रण में रहते हुए कोई उपद्रव न कर सकें।

कटक- तिनकोणिया बगीचा में श्री हनुमानजी का एक मन्दिर है। वहाँ श्रीसम्प्रदाय के वैष्णव द्वारा हनुमानजी की पूजा होती है। यह नगर का एक प्रधान मन्दिर है। मन्दिर में श्रीहनुमानजी के विग्रह के अतिरिक्त श्रीरामजी तथा श्रीशिवजी के भी विग्रह हैं।

दक्षिण-भारत के प्रसिद्ध श्रीहनुमान-मन्दिर

ऋष्यक पर्वत - यह स्थान हम्पी के पास है। बेल्लारी जनपद में हम्पी हास्पेट से 9 मील दूर है। हम्पी के मध्य में विरूपाक्ष-मन्दिर है। इस मन्दिर के सम्मुख जो सड़क है, उससे सीधे चले जायँ तो वह मार्ग ऋष्यक पर्वत के निकट तक ले जाता है। इसी ऋष्यक पर्वत पर बाली के भय से श्रीहनुमानजी - सहित सुग्रीव निवास करते थे और इसी पर्वत के पद-प्रान्त में श्रीहनुमानजी ने भगवान श्रीराम से प्रच्छन्न वेष में भेंट की थी। यहाँ तुंगभद्रा नदी धनुषकार बहती है, अतः वहाँ नदी में चक्रतीर्थ माना जाता है। चक्रतीर्थ के पास पहाड़ी के नीचे श्रीराम-मन्दिर है, जिसमें श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीताजी की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं।

किष्किन्धा - विट्ठलस्वामी-मन्दिर से लगभग एक मील पूर्व आकर मार्ग उत्तर की ओर मुड़ता है। स्फटिक-शिला से आनेवाला मार्ग यहाँ विट्ठलस्वामी-मंदिर जाने वाले मार्ग से मिलता है। इस मार्ग से कुछ ही दूरी पर सामने तुंगभद्रा नदी है। नदी के उस पार लगभग आधे मील पर अनागुंदी ग्राम है। इसी को प्राचीन किष्किन्धा कहा जाता है।

इससे कुछ आगे सप्ततालवेध का स्थान है, जहाँ भगवान श्रीराम ने सप्तताल का लक्ष्यवेध किया था और इसी लक्ष्यवेध के पश्चात् श्रीसुग्रीव भगवान श्रीराम के सामर्थ्य पर विश्वास कर सके थे। यहाँ एक शिला पर भगवान् श्रीराम के बाण रखने का चिन्ह है। इस स्थान के सामने तुंगभद्रा के उस पार बाली-वध का स्थान कहा जाता है। वहाँ की शिलाएँ उज्ज्वल हैं, जिन्हें बाली की हड्डियाँ कहते हैं। सप्तताल-वेध से पश्चिम एक गुफा है। कहते हैं कि भगवान श्रीराम ने वहाँ बाली-वध के पश्चात विश्राम किया था। गुफा की पीछे हनुमान-पहाड़ी है। तुंगभद्रा के उसी पार तारा, अंगद एवं सुग्रीव नाम तीन पर्वत-शिखर है। हास्पेट के पास कमलापुर नामक स्थान में मधुबन एक ग्राम है। लोगों का अनुमान है कि यहीं पर सुग्रीव का मधुवन नामक अनुपम उद्यान था, जिसके मधुर फलों को बंदर - भालुओं ने उस समय खाया था, जब वे भगवती सीता का अनुसंधान करके जाम्बवान, अंगद और हनुमानजी सहित लंका की ओर से लौट रहे थे। यहाँ श्रीहनुमानजी का मन्दिर है। कुछ विद्वानों का मत है कि पम्पासर वहाँ था, जहाँ आज हास्पेट नगर है।

अंजनीपर्वत- पम्पासरोवर से एक मील दूर अंजनी - पर्वत है। यह पर्वत पर्याप्त ऊंचा है और इसके ऊपर चढ़ने का मार्ग अच्छा नहीं है। पर्वत पर एक

गुफा-मन्दिर है, जिसमें माता अंजनी तथा हनुमानजी की मूर्तियाँ हैं। कहते है कि माता अंजनी का निवास यहीं था।

मालयवान् पर्वत (स्फटिकशिला)- विरुपाक्ष - मन्दिर से 4 मील पूर्वोत्तर माल्यवान पर्वत है। इसके एक भाग का नाम प्रवर्षणगिरि है। इसी पर स्फटिकशिला-मन्दिर है। हास्पेट से यहाँ तक सीधी सड़क आती है। मोटरबस से सीधे स्फटिकशिला आ सकते हैं। श्रीराम-लक्ष्मण ने वर्षा के चार महीने यहीं व्यतीत किये थे। इसी पर्वत पर लंका से लौटकर श्रीहनुमानजी ने अशोक-वाटिका की बंदिनी भगवती सीता के अनुसंधान का विवरण तथा उनका संदेश भगवान श्रीराम को सुनाया था।

वाई- यह तीर्थ कृष्णानदी के किनारे पर है। यहाँ कृष्णानदी पर अनेक घाट हैं। पेशवाघाट पर यज्ञेश्वर-शिव तथा मारूति-मन्दिर हैं। मानुघाट के पास ही मण्डप मे सिंहासन है, जिसमें उत्सव के समय श्रीकृष्णा (नदी की अधिष्ठात्री देवी) की मूर्ति स्थापित की जाती है। इस स्थान के पीछे मारूति-मन्दिर है। धर्मपूरी मुहल्ले में घाट पर रामेश्वर-मन्दिर है। रामेश्वर-मन्दिर के उत्तर मारूति-घाट तथा मारूति-मन्दिर हैं। यहाँ से उत्तर हरिहरेश्वर तथा दत्तात्रेय ये दो मन्दिर और हैं। दत्त-मन्दिर के पश्चिम पंचमुख मारूति-मन्दिर और नागोब-मन्दिर हैं।

अवढ़ा नागनाथ (नागेश) - द्वादश ज्योतिर्लिंगों में नागेश - लिंग यही है। बहुत - से विद्वान सौराष्ट्र में द्वारका (गोपीतालाब) के समीप स्थित नागनाथ-मन्दिर को नागेश-ज्योतिर्लिंग मानते हैं, किन्तु नागेशलिंग का "दारूकावन" में होना वर्णित है। दारूकावन यही है। इस क्षेत्र में 68 तीर्थ थे, जिनमें से बहुत से लुप्त हो गये हैं। जितने तीर्थ आजकल प्राप्त हैं, उनमें से एक तीर्थ श्रीहनुमानतीर्थ भी है। उक्त के अतिरिक्त दक्षिण-भारत के निम्न प्रसिद्ध हनुमान-मन्दिर हैं:-

1. भद्राचलम्, 2. कूर्मक्षेत्र, 3. गुत्तेनदीवि, 4. औरंगाबाद, 5। खुलताबाद, 6 पलगूर, 7. ईदुरबौधन, 8. उडुपी, 9. यलगुरू, 10. तुलसीगिरी, 11. हम्पी, 12. कोरवार, 13. कोल्हार, 14. मजूर, 15. मन्त्रालय, 16. अगरखेड़ क्षेत्र, 17 दोड़दारापुरम्, 18. बसवनगुड़ी क्षेत्र, 19. शोलंगीपुरम् क्षेत्र, 20. शियाली क्षेत्र, 21. कुत्तालम, 22. मध्यार्जुनम्, 23. मंजरय, 24. स्वरप्रभा-तीर्थ, 25. नामक्कल, 26. शुचीन्द्रम्, 27. कन्याकुमारी, 28. मरूत्वा मलै, 29. नन्दी दुर्ग,30. रामेश्वरम्-श्रीत्रिश्वमा (हनुमदीश्वर), 31. हनुमत्कुण्ड

महाराष्ट्र के प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर

1. पूरा- (क) जुल्या मारूति, (ख) सोन्या मारूति, 2. सज्जनगढ़, 3 श्रीजरंडेश्वर, 4. सुर्जी-अंजनगाँव, 5. सांगली, 6. अष्टे, 7. बेलगाँव, 8 चण्डकापुर 9. बारामती, मलद और गुणवडी, 10. "साँप" गाँव, 11 अम्बाझरी, 12. कन्हेरी 13. खेड, 14. पुलसा, 15.भाणगाँव, 16. रामपायली, 17. मालशिरस, 18. निंबरगी, 19. बेलगाँव, 20. टाकली, 21. नासिक, 22. त्र्यम्बकेश्वर, 23. बम्बई, 24. माँदुगा के हनुमानजी, 25. हनुमान टेकरी।

समर्थ श्रीरामदास द्वारा स्थापित एकादश श्रीहनुमान-मन्दिर

1. चुनया के श्रीहनुमान-शहापुर, 2. श्रीहनुमान-मसूर, 3 श्रीपताप-मारूति-वाफल, 4. श्रीदास-मारूति-वाफल, 5. श्रीहनुमान-मन्दिर-ऊंब्रज, 6. श्रीहनुमान-शिराले, 7. मनपाडले के श्रीहनुमान, 8. पारगाँव के श्रीहनुमान, 9. माजगाँव के श्रीहनुमान 10. शिंगड़वाड़ी के श्रीमारूति, 11. श्रीमारूति-बहे-बोरगांव।

मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध श्रीहनुमान-मन्दिर

1. उज्जैन - (क) रणजीत और गिरनारी के हनुमान, (ख) समर्थ श्रीरामदास के हनुमान, (ग) पंचमुखी हनुमानजी, (घ) नीलगंगा के हनुमान, 2. धार, 3. खंडवा ओंकारेश्वर, 4. टीकमगढ़, 5. बड़ागाँव, 6. दतिया, 7. घाटकोटरा, 8. गता के बजरंग, 9. ग्वालियर, 10. बिलासपुर।

गुजरात के प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर

1. सारंगपुर, 2. अहमदाबाद, 3. सूरत, 4. हनुमानधारा, 5. पोरबंदर, 6 जामनगर, 7. बेट द्वारका, 8. भूरखिया, 9. लंबे हनुमान।

राजस्थान के प्रसिद्ध श्रीहनुमान-मन्दिर

1. सवाई माधोपुर, 2. भावी, 3. मेहंदीपुर, 4. कोटा, 5. नाथद्वारा, 6. पुराबंकी, 7. किशनगर, 8. श्रीबालाजी (बड़ागाँव), 9. रैनवाल, 10. खेड (क्षीरपुर), 11. पूनरासर, 12. बडू, 13. बीकानेर, 14. सालासर।

हरियाणा एवं पंजाब के कुछ हनुमान-मन्दिर

1. कैथल, 2. सिरसा, 3. पटियाला एवं 4. फिरोजपुर।

प्रयाग के बड़े हनुमान जी

तीर्थराज प्रयाग में बांध के नीचे त्रिवेणी तट पर किले के समीप पड़े हुये श्री हनुमान जी का मंदिर है। पाताल लोक से अहिरावण से श्री राम और लक्ष्मण को छुड़ा कर उन्हें अपने कंधे पर बैठा कर पाताल से ऊपर आते हुए हनुमान जी का यह विग्रह अनुपम, अद्भुत और उनके अतुलित बल का स्मरण दिलाने वाला है। श्री हनुमान का यह मंदिर सिद्ध स्थल है। बड़े हनुमान जी का दर्शन करने से संकट दूर होता है, मनोकामना पूर्ण होती है तथा मनुष्य के अन्तः काल में श्री राम के प्रति भक्ति भाव का उदय होता है।

उपसंहार

आधुनिक युग में हनुमत्‌चरित्‌ का अनुशीलन और अनुकरण अत्यावश्यक है। हमारे देश को ऐसे चरित्रवान और उदात्त लोगों की आवश्यकता है जो जाति, संप्रदाय तथा क्षेत्र की संकुचित विचारधारा का परित्याग करके समूचे राष्ट्र की प्रगति के लिये प्रयत्नशील हों। हमारे समाज को ऐसे गरिमामय व्यक्तित्व वाले नागरिकों की अपेक्षा है जो स्वार्थ, लोभ, ईर्ष्या और द्वेष को छोडकर निष्ठा और ईमानदारी से अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये तत्पर हों। हमारे राष्ट्र को ऐसे नवयुवकों की आवश्यकता है जो कर्तव्यपरायण, चरित्रवान, अनुशासित, विद्याव्यसनी प्रगतिशील तथा समाजसेवी हों। संघर्ष और टकराव का मार्ग छोड़ कर सामञ्जस्य और सहयोग के रास्ते पर चलें। “निर्वैर सर्वभूतेषु” अर्थात्‌ किसी भी प्राणी के प्रति वैरभाव न रखो। देश में ऐसे नागरिक तभी उत्पन्न हो सकते हैं जब महापुरूषों के चरित्र और गुणों का अनुकरण किया जाय। श्री हनुमान के व्यक्तित्व और कृतित्व का व्यापक प्रचार और प्रसार होने से समाज में ऐसे वातावरण की सृष्टि हो सकती है जिससे लोगों के उदात्त चरित्र और व्यक्तित्व का निर्माण हो। श्री हनुमान की स्वामिभक्ति, निःस्वार्थ सेवा, ब्रह्मचर्यवृत्ति, ब्रह्मनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, तथा बुद्धिमत्ता से प्रेरणा लेकर हमारा समाज प्रगति की ओर अग्रसर हो सकता है।

श्री हनुमान में अतुलनीय बल और शौर्य है। वे अत्यंत बुद्धिमान हैं। वह श्रेष्ठ वक्ता, सच्चे सेवक तथा श्री राम के अनन्य भक्त हैं। इससे भी आगे बढ कर वे ज्ञानी हैं। वह रावण को श्रीराम के निर्गुण, निराकार ब्रह्मस्वरूप के संबध मे समझाते हैं। वह रावण से कहते हैं :-

रावण ! तुम ज्ञान का आश्रय लो। ज्ञान द्वारा संसार की दशा पर विचार करो और मोक्ष प्राप्ति का उपाय सोचो। तुम स्वयं निर्विकार हो। तुम न शरीर हो, न बुद्धि। इनसे प्राप्त दुःख तुम्हारे नहीं हैं। तुम दु;खी हो तो अज्ञान के कारण, क्योंकि तुमने अपने को शरीर, बुद्धि और इंद्रियजन्य समझ लिया है। ये सांसारिक पदार्थ, ये सारे रिश्ते-नाते स्वप्नवत्‌ मिथ्या हैं। सत्य को समझो जानो, विचार करो कि मैं चिन्मात्र हूँ, अज हूँ, अक्षर हूँ, आनन्दमय हूँ। इसी बुद्धि को ग्रहण करने पर तुम मोक्ष पाओगे। विष्णु की भक्ति करो। भक्ति बुद्धि का शोधन कर ज्ञान को दृढ़ करती है। ज्ञान प्राप्ति से विशुद्ध तत्व का अनुभव होता है।

श्री हनुमान की रावण मे उपर्युक्त वार्ता का उल्लेख अध्यात्म रामायण म मिलता है। उस से हम यह प्रेरणा ले सकते हैं कि